प्रकाशक का निवेदन.

प्रिय स्वधर्मी भाइयों।

इस सालमें यहांपर परमपूज्य श्री १००८ श्री रेखराजजी महाराजकी सांप्रदायके श्वे० स्था० जैन धर्मोपदेष्टा-श्रीमन्महा मुनि-श्री १०८ श्री परमानन्दजी महाराज का चातुर्मास हुआ महाराज साहबके विराजनेसे यहां बहुतही धर्मवृद्धि हुई और चौमासा बहुतही आनन्द उत्साह के साथ पूरा हुआ। इस मौकेपर मेरी इच्छा एक पुस्तक प्रकाशित करनेकी हुई। तदनुसार यह "जैनधर्मप्रवेशिका" नामक पुस्तक उक्त मुनि महाराजसे-लिखवा-संग्रह करवा, छपाकर आप सज्जनों की सेवामें समर्पण करताहूं। कृपया आप इसे पढे और धार्मिक फायदा उठावे। पुस्तकको हिफाजत से रक्खें। और इसे वे मूल्य समझकर कहीं रद्दी में डाल न देवें। इसमें थोडा २ सभी विषय लिया गया है। जैन धर्मका पहिला ही-कक्का सीखानेवालोंके लिए तो यह बहुत ही उपयोगी चीज है। मेरा विचार इसमें ४०-५० थोकडे ज्यादह दर्ज करवानेका था, लेकिन दूसरे २ विषयोंसे स्थान रुकजानेसे ऐसा न हो सका। इसके लिए भी कभी वीर परमात्माने मौका दिया तो वहभी सेवा आपलोगोंकी मैं करूंगा।

जिस भाइको यह पुस्तक मंगाना हो वह २ आनेके टिकट डाक खर्चके लिये भेजकर मुझसे मंगवा लें।

मेरा पत्ता यह है —

आपलोगोंका एक स्वधर्मी बंधु

सहसमल जीवराज देवडा,

चौक बाजार, औरंगाबाद सिटी] दक्षिण]

प्रास्ताविक वक्तव्य ।

इसे एकवार पढलीजिए ।

धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वाण ॥
धर्म पंथ साधे विना, नर तिर्यञ्च समान ॥

संसार के प्रायः सभी धर्म वाले सभी मनुष्य पूछनेपर इस बातको स्वीकार करते हैं, कि–नरजन्म स्त्री, पुत्र, धन, दौलत, राज्य, भण्डार, ऐश आराम, अनेक प्रकारके अच्छे अच्छे खान पान, भोगोपभोग, आदि २ सब पदार्थ हमें एक धर्मसे ही प्राप्त हुए है । धर्म ही हमारा सच्चामित्र और इसलोक परलोकका साथी है । इससे यह साबित हुआ कि–सबसे प्रथम मनुष्यको धर्महीका आराधन करना चाहिए । परन्तु आजकल यह बडा आश्चर्य है–कि–इस बातको जानते हुए (धर्मके प्रतापको) भी प्रायः सब लोग धर्मसे विमुख रहते हैं ! यह दुःख की बात है ।

*　　*　　*

आज–प्रत्येक जाति, समाज की–एवं भारत वर्षभरकी जो अवनति दृष्टिगोचर हो रही है इस का भी कारण यही है कि लोगोंकी धर्म पर सच्ची श्रद्धा न रही । अगर लोगोंकी धर्मपर सच्ची श्रद्धा होती तो, ये दिन (दुःखी, दारिद्री होनेके) कभी नहीं आते । तथास्तु,

*　　*　　*

अब यह देखना है कि–धर्म परसे लोगोंकी श्रद्धा क्यों कम होती जाती है? तो इसका उत्तर हमें अपने अनुभवसे ही यह मिल जाता है कि–लोगोंको धार्मिक शिक्षा–जिस ढंग मे मिलनी चाहिये वैसी नहीं मिलती है। यों भी यह कहें तो भी यह चल सकेगा कि–धार्मिक संस्कार उनको उनकी बाल्यावस्थामें–उनके मस्तिष्कमें पहुंचाये ही नहीं जाते हैं। अगर पहुंचाये जाते तो–वे कभी धर्महीन भगवद्भक्तिहीन दुराचारी दुर्व्यसनी आदि नहीं बनते। यह दोष [धार्मिक संस्कार नहीं पहुंचाने का] किस का है उनका या उनके माता पिताओंका? तो यह कहना पड़ेगा कि यह दोष उनका नहीं, बल्के उनके माता पिताओं का है।

हम देख रहे हैं कि–हमारे समाज के बच्चोंकी जिन्दगी–प्रायः खेलकूदमें–दुर्गतियाँ प्राप्त करनेमें या बच पनसेही हींग जीरा, मिर्च, आदि तोलने में उनके माता पिताओंकी असावधानी से योंही फिजूल व्यतीत होती है। वे उनको न तो बराबर धार्मिक शिक्षा देते दिलाते हैं–और न–व्यावहारिक शिक्षाही। इस से समाज का जो अधःपतन हो रहा है, यह कोई कम दुःखकी बात नहीं है।

समाज में–समाज की आवश्यकतानुसार न तो जगहजगह धार्मिक पाठशालाएँ हैं। और न कहीं धार्मिक शिक्षा पानेका उचित प्रबंध है। प्रबन्ध हो कैसे? समाज के धनीठय लोगोंका और साथही सार्व–श्रेय उनको उपदेश देने वाले धर्म गुरुओं का इस ओर दुर्लक्ष है।

× + ÷

खैर, यह तो बात हुई। अब धार्मिक पुस्तकों की ओर भी एक दृष्टि डालते है। हमारी समाज में प्रायः ऐसी पुस्तकोंकी भी अभाव है कि-जिनके द्वारा-छोटे २ बालकों या साधारण लोगोंको धार्मिक शिक्षा दी जाय। हाँ इतना कुछ समय पहले यह अवश्य हुआ कि हैदराबादसे-मुनि श्रीअमोलक ऋषिजी वगैरह वगैरह, दो चार मुनियोंने और दो चार श्रावकोंनें मिलकर इस ओर लक्ष पहुँचाया था-और जैन तत्त्वादि ग्रंथों को लिखकर प्रकाशित कराये थे। परन्तु वेभी भाषा शुद्धि लेखन शुद्धि की दृष्टिसे हमारी आवश्यकता को पूरी करने वाले न निकले। इनके सिवाय-और भी जो जो आजतक धार्मिक पुस्तकें निकली है या निकल रही हैं-वे सब कहनेकी ही पुस्तकें है-उनसे समाजका-क्या हित होता होगा या हुआ होगा-वह तो समाजही जाने। हम तो अभी उनके संबन्ध में कुछ नहीं कह सकते यह अवश्य कहेंगें कि उन पुस्तकों में न तो विषय रचना का ढंग है और न भाषा शुद्धिलेखन शुद्धिका ठिकाना है। पर, समाज में अभी वेही पुस्तकेंवडी आदरकी दृष्टिसे देखी जाती है-यह समाज की बुद्धिमत्ताका नमूना है।

+ + +

अब जमाना पलट गया, हवा पलट गई, "बाबावाक्य प्रमाणम्" वाली परिस्थिति न रही। लोगोंकी तीक्ष्ण बुद्धि होती चली, तर्क शक्तिका विकास होता चला, विषय रचना, भाषा और लेखन शुद्धिकी तर्फ अन्य समाजोंका विशेष ध्यान जानें लगेंगा-इस हालत में, हम ऐसी पुस्तकों से अपना या

परका क्या हित कर सकते हैं? यह बात विचारशीलों को ही विचारना चाहिए।

समाज का अपना पुराना ढंग बदलना चाहिए-रूपान्तर करना चाहिए। पुरानी शिक्षा पद्धति को पलटना चाहिए। शिक्षा इस ढंगसे देनी चाहिए कि-सर्व साधारण के समक्ष में यह बात झट आजावें। मैंने इस पुस्तकमें इसी बात पर कुछ कुछ ध्यान दिया है। कहना है कि समाज के लोग इस से कुछ लाभ उठावें।

* * * *

मेरी इच्छा इस पुस्तक को दूसरेही ढंग से लिखने की थी परन्तु-इसके प्रकाशक धर्म प्रेमी और उत्साही, उदार चित्त, भवथोपासक श्रीमान् सहसमलजी श्रीचरावजी दफ्तरी की इच्छा वैसी न देखी, तब यह लेखनशैली स्वीकार करना पड़ी। तोभी मैंने थोकड़ाआदि के लिखने में अपनी इच्छानुसार लेखनी चलाई है। परन्तु मेरी इच्छा अभी पूर्ण न हुई है। क्यों कि-पुस्तक के बहुतसे पृष्ट-प्रतिक्रमण, सामायिक स्तव नादि स रुक जाने से-बोल चाल थोकड़े आदि बहुत से मैं, उद्धृत न कर सका। अभी कम से कम ५० थोकड़े शुद्ध हिन्दी भाषा में मेरे लिखे हुए रहगये हैं। अवसर मिला तो -उन्हें फिर कभी-" जैन शास्त्र प्रवेशिका " के नामसे समाजक आग रक्खूंगा। अभी तो समाजको इसी स कुछ सन्तोष कर लेना चाहिए।

* * * *

' मारवाड देशमें-आपा र डों को दीवान की रीति प्रचलित

है-वह, छोटे २ बालकों के लिए-या जैन-धर्म का प्राथमिक ज्ञान पाने वालों के लिये-उपयुक्त-नहीं है-प्रथम तो थोकडो की परिभाषा [शब्दावली] इतनी अशुद्ध सिखाई जाती है-कि-उसका शब्दानुसार कुछ-भी अर्थ जल्दी समझ में नहीं आता। दूसरी उनकी विषय शृंखला भी ठीक नही है। यह त्रुटि-हमारे समाजके शिक्षकों को दूर कर देना चाहिए।

* * * *

इस जगह यह भी हम स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि-हमारी समाज में भाषाशुद्धि का प्राय बिल्कुल अभाव है। कभी कभी ऐसी आत्माओं से हमें जब मिलने का प्रसंग पडता है तो वे झट कह बैठते हैं कि-"हमें भाषा फासा से क्या काम है" हमें, तो "आंणूं ताणूं कुछ नहीं जाणूं सेठ वचन परमाणूं" इसी से मतलब है। परन्तु उन्हें यह याद रखना चाहिए कि-

"व्याकरणात् पदशुद्धिः पदशुद्धयार्थ निर्णयोभवति ॥
अर्थात् शुद्ध ज्ञानं, शुद्ध ज्ञानात् भवेत् मुक्तिः ॥ १ ॥

तथा--

"वयणतिय लिंग तियं, काल तियं, तह परोक्ख पच्चक्खं ॥
उवयण वयण चउकं, अजत्थं चेव सोलसम ॥"

शब्द शुद्धि से अर्थका ठीक २ निर्णय हो जाता है। और अर्थका बराबर निर्णय होनेसे सभी बातें पूरी समझमें आजाती है। लौकिक दृष्टिसेभी भाषा शुद्धि मुखकी शोभा है-और वह भाषा सबको प्रिय भी मालूम होती है। इसलिए सबसे

प्रथम समाज के प्रत्येक भाई, बहिनको शुद्ध शब्दोच्चारण तर्फ विशेष ध्यान रखना चाहिए।

* * * *

मेरा इरादा इस पुस्तकके साथमें-एक 'समाज सुधार लेख माला' भी देन का था परन्तु वह भी स्थानाभावसे न हो सका। इसके लिए भी फिर कभी प्रयत्न करूंगा।

\+ \+ \+ \+

मेरा विश्वास है कि दूसरी पुस्तकों की तरह तो नहीं परन्तु -इस पुस्तकमें भी साधारण-कहीं २ अशुद्धियां अवश्य रही होंगी उसका कारण, पाठक-मुझे न समझकर कार्यकी शीघ्रता और कुछ २ प्रेसकर्मचारियोंकी असावधानता को समझें।

दूसरी आवृत्ति में ये भी सब निकल जायगी।

औरंगाबाद छावनी,
माघ शुद्ध ५—
संवत् १९७१ विक्रम,

प्राणी मात्रका हितैषी,
मुनि परमानन्द जैन
(उर्फ-हर्षचन्द्र जैन)

हिन्दी जैन सस्ता साहित्यवर्द्धक कार्यालय,

अथवा

हिन्दी सस्ता साहित्यवर्द्धक कार्यालयकी स्थापना।

ऐसा भी शुभ समय कभी हम देख सकेंगे।
जब हिन्दी साहित्य समुन्नत लेख सकेंगे।
आओ, इसके लिए करें हम यत्न हृदयसे;
डरे न हरगिज़ कभी कोटि विघ्नोंके भयसे ॥

* * *

हिन्दीका हिन्दुस्थानमें, घर घर पुण्य प्रचार हो।
इस आर्यावर्त्त पुनीतका शुभमय जय २ कार हो।

ऐसा कौन मनुष्य है जो इस समय हिंदी साहित्यकी आवश्यकताको स्वीकार न करेगा ? । देशोन्नतिके लिए घर घर हिन्दी प्रचार करनेकी आवश्यकता है। जिस समय, विज्ञान, समाज, नीति, धर्म शिक्षा, उपन्यास, नाटक, गल्प, इतिहास जीवनचरित्र, काव्य, शिल्प, राजनीति, आदि २ सम्पूर्ण विषयोंके ग्रंथ हमें हिन्दीमें पढनेके लिए मिलेंगे, और सारी शिक्षाही हमें हिन्दीमेंही दी जाने लगेगी उस समय देशोन्नति हुई ही समझिए। हमें चाहिए कि हम सम्पूर्ण भारतवासी मिलकर हिन्दी साहित्य-हिन्दी प्रचारके लिए एक स्वरसे चारों ओरसे प्रबल आन्दोलन उठावें। और निरन्तर इसके

प्रथम समाज के प्रत्येक भाई, बहिनको शुद्ध शब्दोच्चारण तर्फ विशेष ध्यान रखना चाहिए।

* * * *

मेरा इरादा इस पुस्तकके साथमें–एक 'समाजसुधार सम्बन्धमाला' भी देने का था परन्तु वह भी स्थानाभावसे न हो सका। इसके लिए भी फिर कभी प्रयत्न करूंगा।

\+ \+ \+ \+

मेरा विश्वास है कि दूसरी पुस्तकों की तरह तो नहीं परन्तु –इस पुस्तकमें भी साधारण–कहीं २ अशुद्धियां, अवश्य रही होंगी उसका कारण, पाठक–मुझे न समझकर कार्यकी शीघ्रता और कुछ २ प्रेसकर्मचारियोंकी असावधानता को समझें।

दूसरी आवृत्ति में वे भी सब निकल जावगी।

औरंगाबाद छावनी,
माघ शुक्ल ५–
संवत् १९७१ विक्रम,

प्राणी मात्रका हितैषी,
मुनि परमानन्द जैन
(उर्फ–हर्षचन्द्र जैन)

अवश्य है। अब जरा श्वेताम्बर जैन समाजकी तरफ भी देखना चाहिए कि वहां भी कुछ हुआ है या नहीं। चारों ओरसे देख लेने बाद अवश्य यह कहना पडेगा कि श्वेताम्बर जैन समाजने राष्ट्रीय भाषा हिन्दी-भारतकी मुख्य भाषा हिन्दीकी कुछ भी सेवा न की है। कहीं दो चार इने गिने ग्रन्थ इसके अवश्य मिलते है परन्तु वे संसारके विचारशील विज्ञान पंडितोंके लिए तो क्या परन्तु साधारण जन समाजके लिए भी पर्याप्त नहीं है। ऐसा, क्यों है? उत्तर है कि-श्वेताम्बर जैन समाजके साधुओं तथा इसके अगणित धनाढ्योंका लक्ष्य इस ओर नहीं गया है। यदि जाता तो कभी इसकी कुछ न कुछ सेवा अवश्य ही हो जाती। जब हमें कभी कभी अन्य समाजोंके पंडित मिलते है तथा उनके उपदेशकों या धर्म तत्त्वशोधकोंसे भेट होती है तब वे हमसे कहते है, हमें आप कोई ऐसा ग्रन्थ बतलाइए जिसके पढनेसे हमें जैन धर्मके सामान्य और विशेष मूल सिद्धांतोंका, जैन शास्त्रोंकी परिभाषाका शीघ्र बोध हो जाय। जैन धर्मके उत्तमोत्तम तत्त्वोंका थोडेमें ज्ञान हो जाय।" तब हमें नीचा शिर करना पडता है चुप होना पडता है और यह कहना पडता है कि ऐसा ग्रंथ तो अभी तक हमारी ओरसे हिन्दी या संस्कृत आदिमें कोई भी प्रकाशित नही हुआ। जो कुछ है वे सब हस्त लिखित भण्डारोंमें बन्द है। तब वे हताश होकर चले जाते है। इससे हमारा क्या नुकसान होता है? वह यह है कि वे लोग जैन धर्मके असली सिद्धांतोंसे परिचित नहीं होने पाते। वे दूसरे सद्दम ग्रन्थ पढकर जैन धर्मके संबंधमें बुरे विचार

लिए तन मन, धनसे प्रयत्न करें । परन्तु शोकके साथ कहना पड़ता है कि अभी देशमें जिस प्रकार चाहिए–उस प्रकार हिन्दीके लिए हमारी ओरसे कुछ भी प्रयत्न न हुआ है । हाँ, यह सत्य है कि आज तक हिन्दीकी अनेक ग्रन्थमालाएं तथा हिन्दीके अनेक सामाजिक पत्र अवश्य निकल चुके और निकल रहे हैं । किन्तु वे भी अभी काफी संख्यामें नहीं हैं । और न अभी तक उनका उन ग्रन्थमालाओं तथा सामाजिक पत्रोंका प्राय घर २ प्रचार ही हुआ है ।; इससे यही सिद्ध होता है कि हमारे भाइयोंका हिन्दीसे प्रेम कम होनेके कारण से हिन्दी प्रचारकोंका यथोचित सहायता न मिली । और हिन्दीका साहित्य भण्डार पूर्णरूपसे समुन्नत न हो सका । अतः हमारे भाइयोंको चाहिए कि वे हिन्दी प्रचारकोंको यथाशक्ति तन मन, धनसे मदद करनेमें कमी पीछे न रहें । क्योंकि दशोन्नतिका एक मात्र सुगम उपाय है ।



अब हम जैन समाजकी तरफ भी जिसका कि सम्बन्ध इस देश (भारत वर्ष) से ही है । एक अलग दृष्टि डालते हैं । और देखना चाहते हैं कि जैन समाजमें हिन्दीका प्रचार कितना और कैसा है । प्रथम हमारे दिगम्बर जैन भाइयोंको लीजिए । उनमें हिन्दीका प्रचार कुछ कुछ हुआ है । कई हिन्दीके कार्यालय स्थापित होकर उनकी ओरसे हिन्दीके ग्रंथ और पत्र निकले हैं । हमारी सब आवश्यकताएँ उनसे पूरी हो वैसा तो अभी कर न सके हैं किन्तु हाँ, कुछ किया

यदि आप जैन धर्म परसे नास्तिक, बौद्ध, मलीनता आदिके कलंकोंको दूर करना चाहते है, यदि आप ज्ञानावरणीय कर्मको तोडना चाहते हैं तो इस कार्यालयकी सहायता कीजिए। अपनी लक्ष्मीका यहाँ सदुपयोग कीजिए।

(२) प्यारे जैन समाजके सुलेखको।

आप अपनी लेखनीसे इस कार्यालयको यथोचित सहायता पहुँचाइए। उत्तमोत्तम ग्रंथोंको लिख, इस कार्यालयके द्वारा प्रकाशित करवाकर, अपने नामको चिर स्मरणीय बनाइए।

इस कार्यालयसे थोडेही समयमें एक ग्रंथमाला शीघ्रही प्रकाशित होगी जो भाई अभी अपना ग्राहक श्रेणीमे नाम लिखायेंगे उनको उस ग्रंथ मालाकी तमाम पुस्तकें पौनी कीमतमें (याने एक रुपयेका माल बारह आनेमें) दी जायगी। जिन २ भाइयोंको अपना जीवन सुधारना हो, अच्छे २ ग्रंथोंको पढना हो, सर्व प्रकारकी शिक्षाएँ प्राप्त करना हो; अपने धर्मके तत्व जानना हो तो शीघ्रही इस ग्रंथमालाके ग्राहक बने।

पंडित भागीरथ ओझा,

मैनेजर-हिन्दी सस्ता साहित्य वर्द्धक कार्यालय

परभणी (निजामस्टेट)

सङ्कुचित विचार रखने लग जाते हैं। और फिर वे कहीं कहीं इतनी बड़ी २ भूलें कर बैठते हैं कि जो जैन सिद्धांतोंसे बिल्कुल संबंध नहीं रखती हैं।

प्रिय विचारशील भाइयों! हमने इन्हीं कारणोंसे जैन हिन्दी साहित्यके अभावके दुःखसे दुःखित होकर आप, लोगोंके भरोसे पर यह कार्य उठाया है। हिन्दी जैन सस्ता साहित्य वर्द्धक कार्यालय तथा, हिन्दी सस्ता साहित्य वर्द्धक कार्यालय स्थापित किया है। इसका उद्देश्य यह है, कि "जैनियोंमें तथा देशभरमें हिन्दी साहित्यका प्रचार करना। हिन्दीमें विविध विषयोंके छपे हुए उत्तमोत्तम ग्रन्थ अल्प मूल्यमें सम्पूर्ण भारतवासियोंके घरोंमें पहुँचाना।" आशा और दृढ विश्वास है कि आप लोग हमारे इस सङ्कल्पकी पूर्तिमें अवश्य सहायक होंगे। और अपने २ धर्मकी, देशकी उन्नति होती हुई देख आनन्द-मग्न बनोगे।

सदा ध्यानमें रखने योग्य प्रार्थना।

इस समय हमारे पास इस कार्यको चलानेके लिए किसी प्रकारका फंड या पूंजी नहीं है। इस लिए हम समस्त सम्पूर्ण जैन भाइयोंसे प्रार्थना करते हैं कि—यदि आप अपने पवित्र धर्मकी सेवा करना चाहते हैं, यदि आप अपने धर्मकी जय-पताका सम्पूर्ण भारतवर्षमें फहराना चाहते हैं, यदि आप भगवान महावीरकी पवित्र आज्ञा घर घर पहुँचाना चाहते हैं, यदि आप जैन धर्मको एक राष्ट्रीय धर्म बनाना चाहते हैं,

जगा दे शीघ्र हे जिनवर ! ॥ ५ ॥
करें हम कार्य हिलमिल कर,
जाति-सेवा सुचिन्तनका ।
देश और धर्मका उद्धार,
श्री महावीर हे जिनवर ! ॥ ६ ॥
तजे हम भाव भिन्नत्वं,
गढ़ें जातिय जीवनको ।
मैत्री जाति-जीवनमें,
बढ़ा दे खूब हे जिनवर ! ॥ ७ ॥

—मुनि परमानन्द जैन.





ईश विनय।

[गजल रेखता।]

हुआ है घोर अंधेरा,
    नहीं विद्या नहीं ख्याति।
भटकते नाथ! गफलतमें,
    बतादे राह—हे जिनवर! ॥ १ ॥
करा दे ज्ञान हमको तू,
    सुधि अपनी सम्हालें हम।
बना दे वीर हमको तू,
    निज कर्त्तव्यमें जिनवर! ॥ २ ॥
भूल कर आपने पनको,
    गिरे हैं नामसे निज हम।
घटा है आत्मबल हमरा,
    बनादे शूर हे जिनवर! ॥ ३ ॥
परस्पर द्वेष-अग्निसे,
    हो रहे ख्वार हैं हम अब।
स्वार्थी लोभ मायाको,
    मिटा दे साफ हे जिनवर! ॥ ४ ॥
बैठकर गोद अविद्याके,
    हो रहे आलसी हम अब।
गौरव जातिका हममें,

१—इसे प्रत्येक पाठक कण्ठाग्र कर लें।

जगा दे शीघ्र हे जिनवर ! ॥ ५ ॥
करें हम कार्य हिलमिल कर,
जाति-सेवा सुचिन्तनका ।
देश और धर्मका उद्धार,
श्री महावीर हे जिनवर ! ॥ ६ ॥
तजे हम भाव भिन्नत्वं,
गढें जातिय जीवनको ।
मैत्री जाति-जीवनमें,
बढ़ा दे खूब हे जिनवर ! ॥ ७ ॥

—मुनि परमानन्द जैन.





ॐ

॥ अथ नमस्कार मंत्र ॥

णमो अरिहंताणं (१) णमो सिद्धाणं (२) णमो आयरियाणं (३) णमो उवज्झायाणं (४) णमो लोये सव्वसाहूणं (५) एसो पंच णमुक्कारो (६) सव्वपावप्पणासणो (७) मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं (८) ॥

इति नमस्कार मंत्र समाप्त ॥

अथ तिख्खुत्तोका पाठ ॥

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं, वंदामि, णमंसामि, सक्कारेमि, संमाणेमि, कल्लाण मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण वंदामि ॥

इति तिक्खुत्तोका पाठ समाप्त ॥

अथ इरियावहियाएका पाठ ॥

इच्छाकारेण संदिसह भगवन् इरियावहियं पडिक्कमामि इच्छं.

इच्छामि, पडिक्कमिउं, इरियावहियाए, विराहणाए (१) गमणागमणे (२) पाणक्कमणे (३) बीयक्कमणे, हरियक्कमणे (३) ओसाउत्तिंगपणगदगमट्टीमक्कडासंताणासंक्कमणे (४) जे मे जीवा विराहिया (५) एगिंदिया, वेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया (६) अभिहया, वत्तिया, लेसिया,

मघाइया, सघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया ठाणाउ ठाणं संकामिया, जीवियाउ ववरोविया तस्स मिच्छामि दुक्कडं (७)॥
इति इरियावहियाएका पाठ समाप्त ॥

अथ तस्स उत्तरीका पाठ ॥

तस्स उत्तरीकरणेण पायच्छित्तकरणेणं, विसोहीकरणेणं, विसल्लीकरणेणं, पावाणं कम्माणं णिग्घायणट्ठाए, ठामि काउस्सग्गं (८) ॥

अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं भमलिए, पित्तमुच्छाए (१) सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं (२) एवमाइएहिं आगारेहिं, अभग्गो, अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो (३) जाव, अरिहंताणं भगवंताणं, नमुक्कारेणं, न पारेमि (४) ताव, कायं, ठाणेणं, मोणेणं, झाणेणं, अप्पाणं, वोसिरामि ॥ ५ ॥
इति तस्स उत्तरीका पाठ समाप्त ॥

३ अथ लोगस्सका पाठ ॥

अनुष्टुप् छन्द ॥

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे । अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली ॥ १ ॥ [आर्याछन्द] उसभ १ मजियं २ च वंदे संभव ३ मभिणंदणं ४ च सुमइं ५ च । पउमप्पहं ६ सुपासं ७ जिणं च चंदप्पहं ८ वंदे ॥ २ ॥ सुविहिं च पुप्फदंतं ९,

सीअल १० सिज्जंस ११ वासुपुज्जं १२ च । विमल १३ मणंतं १४ च जिण, धम्मं १५ संतिं १६ च वंदामि ॥ ३ ॥ कुंथुं १७ अरं १८ च मल्लि १९, वंदे मुणिसुव्वयं २० नमिजिणं २१ च । वंदामि रिठ्ठनेमिं २२, पासं २३ तह वद्धमाणं २४ च ॥ ४ ॥ एवं मए अभिथुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा । चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥ ५ ॥ कित्तिय वंदिय महिया. जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा । आरुग्ग बोहिलाभं, समाहिवर मुत्तमं दिंतु ॥ ६ ॥ चंदेसु निम्मलयरा, आइचेसु अहियं पयासयरा । सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ ७ ॥

इति चतुर्विंशति स्तवनामक लोगस्सका पाठ समाप्त ॥

४ अथ सामायिक लेनेका पाठ ॥

करेमि भंते सामाइयं, सावज्जं जोगं पच्चक्खामि, जाव नियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेण, न करेमि, नकारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, तस्स भंते, पड़िक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि ॥

इति सामायिक लेनेका पाठ सामाप्त ॥

५ अथ शक्रस्तवनामक नमुत्थुणंका पाठ ॥

नमोत्थुणं, अरिहंताण भगवंताण (१) आइगराणं, तित्थगराणं, सयं संबुद्धाणं (२) पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवरपुंडरीयाण, पुरिसवरगंधहत्थीण (३) लोगुत्तमाणं, लोगनाहाण, लोगहियाणं, लोगपईवाण, लोगपज्जोयगराण (४) अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, (जीवदयाणं)

मोहियमार्ण (५) धम्मदयाण, धम्मदेसियाण, धम्मनायगाण, धम्मसारहीणं, धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं (६) दीवोताण सरण गइपइट्ठा) अप्पडिहयवरनाणदंसणधराण, वियट्टछउमाण, (७) जिणाण जावयाण, तिन्नाणं तारयाणं, बुद्धाणंबोहयाणं, मुत्ताणं मोयगाण (८) सव्वन्नूण सव्वदरिसीणं, सिव मयल मरुअ मणंत मक्खय मव्वाबाह मपुणरावित्ति सिद्धिगइ नामधेयं ठाणं संपत्ताण, नमो जिणाणं जिअभयाण (९) ॥

इति शक्रस्तवका पाठ समाप्त ॥

५ अथ सामायिक पाळनेका पाठ ॥

नवमा सामायिक व्रतरे विषें जे कोई अतिचार लागो होय तो आलोउं ॥ मन, वचन, कायरा जोग माठा ध्यान प्रवर्ताया होय ३ सामायिकमें समाचलना नहि कीधी होय ४ अणपूगी पाळी होय ५ तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ दस मनरा, दस वचनरा, बार कायारा, बत्तीस दोषांमांयला कोई दोष लागो होय तो तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ सामायिकमें स्त्री कथा, भक्त कथा, देशकथा, राजकथा, ए चार कथा मांयली कोई विकथा कीधी होय तो तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥

इति सामायिक पाळने का पाठ समाप्त ॥

सामायिक पाळनेकेबाद यह पाठ कहना ॥

सामायिक सम्मकाएणं, फासियं, पालियं, सोहियं, तीरियं, किट्टिय आराहियं, आणाए अणुपालियं, न भवइ तस्स मिच्छामि दुक्कड॥

इति सामायिकका यह पाठ समाप्त हुए ॥

अथ सामायिक लेनेकी विधि ॥

प्रथम आसन छोड, दोनों हाथ जोडकर श्री गुरुदेवजी महाराजकी आज्ञा मांगे । पश्चात् इरियावहियाए का पाठ " जीवियाओ ववरोविया तस्सामिच्छामि दुक्कड़ं " पर्यंत कहे । बादमें ' तस्सुत्तरी ' का पाठ कहकर काउस्सग्ग करें । काउस्सग्गमें इरियावहियाए का पाठ " जीवियाओ ववरोविया तक मनमें कह कर, नमो अरिहंताणं, इतनाबोलकर काउस्सग्ग पूराकरें । तत्पश्चात् लोगस्सका पाठ कहें । बादमें करेमिभंते का पाठ ' जाव नियम ' तक कहकर जितने मुहूर्त्त डालने हो डालकर. पीछे पज्जुवासामिसे लेकर अप्पाणं वोसिरामि तक पाठ पढें। फिर बायां घुटना खडाकर उसपर दोनों हाथ जोड, नमुत्थुणं का पाठ दो बार कहें । दूसरे नमुत्थुणं के अन्तमें " ठाणं संपाविउ कामस्सगं णमो जिणाण जियभयाणं " ऐसा कहें। पश्चात् आसनपर बैठ, सामायिकका, काला पूरा न हो वहां तक नमस्कार मत्र, तथा अन्य बोल चाल थोकडादि याद करता रहे । धर्मध्यान में समय व्यतीत करें ॥

अथ सामायिक पाड़नेकी विधि ॥

सामायिक पाड़नेके समयमें इहियावहियाए का पाठ, और तस्सुत्तरीका पाठ कहकर काउस्सग्ग करना चाहिए । काउस्सग्गमें लोगस्सका पाठ मनमें कह कर, " नमो अरिहंताणं " इस प्रकार बोल, काउस्सग्गको पूरा करें । फिर जाहिरमें

सागरसमका पाठ मुखसे बोले। दो नमुत्थुण भी दे। अनन्तर सामायिक पारनेकापाठ "नमवइ तस्सामिच्छामि दुक्कडं" तक कह, तीनवार नवकार मंत्र बोलकर उठजावें।

इति सामायिक लेने और पारनेकी विधि समाप्त ॥



वन्दोजिनवरम् ॥

अथ प्रतिक्रमण प्रारंभ ॥

अथ इच्छामिणं भंते का पाठ ॥ १ ॥

इच्छामिणं भंते तुब्भेहिं अभणुणायसमाणे देवासियं पड़िक्कमणं ठाएमि, देवसियंणाण दंसण चरित्ताचरित्त तप अतिचार चितव-णार्थं करेमि काउस्सग्गं ॥

अथ इच्छामि ठामि का पाठ ॥ २ ॥

इच्छामि ठामि काउस्सग्गं जो मे देवसिओ अइयारो कओ, काइओ, वाइओ, माणसिओ, उस्सुत्तो उमग्गो अकप्पो अकर-णिज्जो दुज्झाओ दुविचिंतिओ अणायारो अणिच्छियव्वो,असावग पाउग्गो नाणे तह दंसणे चरित्ताचरित्ते सुय सामाइए तिन्ह गुत्तीणं, चउन्हं कसायाणं, पंचन्हमणुव्वयाणं, तिन्हं गुणव्वयाणं, चउन्हं सिक्खावयाणं, वारसविहस्स सावगधम्मस्स जं खंडियं जं विराहियं तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अथ आगमे तिविहे का पाठ ॥ ३ ॥

आगमे तिविहे पण्णत्ते तंजहा,सुत्तागमे अत्थागमे तदुभयागमे: एहवा श्री ज्ञान के विषै जे कोई अतिचार लागो होय ते आलोउं:

जं वाइद्धं (१) वच्चामेलियं (२) हीणक्खर (३) अच्चक्खरं (४) पयहीणं (५) विणयहीण (६) जोगहीणं (७) घोसहीण (८) सुट्ठुदिन्नं (९) दुट्ठुपडिच्छियं (१०) अकाल कओ सज्झाओ (११) काले न कओ सज्झाओ (१२) असज्झाए सज्झाइयं (१३) सज्झाए न सज्झाइयं (१४) भणतां गुणतां चितवतां न विचारतां ज्ञान अने ज्ञानवंतकी आशातना किवी होय तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अथ दंसण श्रीसमकित का पाठ ॥ ४ ॥

अरिहंतो महदेवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।
जिणपण्णत्तं तत्त, ए सम्मत्तं मए गहियं ॥ १ ॥
परमत्थ संथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि ।
वावन्न कुदंसणवज्जणा य सम्मत्तसद्दहणा ॥ २ ॥

एवा श्री समकित के विषे जे कोई अतिचार लागो हुवे तो आलोउं जिन वचनमें शंका आणी होय (१) परदर्शनरी वांछा किवी होय (२) फलप्रति संदेह आण्या होय (३ पर पाखंडीरा प्रशंसा किवी होय (४) पर पाखंडीरा संस्तव परिचय कीयो होय (५) तो म्हारा समकित रूप रत्नर विषे मिथ्यात्व रूप रज मैल लाग्यो होय तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अथ बारे व्रत और उनके अतिचार ॥ २४ ॥

(१) पहिला अणुव्रत–थूलाओ पाणाइ वायाओ विरमण त्रस जीव, बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदिय, पंचेंदिय, विन अपराध

जाणी प्रीछी आकुरी संकल्पी हणवारी बुद्धि करीने हणवा हणावणका पचक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा, वयसा, कायसा ॥

[**एवा पहिला थूल प्राणातिपात विरमण व्रतके** विषे जे कोई अतिचार लागो होवे तो आलोउं ॥

रीस वशे गाढा बंधण बांध्या होय (१) गाढा घाव घाल्या होय (२) चामना छेद कीधा होय (३) अति भार घाल्या होय (४) भात पाणीना विच्छेद कीधा होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ १ ॥

दूजो अणुव्रत-थूलाओ मोसावायाओ विरमणं कन्नालियं, गोवालियं, भोमालियं, थापणमोसो, मूंक ले कूड़ी शाख, इत्यादिक मोटका झूठ बोलणका पचक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा ॥

एवा दूजा थूल मृषावाद विरमण व्रतके-विषे जे कोई अतिचार लागो होय तो आलोउं। सहसात्कार किणी प्रति कूड़ो आल दीधो होय (१) रहस्यछानी वात प्रगट कीधी होय (२) पोतानी स्त्रीका मर्म प्रकाश्या होय (३) मृषा-उपदेश दीधा होय (४) कूड़ा लेख लिख्या होय (५) तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ २ ॥

(३) तीजो अणुव्रत--थूलाओ अदिन्नादाणाओ विरमणं, खातर खिणी, गांठ छोडी, ताळो पर कूंची, वाट पाड़ी, पड़ी वस्तु मोटकी धणियां सेती जांणीने लेवणका पचक्खाण । जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा ॥

एवा तीजा थूल अदत्तादान विरमण व्रत के-विषे

जे कोई अतिचार लागो होय तो आलोउं । चोराई वस्तु लीधी होय (१) चोरने साझ दीधो होय (२) राज्य विरुद्ध कारज कीधा होय (३) कूड़ा तोला कूड़ा मापा कीधा होय (४) वस्तु में भेल संभेल, सखरा दिखाय नखरी आपी होय (५) तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ३ ॥)

४ चोथो अणुव्रत थूलाओ मेहुणाओ विरमण, पोता री स्त्री उपरांत मैथुन सेवणका पचक्खाण । जावज्जीवाए देवता संबंधी दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा, मिनख तिर्यंच संबंधी इकविहं इकविहेणं न करेमि कायसा ॥

एवा चौथा थूल स्वदारा सतोष विरमण व्रतके-

विषे जे कोई अतिचार लागो होय तो आलोउं । इत्वर थोड़ा काल गर्हीसुं गमन कीधा होय (१) अपरगृहीसुं गमन कीधा होय(२) अनंग क्रीड़ा कीधी होय (३) पराया विवाह नातरा जोडिया होय (४) काम भोग तीव्र अभिलाषाए सेविया होय (५) तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ४ ॥

५ पांचमा अणुव्रत-थूलाओ परिग्गहाओ विरमणं, खेत घर का, रूपा सोना का, धन धान्यका, दुपद चौपदका, घर बिखराका यथा परिमाण कीधा छे ते उपरांत आप का करी परिग्रह राखणका पचक्खाण जावज्जीवाए एकविहं तिविहेणं न करेमि मणसा वयसा कायसा ॥

एवा पांचमा थूल परिग्रह विरमण व्रतके-विषे जे कोई अतिचार लागो होय तो आलोउं। खेत घरको (१) रूपा सोनाको (२) धन धान्यको (३) दुपद चौपद को (४) घर विखेराको (५) यथा परिमाण कीधो छै. ते अतिक्रम्यो होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ५ ॥

६ छट्ठो दिशिविरमण व्रत–उंची नीची तिरछी दिशा को यथा परिमाण कीधो छै ते उपरांत स्वइच्छाए जाई ने पांच आश्रव द्वार सेवण का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एकविह तिविहेणं न करेमि मणसा वयसा कायसा ॥

एवा छट्ठो दिशिविरमण व्रत के–विषे जे कोई अतिचार लागो होय तो आलोउं ॥ उंची (१) नीची (२) तिरछी दिशा को यथा परिमाण कीधो छै ते अतिक्रम्यो होय (३) एक दिश घटाई होय एक दिश वधाई होय (४) संदेह पडियां पंथ आगे चाल्यो होय (५) तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥६॥

७ सातमो उपभोग परिभोग विरमण व्रत--

उल्लणियाविहं (१) दंतणविहं (२) फलविहं (३) अब्भंगणविहं (४) उवट्टणविहं (५) मज्जणविह (६) वत्थविहं (७) विलेवणविह (८) पुप्फविहं (९) आभरणविहं (१०) धूपविहं (११) पेजविहं (१२) भक्खणविहं (१३) ओदनविहं (१४) सूपविहं (१५) विगयविहं (१६) सागविहं (१७) माहुरविहं (१८) जीमणविहं (१९) पाणीविहं (२०) मुखवासविहं (२१) वाहनविहं (२२) सयणविहं (२३)

पभिविहं (२४) साचितविहं (२५) दव्वविहं (२६) इत्यादिक छवीस बोलां की मरजादा कीधी छै ते उपरांत उपभोग परिभोग भोगवा का पचक्खाण आवजीवाए एगविहं तिविहेण न करेमि मणसा वयसा कायसा ॥

एवा सातमा उपभोग विरमण व्रतके—विषे ज

कोई अतिचार लागो होय तो आलोउं। पचक्खाण उपरांत सचित का आहार कीधो होय (१) सचित प्रतिबद्ध का आहार कीधो होय (२) अपक्क का आहार कीधो होय (३) दुपक को आहार कीधो होय (४) तुच्छ ओषधि भक्खण कीधा होय थोडो खाय घणो नाखियो होय (५) तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ एभोजनथकी कह्या हवे कम थकी पंनर कर्मादान श्रावकने जाणवा जोग छै पण आदरवा जोग नथी तं जहा, ते कइ छै इंगालकम्मे (१) वणकम्मे (२) साडी कम्मे (३) भाडीकम्मे (४) फोडीकम्म (५) दंतवणिज्जे (६) लक्खवणिज्जे (७) रसवणिज्जे (८) केसवाणिज्जे (९) विसवणिज्ज (१०) जंतपिल्लणकम्मे (११) निलंछणकम्म (१२) दवग्गिदावणया (१३) सर दह तलाव परिसोसणया (१४) असई पोसणया (१५) तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥७॥

८ अठमो अनर्थ दंड विरमण व्रत के—चउव्विहे

पण्णत्ते तं जहा, अवज्झाणायरियं, पमायायरियं, हिंसपयाणं, पावकम्मोवएसे, एवा अनर्थदंड सेवणरा पचक्खाण, आवज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा ॥

[एवा आठमा अनर्थदंड विरमण व्रत के विषे जे कोई अतिचार लागो होय ते आलोऊं ॥ कंदर्पकी कथा किधी होय (१) भंड कुचेष्टा किधी होय (२) मोखर्य वचन बोल्या होय (३) अधिकरण जोडी मुक्या होय (४) उपभोग परिभोग अधिका वधार्या होय (५) तस्स मिच्छामि दुकडं ॥ ८ ॥

[९] नवमो सामायिक व्रत—सावज्जं जोगं पच्चक्खामि, जाव नियमं पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं न करेमि नकारवेमि मणसा वयसा कायसा एवी म्हारी श्रद्धा प्ररूपणा तो छै फरसणा करूं तेवारे सिद्ध ॥

[एवा नवमा सामायिक व्रत के विषे जे कोई अतिचार लागो होय ते आलोऊं । मन (१) वचन (२) कायारा (३) जोग पाड़वे ध्यान प्रवर्ताया होय, सामायिकमे संभालना नही किधी होय (४) अणपूगी पाड़ी होय (५) तस्स मिच्छामि दुकडं ॥ ९ ॥

[१०] दशमो देशावकाशिक व्रत—दिन प्रति प्रभात थकी प्रारंभीने पूर्वादिक छः दिशकी जेटली भूमिका मोकली राखीछै ते उपरांत स्वइच्छाये कायाए जईने पंच आश्रवद्वार सेवण का पचक्खाण । जाव अहोरत्तं दुविहं तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा, ते मांहि द्रव्यादिक नेमकी मरजादा किधी छे ते उपरांत भोगणका पच्चक्खाण । जाव दिवसं पज्जुवासामि, एगविहं तिविहेण न करेमि मणसा वयसा कायसा एवी म्हारी श्रद्धा प्ररूपणा तो छै फरसणा करूं तेवारे सिद्ध ॥

[एवा दशमा दिशावकाशिक व्रतके—विषे अ कोइ अतिचार लागा होय ते आलोऊं । नेमि भूमिकाथी वस्तु मा रथी अणाइ होय (१) मोकलाई होय (२) शब्दकरी (३) रूपकरी (४) पुद्गल नाखी आपा अणायो होय (५) तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ १० ॥

(११) इग्यारमो पोषधव्रत—असण पाण खाइमं साइमं का पच्चक्खाण, अबंभ सेवणका पच्चक्खाण माला वन विलेपण का पच्चक्खाण, सत्थ मुसलादिक सावज्ज जोग का प च्चक्खाण, जाव अहोरत्त पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा, एवी म्हारी श्रद्धा प्ररूपणा तो छै फरसणा करूं तेवारे सिद्ध ॥

[एवा इग्यारमा पोषधव्रत के—विषे अ कोइ अ तिचार लागो होय ता आलोऊं । पाथामें मका संथारो न जो या होय, माठी तर जोया होय (१) न पूंज्या होय, माठी तर पूंज्या होय (२) उच्चार, पासवण, भूमिका न जोई होय, माठी तर जोइ होय (३) न पूंजी होय, माठी तर पूंजी होय (४) पाथामें निद्रा, विकथा, प्रमाद कियो होय (५) तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ आवतां " आवसही आवसही " नहीं की धू होय, आवतां " निस्सही निस्सही " नहीं कीधू होय, इन्द्र महाराजका आज्ञा नहीं लिधा होय, थाडी दूर पूज्यो होय, घ णा दूर परठ्या होय, परठन वाननार " वासिर वासिर " नहीं किधू होय, आयन थाइरियव नहीं काधु होय, तस्स मि च्छामि दूक्कड ॥ ११ ॥

[१२] बारमो अतिथि संविभाग व्रत—साधु निर्ग्रंथने फासु एषणीक शुद्ध, असणं (१) पाण (२) खाइमं (३) साइमं (४) वत्थ (५) पडिग्गह (६) कंबल (७) पायपुच्छणेणं (८) (पाडिहारिय) पीढ (९) फलग (१०) सज्जा) (११) संथारो (१२) औषध (१३) ने भेषज (१४) प्रतिलाभ तो थको विचरूं एवी म्हारी श्रद्धा प्ररूपणा तो छे फरसणा करूं तेवारे सिद्ध ॥

[एवा बारमा अतिथि संविभाग व्रत के विषै जे कोई अतिचार लागो होय तो आलोऊं । सूझती वस्तु सचित्त ऊपर मूकी होय (१) सचित्त करी ढांकी होय (२) पोतेरी वस्तु पारकी कहीहोय (३) अहंकार भावे दान दीधुं होय, थोड़ो दे घणो पोमायो होय (४) भोजन वेळा टाळीने निमंत्रणा किधी होय (५) तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ १२ ॥

इति बारे व्रत तथा उनके अतिचार समाप्त ॥

अथ संलेखणा का पाठ ॥ २९ ॥

अहभंते अपच्छिम मरणांतिय संलेहणा झूसणा आराहणा, पोषध शाळा पूंजीने, उच्चार पासवण भूमिका पडिलेहिने, गमणागमणे पड़िक्कमीने, दर्भादिक संथारो सथरीने, दर्भादिक संथारो दुरुहीने, पूर्व तथा उत्तर दिशि पल्यंकादिक आसणे बेसीने, करयलसंपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजली त्तिकट्टु, एवं वयासी, नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जावसंपत्ताणं, एम अनंता सिद्धजीने वंदना नमस्कार करीने नमोत्थुणं अरि-

इवाण भगवंताण जावठाण संपाविउं काम, इम शूआ नमोत्थुणं गुणीनें जयवंता वर्त्तमान तीर्थंकर महाराजने वंदना नमस्कार करीन, पावका धर्माचार्यजीने नमस्कार करीन, साधु प्रमुख च्यार तीर्थ खमावीने, सर्व जीव राशि खमावीने, पूर्वे ज मत आदर्‍या छे, तना अतिचार दोष लागा छे, ते सर्व आलोइ, पडिक्कमी, निंदी, नि शल्य थइ, सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि। सव्वं मोसावायं पच्चक्खामि। सव्वं अदिन्नादाणं पच्चक्खामि। सव्वं मेहुणं पच्चक्खामि। सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि। सव्वं कोहं माणं जावमिच्छा दंसणसल्लं, सव्वं अकरणिज्जं पच्चक्खामि। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि नाणुजाणामि, मणसा वयसा कायसा एम अढार पाप स्थानक पच्चक्खीने, सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं चउव्विहंपि आहारं पच्चक्खामि, जावज्जीवाए। एम च्यारे आहार पच्चक्खीने ज पाय, इमं सरीरं इट्ठं कंतं, पियं मणुन्नं मणामं धिज्जं विसासियं सम्मयं अणुमयं बहुमयं भंडकरंडगसमाणं रयण करंडगभूयं मा णंसियं मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं वाला, मा णं चोरा, मा णं दंसा, मा णं मसगा, मा णं वाहिय, पित्तियं, कप्फियं, संभीमं सन्निवाइयं, विविहा रोगायंका परिसहोवसग्गा फासा फुसंति, एयं पियणं, चरमेहिं उस्सास निस्सासेहिं, वोसिरामि तिकट्टु। एम शरीर वोसिरावीने, काल अणवकंखमाणे विहरामि। एवी भया प्ररूपणा तो छ फरसणा कर्म तथार सिद्ध ॥

[एवी संलेखणाके विषे ज काइ अतिचार लागो होय ते आलोउं, इहलोगासंसप्पओग (१) परलोगासंसप्पओग

(२) जीवियासंसप्पओगे (३) मरणासंसप्पओगे (४) कामभोगासंसप्पओगे (५) मा मज्झ हुज्ज मरणं ते । श्रद्धा प्ररूपणामे फरक आयो होय तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अथ तस्स सव्वस्स का पाठ ॥ ३० ॥

तस्स सव्वस्स देवसियस्स अइयारस्स दुब्भासिय दुचिंतियं आलोयंते पडिक्कमामि ॥

अथ तस्स धम्मस्स का पाठ ॥ ३१ ॥

तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स अब्भुट्ठिउमि आराहणाए, विरउमि विराहणाए, तिविहेण पडिक्कंतो वंदामि जिणे चउव्वीसं ॥

अथ चत्तारी मंगलं का पाठ ॥ ३२ ॥

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगल, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं; चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवली पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा, चत्तारि सरणं पवज्जामि, अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ॥ अरिहन्तांरो शरणो, सिद्धांरो शरणो, साधुजीरो शरणो, केवली प्ररूपित धर्मरो शरणो ॥ चार शरणा दुर्गति हरणा, और शरणो नहीं कोय; जे भव्य प्राणी आदरे, अक्षय अमर पद होय ॥ १ ॥

अथ अठारे पाप स्थानक का पाठ ॥ ३३ ॥

अठारे पाप स्थानक आलोउं। (१) पला प्राणातिपात (२) दूजा मृषावाद (३) तीजो अदत्तादान (४) चोथो मैथुन (५) पांचमा परिग्रह (६) छट्ठा क्रोध (७) सातमो मान (८) आठमा माया (९) नवमा लोभ (१०) दसमो राग (११) इग्यारमा द्वेष (१२) बारमो कलह (१३) तेरमो अभ्याख्यान (१४) चवदमा पैशुन्य (१५) पनरमा पर परिवाद (१६) सोलमा रति अरति (१७) सतरमो माया मोसा (१८) अठरमा मिथ्या दर्शन शल्य ए अठार पाप स्थानक सेव्या होय, सेवाया होय, सेवता प्रति भलो जाण्या होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अथ खमासमणा का पाठ ॥ ३४ ॥

इच्छामि, खमा समणा, वंदिउं जावणिज्जाए, निसीहिआए (१) अणुजाणह, मे, मिउग्गहं (२) निसीहि, " काय " " काय " संफास, खमणिज्जो, भे, किलामो अप्प किलंताणं, बहुसुभेण, भे, दिवसो, वइक्कंतो (३) " जत्ता " भे (४) " जवणिज्जं " च, " भे " (५) खामेमि, खमासमणो, देवसियं, वइक्कमं (६) आवस्सिआए, पडिक्कमामि, खमास

---

(१) प्राणिघातो मृषावादोऽदत्तादानं च मैथुनम् ।
परिग्रहस्तथा कोपो मानो माया च लोभकः ॥ १ ॥
रागो द्वेषः स्मरस्याभ्याख्यानं कलहस्तथा ।
पैशुन्यं परिवादश्च माया सुरतमेव च ॥ २ ॥
मिथ्यादर्शनशल्यं च भवसन्ततिकारणम् ।
अमून्यष्टादशाऽघस्थानानि व्युत्सृजाम्यहम् ॥ ३ ॥

मणाणं, देवसिआए आसायणाए, तेत्तीसण्णयराए, जंकिंचि, मिच्छाए, मणदुक्कड़ाए, वयदुक्कड़ाए, कायदुक्कड़ाए, कोहाए, माणाए, मायाए, लोहाए, सव्वकालियाए, सव्वमिच्छोवयाराए, सव्वधम्माइक्कमणाए, आसायणाए, जो, मे, अइयारो, कओ, तस्स, खमासमणो, पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि-अप्पाणं वोसिरामि [७] ॥

अथ पंच पदों की वंदना का पाठ ॥ ३५ ॥

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाण, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं.

[" नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः "]

पहिले पद णमो अरिहंताण कहता सर्व श्री अरिहत भगवंतजी महाराज भणी म्हारो [वंदना] नमस्कार हुई जो। अरिहंतजी महाराज केवा छे? उप्पन्न नाण दसणधरा अरहा जिन केवली, जघन्य वीस तीर्थंकर, उत्कृष्टा एक सौ सित्तर देवाधिदेव ते मांहे वर्तमान काले—

वीस विहरमान.

(१) श्री सीमंधरस्वामी (२) युगमंधर स्वामी (३) बाहु स्वामी (४) सुबाहु स्वामी (५) सुजात स्वामी (६) स्वयंप्रभ स्वामी (७) ऋषभानन स्वामी (८) अनतवीर्य स्वामी (९) सूरप्रभ स्वामी (१०) विशाल स्वामी (११) वज्रधर स्वामी (१२) चन्द्रानन स्वामी (१३) चन्द्रबाहु स्वामी (१४) भुजग स्वामी (१५) ईश्वर स्वामी (१६) नेमिप्रभ स्वामी [१७] वीरसेन स्वामी [१८] महाभद्र

स्वामी [१९] देवयश स्वामी [२०] अजितवीर्य स्वामी

चौवीस अतिशय पैंतीस वाणी करी विराजमान, एक हजार आठ लक्षण का धरण हार, त्रिलोक महिमा, त्रिलोक वदनीक, चौसठ इन्द्रांरा पूजनीक, अठारे दोषां रहित रहित, द्वादश गुणां करने विराजमान अनंतो ज्ञान (१) अनंतो दरशण (२) अनंतो चारित्र (३) अनंतो वीर्य [४] अशोक वृक्ष (५) सुरपुष्प वृष्टि (६) दिव्य ध्वनि (७) चामर (८) सिंहासन (९) भामंडळ (१०) देवदुंदुभि (११) छत्र धार (१२) जघन्य दोय कोड़ केवला, उत्कृष्टा नवक्रोड़ केवली, थहर विचर जो महापुरुषांने म्हारो (वंदना) नमस्कार हुइ जो । कोइ अविनय आशातना हुई होय तो वारंवार हाथ जाइ मान मोड़ खमाउ छुं, आप खमवा योग्य छो । एक हजार आठ वार मन वचन कायाए करी सुजा सुजा वदना नमस्कार हुइ जो ✱ ॥ १ ॥

दूजेपद णमो सिद्धाणं कहतां सर्व सिद्धजी महाराज भणी म्हारा (वंदना) नमस्कार हुइ जो । सिद्धजी महाराज कवा छे? सकळ काम सिद्ध कराने आठ कर्म खपाय, पनरे भेद सिद्ध सिद्धा ॥ तीर्थ सिद्धा (१) अतीर्थ सिध्दा (२) तीर्थकर सिद्धा (३) अतीर्थकर सिद्धा (४) स्वयंबुद्ध सिद्धा (५) प्रत्येकबुद्ध सिद्धा (६) बुद्धबोहिय सिद्धा (७) स्त्रीलिंग सिद्धा (८) पुरुषलिंग सिद्धा (९) नपुंसकलिंग सिद्धा

✱ ऐसा चिन्ह हो वहांतर तिक्खुत्तो का पाठ तीनवार बोलना ।

(१०) स्वलिंगी सिद्धा (११) अन्यलिंगी सिद्धा (१२) गृहस्थलिंग सिद्धा (१३) एक सिद्धा (१४) अनेक सिद्धा (१५) आठ गुणां करीने विराजमान अनंतो ज्ञान (१) अनंतो दर्शन (२) अनंतो सुख (३) क्षायिक समकित (४) अटल अवगाहना [५] अमूर्तिपणो [६] अगुरुलघु [७] अनत अकरण वीर्य ॥

॥ अडिल छंद ॥

अविनाशी अविकार परम रसधाम है,
समाधान सरवंग सहज अभिराम है।
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंत है,
जगत शिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत है ॥ १ ॥

जठे जन्म नहीं, जरा नहीं, मरण नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, भूख नहीं, तृषा नहीं, चाकर नहीं, ठाकर नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, दुःख नहीं, दारिद्र्य नहीं, एकमे अनेक, ज्योतिमें ज्योति विराजमान, एवा अनंता सिद्ध भगवंत छै, जांने म्हारो [वंदना] नमस्कार हुई जो । कोई अविनय आशातना हुई होय तो वारंवार हाथ जोड मान मोड़ खमाउं छु, आप क्षमवा योग्य छो । एक हजार आठवार मन वचन कायाए करी भुजो भुजो (वंदना) नमस्कार हुईजो * ॥ २ ॥

तीजे पद णमो आयरियणं कहता सर्व आचार्यजी महाराज मणी म्हारो (वंदना) नमस्कार हुई जो । आचार्यजी महाराज केवा छै? ज्ञानाचार (१) दर्शनाचार (२) चारित्राचार (३) तपाचार (४) वीर्याचार (५) ए पांच आचार पाळे,

स्वामी [१९] देवयश स्वामी [२०] अजितवीर्य स्वामी

चौतीस अतिशय पैंतीस वाणी करी विराजमान, एक हजार आठ लक्षण का धरण हार, त्रिलोक महिया, त्रिलोक वदनीक, चौसठ इंद्रांरा पूजनीक, अठारे दोषां रहित रहित, द्वादश गुणां करने विराजमान अनंतो ज्ञान (१) अनंतो दरशण (२) अनंतो चारित्र (३) अनंतो वीर्य [४] अशोक वृक्ष (५) सुरपुष्प वृष्टि (६) दिव्य ध्वनि (७) चामर (८) सिंहासन (९) भामंडळ (१०) देवदुदुभि (११) छत्र धार (१२) जघन्य दाय कोड़ केवला, उत्कृष्टा नवकोड़ केवला, वहर विचर जो महापुरुषांने म्हारो (वंदना) नमस्कार हुइ जो। कदई अविनय आसातना हुइ होय तो वारंवार हाथ जोड़ मान मोड़ खमाउ छूं, आप खमवा जोग्य छो। एक हजार आठ वार मन वचन कायाए करी हुजो हुजो वदना नमस्कार हुइ जो * ॥ १ ॥

दूजेपद णमो सिद्धाणं कहता सर्व सिद्धजी महाराज सर्वा म्हारा (वदना) नमस्कार हुइ जो। सिद्धजी महाराज कया छै? सकल काम सिद्ध करीने आठ कर्म खपाय, पनर भेद सिद्ध सिद्धा॥ तीर्थ सिद्धा (१) अतीर्थ सिध्दा (२) तीर्थकर सिद्धा (३) अतीर्थकर सिद्धा (४) स्वयंबुद्ध सिद्धा (५) प्रत्येकबुद्ध सिद्धा (६) बुद्धबोहिय सिद्धा (७) स्त्रीलिंग सिद्धा (८) पुरुषलिंग सिद्धा (९) नपुंसकलिंग सिद्धा

---

* ऐसा चिन्ह हो वहांतर तिखुत्ते का पाठ तीनवार बोलना।

ग्रंथका जाणणहार, इग्यारे अंग बारे उपांग चरणसित्तरी करणासित्तरी भणे भणावे ए पच्चीस गुणे करी विराजमान, तथा चउदे पूर्व इग्यारे अंग भणे भणावे, सात नय, निश्चय व्यवहार प्रत्यक्ष ने परोक्ष दोय प्रमाण के जाणणहार, मनुष्य अथवा देवता कोई पण जेने विवादमें छलवाने समर्थ नहीं, सूत्र पाठका दातार उपाध्यायजी महाराज, जांने म्हारो [वंदना] नमस्कार हुई जो। कोई अविनय आशातना हुई होय तो वारंवार हाथ जोड़ मान मोड़ खमाउं छूं, आप खमवा योग्य छो एक हजार-आठ वार मन वचन कायाए करी भुजो भुजो म्हारो [वंदना] नमस्कार हुईजो * ॥ ४ ॥

पांचमे पद णमो लोए सव्वसाहूणं कहतां लोकरे विषे सर्व साधुजी महाराज भणी म्हारो (वंदना) नमस्कार हुई जो।

[पोतारा धर्माचार्यजी जैनाचार्य पूज्यजी श्री श्री श्री १००८ श्री श्री श्री ...]

जघन्य दोय हजार क्रोड़ साधुजी, उत्कृष्टा नव हजार क्रोड़ साधुजी, पांचे समिते समिता, तीने गुप्त गुप्ता बयांळीस दोष टाळीने आहार पाणी का लेणहार, छ कायके पीर, छ कायके रक्षक बावीस परीसह का जीतणहार, बावन अनाचार के टालनहार, तेड़िया जाय नहीं, नूंतिया जीमे नहीं, निर्लोभी, निर्लालची, शूरा वीरा धीरा मोक्ष मार्ग साधे, भगवान की आज्ञामें विहरे विचरे, शुद्ध संयम पाळे, सत्ताईस गुणां करी विराजमान, पंच महाव्रत पाळे (५) पंच इन्द्रियों वश करे

---

(१) इस जगह पर अपने अपनें गुरु महाराजका नाम लेना।

पांच महाव्रत पाळे, पांच इन्द्रियों वश करे, चार कषाय टाळे, नववाड़ सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य पाळे, पंच समिति, तीन गुप्ति, शुद्ध आराधे ॥ छत्तीस गुणों करने विराजमान आचार्यजी महाराज अर्थ का दातार, आठ संपदा सहित, ऐसा महापुरुषांने म्हारो वंदना नमस्कार हुइ जो ॥ कोई अविनय आशातना हुई होय तो वारंवार हाथ जोड़ मान मोड़ खमाउं छूं, आप खमवा योग्य छो एक हजार आठवार मन वचन कायाए करी सुखा सुखा म्हारा [वंदना] नमस्कार हुइ जो * ॥ ३ ॥

चौथे पद णमो उवज्झायाणं कहतां सर्व उपाध्यायजी महाराज मणा म्हारा (वंदना) नमस्कार हुइ जो। उपाध्यायजी महाराज कवा छ ? उपाध्यायजी, गणधरजी, स्थविरजी, बहु श्रुतिजी, इग्यार अंग, आचारांग (१ सुयगडांग (२) ठाणांग ३) समवायांग (४) भगवती (५) ज्ञाता (६) उपासकदशा (७) अंतगडदसा (८) अनुत्तरोववाइदशा (९) प्रश्नव्याकरण (१०) विपाक (११) ॥

बारे उपांग-उववाइ (१) रायप्पसेणी (२) जीवाभिगम (३) पन्नवणा (४) जम्बूद्वीपपण्णत्ति (५) चंद पण्णत्ति (६) सूरपण्णत्ति (७) निरावलिया (८) कप्पवडिंसिया (९) पुप्फिया (१०) पुप्फचूलिया (११) वन्हिदिसा (१२) ॥

मूल सूत्र चार-उत्तराध्ययन (१) दशवैकालिक (२) नंदी सूत्र (३) अनुयोगद्वार (४) ॥

छेद चार दशाश्रुतस्कंध (१) बृहत्कल्प (२) व्यवहार (३) निशीथ (४) ॥ बत्तीसमा आवश्यक ॥ आदि देई अनेक

शील पाले, तपस्या करे, भावना भावे. संवर करे, सामायिक करे, पोषो करे, पडिक्कमणो करे, तीन मनोरथ चौदह नियम चिंतवे, एक व्रत धारी, तथा बारे व्रत धारी, मूलगुण उत्तरगुण सहित ते मांहे मोटाने हाथ जोड़ मान मोड़ पगे लागी खमाउं छं, छोटाने समुच्चय खमाउं छं ॥

अथ चौरासी लक्ष जीवायोनि का पाठ ॥ ४१ ॥

साथ लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वायुकाय, दश लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दोय लाख बेंद्रिय, दोय लाख ते इंद्रिय, दोय लाख चउरेंद्रिय, चार लाख देवता, चार लाख नारकी, चार लाख पंचेंद्रिय तिर्यंच, चौदह लाख मनुष्यरी जाति, चार गति चौरासी लाख, जीवायोनि सूक्ष्म बादर पर्याप्तक अपर्याप्तक जाणतां अजाणतां कोई जीव हण्यो होय, हणायो होय, हणताने भलो जाण्यो होय, मन कर वचन कर काया कर अठारे लाख चोईस हजार एक सौ वीस (१८-२४१२०) मिच्छामि दुकड़ं ॥

अथ खामेमि सव्वे जीवा का पाठ ॥ ४२ ॥

खामेमि सव्व जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मेत्ति मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झ ण केणई ॥ १ ॥
एवं महं आलोइय, णिंदिय गरहिय दुगंछियं सम्मं ।
तिविहेण पड़िक्कंतो, वंदामि जिणे चउव्वीस ॥ २ ॥
" दैवसिक प्रायश्चित्तविशोधनार्थं करोमि कायोत्सर्गं "

---

(१) आर्या वृत्तम् ॥

(१०) चार कषाय गळे (१४) भाव सच (१५) करण सचे (१६) जोग सच (१७) क्षमावंत (१८) वैराग्यवंत (१९) मन समाधारणिया (२०) वयसमाधारणिया (२१) काय समाधारणिया (२२) नाण संपन्न (२३) दंसण संपन्न (२४) चारित्त संपन्न (२५) वेदनी समा अहियासणिया (२६) मरणांति समा अहियासणिया (२७) ॥

इसी साधुजी महाराजने म्हारो [वंदना] नमस्कार हुइ जो। काइ अविनय आशातना हुइ होय तो वारंवार हाथ जोड मान मोड खमाउं छु आप क्षमवा योग्य छो। एक हजार आठवार मन वचन कायाए करी सुधा सुधा म्हारा [वन्दना] नमस्कार हुई जो * ॥ ५ ॥

ए पंच पद लोकमें महा मंगलीक छे, महा उत्तम छे, सरण लेवा योग्य छे, वारंवार इण भवमें तथा भव भवमें शर्ने सरणा हुइ जो ॥

इति पंच पदों की वंदना समाप्त ॥

अथ आयरिय उवज्झाए का पाठ ॥ ४० ॥

आयरिय उवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुलगणे अ ।
जेमे केई कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि ॥ १ ॥
सव्वस्स समणसंघस्स, भगवओ अंजलिं करिए सीसे ।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयंपि ॥ २ ॥
सव्वस्स जीवरासिस्स, भावओ धम्मनिहियनियचित्तो ।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयंपि ॥ ३ ॥

अथ खमत खामणा का पाठ ॥ ४१ ॥

अढाइ द्वीप, पनरे क्षेत्र मांहि तथा बारे, श्रावक श्राविका दान देवे,

अथ प्रतिक्रमण की विधि ॥



थम चोवीस स्तव करना ("इरिया वहियाए" का पाठ "तस्सउत्तरि का पाठ पढकर कायोत्सर्ग (काउस्सग्ग) करना मनमें "इरियावहियाए" का पाठ बोलना. "णमो अरिहंताणं" कहकर "लोगस्स" का पाठ फिर बायां घुटना खडा करके दो "नमोत्थुणं" देना दूसरे नमोत्थुणं में "ठाणं संपविउं कामस्सणं णमोजिणाणं जिअभयाणं" कहना.

पीछे आसन छोड खडा होकर तीन दफह "तिक्खुत्ता" बोलना. दो हाथ जोडकर देव गुरु साधर्मी भाईकी आज्ञा लेकर "देवसिक पडिक्कमणा करने की आज्ञा है" ऐसा कहके "इच्छामिणंभंते" का पाठ "नवकार," तीन बार तिक्खुत्ता कहकर "पहिले आवश्यक की आज्ञा है" ऐसा कहना, पीछे "करेमिभंते" का पाठ "इच्छामिठामि, तस्स उत्तरि" का पाठ कहकर कायोत्सर्ग करना (शक्ति होतो खडा रहकर करना, शक्ति न होतो बैठ कर "सिद्धासन" लगाके "जिनमुद्रावत्" कायोत्सर्ग करना.

कायोत्सर्गमें १४ ज्ञान का "जं वाइद्धं" इत्यादि, समकित का पांच "जिन वचनमे शंका आणि होय" इत्यादि, बारह व्रत्तोंका ६० (एवा-से लेके एक एक व्रत का पांच

अथ समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ ॥ ४४ ॥

गंठि सहियं मुट्ठिसहियं नवकारसि पोरसी साढ पोरसी आप आपनी धारणा प्रमाणे तिविहंपि चउव्विहंपि आहारं असण पाणं खाइम साइम अन्नत्थणा भोगेणं सहसागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं वोसिरे ॥

अथ आलोचना का पाठ ॥

सामायिक, चउविसत्थो, वंदनक, पडिक्कमणो, ए च्यार आवश्यक समाप्त पांचवें आवश्यक री आज्ञा है ॥ सामायिक, चउविसत्थो, वंदनक, पडिक्कमणा, काउस्सग्ग, ए पांच आवश्यक समाप्त छठे आवश्यक रे कामी, धन्य है श्रीवर्द्धमानस्वामी ॥ तहत सामायिक, चउविसत्थो, वंदनक, पडिक्कमणो, काउस्सग्ग, पच्चक्खाण, ए छ आवश्यक मांहे जाणतां अजाणतां जे कोई अतिचार दोष लागा होय तथा पाठ उचारतां मात्रा अनुस्वार पद अक्षर अधिको ओछो आगो पाछो कह्या होय तस्स मिच्छा दुक्कडं ॥

मिथ्यात्वनो पडिक्कमणा, अव्रतना पडिक्कमणा, प्रमादनो पडिक्कमणो, कषायनो पडिक्कमणा, अशुभजोगना पडिक्कमणा, ए पांच पडिक्कमणा मांहेला कोई पडिक्कमणा नहीं किया होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

गया काल का पडिक्कमणा, वर्तमान काल को संवर, तथा सामायिक, आवता काल का पच्चक्खाण, तेमां ज दोष लागा होय, अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचार अनाचार को तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ सम्पूर्ण मंगलं ॥

(इति श्रावक प्रतिक्रमण सम्पूर्णम् ॥)

ऐसे ही " का " और " यं " उच्चारण करते दूसरा आवर्तन हुआ (२) " का " और " य " के उच्चारणसे तीसरा आवर्तन होता है (३). पीछे " जत्ता भे जवणिज्जं च भे ,, इस नव अक्षरोंसे तीन आवर्तन होवे, यथा–प्रथम " ज " मंद स्वरसे " त्ता " मध्यम स्वरसे " भे " ऊंचे स्वरसे ऊपर की रीति मुझब दोनों हाथ जमीनपर धर के बीचमें (आरती रूप) आंखोंके ऊपर हाथ धरके क्रमसे एक एक अक्षर बोलते हाथ लगाना यह प्रथम आवर्तन हुवा (१)

" ज. व. णि. " यह तीनों अक्षर त्रिविध स्वरसे ऊपर के मुझब कहनेसे दूसरा आवर्तन होता है (२)

" ज्जं. च. भे " इन तीनों अक्षरोंसे पूर्वोक्त रीति करनेसे तीसरा आवर्तन होता है (३) ऐसे दोनों मिलके ६ आवर्तन एक वक्त " खमासमणे " का पाठ पढने से होते हैं और दूसरीवार पाठ पढनेसे १२ आवर्तन होते है.

पहिले खमासमणेमें " वइक्कमं " तक कहके " आवसियाए " इस पदपर खडा होना और गुरु के चरणों से पीछा हटना (विलोम रीतिसे) और मितावग्रहके बाहिर जाना अर्थात् तीन हाथ दूर गुरुके सन्मुख खडा रहकर शेष पाठ पढना.

दूसरे खमासमणे में पूर्वोक्त रीति मुझब जरा शरीर को झुकाकर " इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए णिसीहीआए अणुजाणह मे मिउग्गहं णिसीही " यह पाठ पढकर गुरुके नजदीक जाके बैठकर पूर्वोक्त विधि मुझब ६ आवर्तन देना. सब पाठ बैठे बैठे पढना. गुरुके सामने नजर रखनी. दूसरे खु-

पांच अतिचार) " १५ कमादान ' क, " ७ सलखया " क, (पृष्ठ ९९) " १८ पाप, इच्छामिठामि " का पाठ, कायोत्सग में कहींभी " तस्स मिच्छामि दुक्कडं " नहीं कह ना इच्छामिठामि का पाठमें " इच्छामिठामि काउस्सग्गं " की जगह " इच्छामि पडिक्कमिउं ' कहना फिर " नवकार " बोलके " णमो अरिहताणं " ऐसा प्रकट बोलके कायोत्सग छोडना

इति प्रथम सामायिक नामक आवश्यक सम्पूर्णम् ॥

तिक्खुत्तं का पाठ तीनवार कहकर " दूसरे आवश्यकी आज्ञा है " ऐसा बोलकर ' लोगस्स ' का पाठ पढना

इति चतुर्विंशतिस्तव नामक द्वितीयावश्यक समाप्तम् ।

फिर तीन तिक्खुत्त का पाठ कहकर " तीसरे आवश्यक की आज्ञा है ' ऐसा बोलकर दो वार " इच्छामि खमासमणो इत्यादि पाठ पढना, साधु श्रावक दोनो को अपने पास रजो-हरण (ओघा) [१] मुखपत्ति (२) और चलोट्या (पा लपट्टक) [३] इन तीन सिवाय कुछ नहीं रखना, पाठमें प्रथम " मिमीही " शब्द आवे तब मितावग्रहमें प्रवेशकर दो नों घुटनें खडे रखकर हाथ जोड गुरुके समीप बैठना पीछे गुरु के पावों में हाथ लगाकर अपने सिरपर हाथ लगाना ६ आवर्त करना " अहो कायं काय " इन अक्षरों का तीन आवर्त होते हैं यथा —दोनों हाथ लेकर हाथकी दशों अंगु लियोंका जमीनपर धरके मुखसे " अ " अक्षर नीचे स्वरसे कहना पीछे ऐसे ही दशों अंगुलियोंको आंखोंपर धरके " हो ' अक्षर ऊँचे स्वरसे बोलना यह प्रथम आवर्तन हुआ (१)

तीन तिक्खुत्तेका पाठ पढकर " पांचवें आवश्यक की आज्ञा है " यह अक्षर बोलकर " दैवसिक प्रायश्चित्त विशोधनार्थ करोमि कायोत्सर्ग-नवकार-करेमि भंते-इच्छामिठामि-तस्सउत्तरी-का पाठ कहकर कायोत्सर्ग करना. कायोत्सर्गमें " देवसी, राई " (रात्रि) " पक्खी " " चोमासी " " संवत्सरी " पडिक्कमणामें ४ लोगस्स कहना. यहतो हमारी सम्प्रदाय की रीति हुई। अब कितनेक अपनी अपनी आम्नाय मुजब कम ज्यादाह करते हैं. मनमें " नवकार " पढकर कायोत्सर्ग खोलना. पीछे " णमो अरिहंताणं " ऐसा प्रगट कहना. फिर " लोगस्स " प्रगट कहना. (पांच पदों की वंदना के पीछे यहांतक सब क्रिया खडे खडे करना शक्ति न होतो बैठे बैठे करना.) पीछे पहले की तरह " इच्छामि खमासमणा " का पाठ दो वार पढना.

इति पंचम कायोत्सर्ग नामक आवश्यकं सम्पूर्णम् ॥ ५ ॥

पीछे " आलोचना " का दूसरे नंबर का पाठ कहकर मुनि महाराज के पास तथा अपने से बडा हो उनके पास पच्चक्खाण करे. इनका योग न होतो अपने आपही आज्ञा लेके " गंठिसहियं मुठ्ठिसहियं " इत्यादि पाठ पढकर इच्छानुकूल पच्चक्खाण करलेना.

इति छट्ठा पच्चक्खाण नामक आवश्यकं समाप्तम् ॥ ६ ॥

---

(१) जैसे—पूज्य जयमल्लजी व रघुनाथजी महाराजकी सांप्रदायवाले साधुश्रावक क्रमश.-४,८,१२, १६, लोगस्सका और हमारी सांप्रदायवाले सदाही ४ लोगस्स का ध्यान करते है वैसे अन्यभी सांप्रदायें समझ लेना ।

मासमणमें " आवासियाए पडिक्कमामि " यह दस अक्षर नहीं बोलना

इति तृतीय वंदन नामक आवश्यक संपूर्णम् ॥ ३ ॥

तीन तिक्खुत्ते का पाठ कहकर " चौथा आवश्यक की आज्ञा है " एसा कहके खडा होकर " आगमेतिविहे " का पाठ से लेक " इच्छामिठामि " का पाठ पर्यंत ' ९९ अतिचार ' कायोत्सर्गमें कहेसो प्रगटपन कहना " तस्स मिच्छामि दुक्कड़ " देना पीछे " तस्स सव्वस्स " का पाठ कहकर नीचे बैठ के दाहिना घुटना (ओमणा गोडा) खडा रखकर " नवकार, करेमि भंते, चत्तारिमंगल, इच्छामिठामि, इरियावहियाए ' का पाठ पर्यत कहकर फिर तीन तिक्खुत्ता बोल के " अतिचार मेल कहने की आज्ञा है " एसा कहकर " आगमेतिविहे-दसणसमकित का पाठ कहके बारह व्रत और अतिचार लिखे मुजब शामिल कहना पीछे " सलेखणा " का पाठ अतिचारों सहित कहना पीछे " १८ पापस्थानक-इच्छामिठामि ' का पाठ बोलना यहांतक दाहिना घुटना खडा रखेही बैठे रहना

फिर खडा हो हाथ जोड " तस्स धम्मस्स, इच्छामि खमासमणो " पूर्ववत् दोवार कहना पीछे " पांचपद बोलन की आज्ञा है " एसा कहकर उल्टे घुटनों से बैठकर दोनों हाथ जोड के शिर जमीनपर लगाके पांच पदों को वंदना करना

पीछे खडा होके " ५ पांचपद बोलके पीछे–आयरिए उवज्झाए अढाईद्वीप-चोरासी लाख जीवायोनि (सात लाख पृथ्वीकाय इत्यादि) खामेमि सव्वजीवा १८ पापस्थानक " का पाठ पढना

इति चतुर्थ प्रतिक्रमण नामक आवश्यकं समाप्तम् ॥ ४ ॥

गाथा.

दोचेव नमुक्कारो, आगारा छच्च हुंति पोरिसिए ॥
सत्तेव य पुरिमड्ढे, एगासणंमि अट्ठेव ॥ १ ॥
सत्तेगट्ठाणस्सउ, अट्ठेव य अबिलंबी आगारा ॥
पंचेव य भत्तट्ठे, छप्पाणे चारिम चत्तारि ॥ २ ॥
पंच चउदो अभिग्गहे, निव्वीए अट्ठ नव य आगारा ॥
अप्पाउरणे पंचउ, हवंति सेसेसु चत्तारि ॥ ३ ॥

१ अथ नोकारसी का पच्चक्खाण ॥

उग्गए सूरे नमुक्कारसहियं पच्चक्खामि । चउव्विहंपि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणा भोगेणं (१) सहसागारेणं (२) वोसिरामि ॥ १ ॥ *

२ अथ पोरसि का पच्चक्खाण.

उग्गए सूरे पोरसिं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहार असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणा भोगेणं (१) सहसागारेणं (२) पच्छन्नकालेणं (३) दिसामोहेणं (४) साहुवयणेण (५) सव्वसमाहिवत्तियागारेणं (६) वोसिरामि ॥ २ ॥

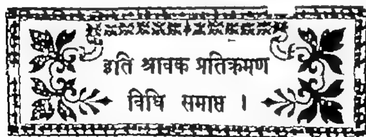
---

* दूसरोंको पच्चक्खाण करनाहो तो—
"पच्चक्खामि" की जगह "पच्चक्खाई" कहना चाहिए ; और 'वोसरामि' की जगह 'वोसिरे' कहना चाहिए ।

पीठ " आलाचना " २ ४ ५ अनुक्रम पाठ कहकर फिर पूर्वोक्त रीति मुजब दो " नमोत्थुण " देना

फिर जिनेन्द्र मुनिमहाराज हो उनको क्रमसे (बड़े से छोटे तक) तीन तीन बार तिक्खुत्तो का पाठ पढ पढ कर वंदना करना पीछे साधर्मी भाइयों से क्षमतखामणा करना

(अन्तिम सूचना) देवसी [दिनका] प्रतिक्रमणमें मिच्छामि दुक्कड आवे जहाँपर " दिवस संबधि तस्स मिच्छामि दुक्कडं ' कहना राइ (रात्रि) प्रतिक्रमणमें " राइ संबंधी त स्स मिच्छामि दुक्कड ' कहना पक्खी प्रतिक्रमणमें " देवसि पक्खी संबंधी तस्स मि० " कहना चौमासीमें " देवसि चौमासी संबंधी तस्स मि० ' कहना संवत्सरी प्रतिक्रमणमें " देवसि संवत्सरी संबंधी तस्स मिच्छामि दुक्कडं " कहना



अथ अयंबिलका पच्चक्खाण ॥

रे आयंबिलं पच्चक्खामि तिविहं पि आहारं असणं
साइमं अन्नत्थणाभोगेणं (१) सहसागारेणं (२)
३) गिहत्थसंसट्ठेणं (४ उक्खित्तविवेगेणं (५)
गारेणं (६) महत्तरागारेणं (७) सव्वसमाहि-
(८) वोसिरामि ॥ ७ ॥

चउव्विहार उपवास का पच्चक्खाण ॥

रे अभत्तट्ठं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असणं,
साइमं अन्नत्थणाभोगेणं (१) सहसागारेणं (२),
गारेणं (३), महत्तरागारेणं (४), सव्वसमाहि-
(५) वोसिरामि ॥ ८ ॥

तिविहार उपवास का पच्चक्खाण ॥

रे अभत्तट्ठ पच्चक्खामि तिविहं पि आहारं असणं
मं अन्नत्थणाभोगेण (१) सहसागारेणं (२) पा-
गारेण (३) महत्तरागारेण (४) सव्वसमाहिवत्ति-
५) पाणस्स लेवेण वा, अलेवेण वा, अच्छेण वा,
वा, सि आसिच्छेण वा वोसिरामि ॥ ९ ॥

१० [illegible] ाण ॥

पे आहारं असणं पाणं
[illegible] ारेण (२) मह-
४) वोसिरामि ॥ १० ॥

३ अथ साढ्डपोरसि का पच्चक्खाण ॥

उग्गए सूरे साड्डपोरसिं पच्चक्खामि चउव्विह पि आहार असण पाणं खाइम साइमं अन्नत्थणाभोगेण (१) सहसागारेणं (२) पच्छन्नकालेण (३) दिसामोहेणं (४) साहुवयणेण (५) सव्वसमाहिवत्तियागारेण (६) वोसिरामि ॥ ३ ॥

४ अथ पुरिमड्ड का पच्चक्खाण

उग्गए सूर पुरिमड्ड पच्चक्खामि चउव्विह पि आहारं असण पाण खाइम साइम अन्नत्थणाभोगेण (१) सहसागारेणं (२) प च्छन्नकालेणं (३) दिसामोहेण (४) साहुवयणेण (५) महत्तरागारेणं (६) सव्वसमाहिवत्तियागारेणं (७) वोसिरामि॥४॥

५ अथ एकासन का पच्चक्खाण

उग्गए सूर एगासणं बियासणं तिविहंपि चउव्विहंपि आहारं असण पाणखाइम साइम अन्नत्थणाभोगेणं (१) सहसागारेणं (२) सा गारि आगारेणं (३) आउटण पसारण (४) गुरु अब्भुट्ठा णेणं (५) पारिट्ठावणियागारेणं (६) महत्तरागारेणं (७) सव्वसमाहिवत्तियागारेणं (८) वोसिरामि ॥ ५ ॥

६ अथ एकलठाणे का पच्चक्खाण ॥

उग्गए सूर एगट्ठाणं पच्चक्खामि दुविहं तिविहं चउव्विह पि आहारं असणं पाणं खाइम साइम अन्नत्थणाभोगेण (१) सहसागारेण (२) सागारि आगारेण (३) गुरुअब्भुट्ठाणेण (४) पारिट्ठावणियागारेणं (५) महत्तरागारेणं (६) सव्व समाहिवत्तियागारेणं (७) वोसिरामि ॥ ६ ॥

७ अथ अयंबिलका पच्चक्खाण ॥

उग्गए सूरे आयंबिलं पच्चक्खामि तिविहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं (१) सहसागारेणं (२) लेवालेवेणं (३) गिहत्थसंसट्ठेणं (४ उक्खित्तविवेगेणं (५) पारिट्ठावणियागारेणं (६) महत्तरागारेणं (७) सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं (८) वोसिरामि ॥ ७ ॥

८ अथ चउव्विहार उपवास का पच्चक्खाण ॥

उग्गए सूरे अभत्तट्ठं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं (१) सहसागारेणं (२) पारिट्ठावणियागारेणं (३), महत्तरागारेणं (४) सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं (५) वोसिरामि ॥ ८ ॥

९ अथ तिविहार उपवास का पच्चक्खाण ॥

उग्गए सूरे अभत्तट्ठ पच्चक्खामि तिविहं पि आहारं असणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं (१) सहसागारेणं (२) पा-रिट्ठावणियागारेणं (३) महत्तरागारेण (४) सव्वसमाहिवत्ति-यागारेणं (५) पाणस्स लेवेण वा, अलेवेण वा, अच्छेण वा, बहुलेवेण वा, ससित्थेण वा, असित्थेण वा वोसिरामि ॥ ९ ॥

१० अथ चरम पच्चक्खाण ॥

दिवसचरिमं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं (१) सहसागारेण (२) महत्तरागारेणं (३) सव्वसमाहिवत्तियागारेणे (४) वोसिरामि ॥ १० ॥

३ अथ साढपोरसि का पच्चक्खाण ॥

उग्गए सूरे साढ्ढपोरसिं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असण पाणं खाइम साइमं अन्नत्थणाभोगेण (१) सहसागारेणं (२) पच्छन्नकालेणं (३) दिसामोहेणं (४) साहुवयणेणं (५) सव्वसमाहिवत्तियागारेणं (६) वोसिरामि ॥ ३ ॥

४ अथ पुरिमड्ढ का पच्चक्खाण

उग्गए सूर पुरिमड्ढ पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असण पाण खाइम साइम अन्नत्थणाभोगेणं (१) सहसागारेणं (२) पच्छन्नकालेणं (३) दिसामोहेणं (४) साहुवयणेणं (५) महत्तरागारेणं (६) सव्वसमाहिवत्तियागारेणं (७) वोसिरामि॥४॥

५ अथ एकासन का पच्चक्खाण

उग्गए सूर एगासणं पच्चक्खामि तिविहंपि चउव्विहंपि आहारं असणं पाणंखाइम साइम अन्नत्थणाभोगेणं (१) सहसागारेणं (२) सागारि आगारेणं (३) आउंटण पसारेण (४) गुरु अब्भुट्ठाणेणं (५) पारिट्ठावणियागारेणं (६) महत्तरागारेणं (७) सव्वसमाहिवत्तियागारेणं (८) वोसिरामि ॥ ५ ॥

६ अथ एकलठाणं का पच्चक्खाण ॥

उग्गए सूर एगट्ठाणं पच्चक्खामि दुविहं तिविहं चउव्विहं पि आहारं असण पाणं खाइम साइम अन्नत्थणा भोगेण (१) सहसागारेण (२) सागारि आगारेण (३) गुरुअब्भुट्ठाणेण (४) पारिट्ठावणियागारेणं (५) महत्तरागारेणं (६) सव्व समाहिवत्तियागारेणं (७) वोसिरामि ॥ ६ ॥

७ अथ अयंबिलका पच्चक्खाण ॥

उग्गए सूरे आयंबिलं पच्चक्खामि तिविहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं (१) सहसागारेणं (२) लेवालेवेणं (३) गिहत्थसंसट्ठेणं (४ उक्खित्तविवेगेणं (५) पारिट्ठावणियागारेणं (६) महत्तरागारेणं (७) सव्वसमाहिवत्तियागारेणं (८) वोसिरामि ॥ ७ ॥

८ अथ चउव्विहार उपवासका पच्चक्खाण ॥

उग्गए सूरे अभत्तट्ठं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असणं, पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं (१) सहसागारेणं (२) पारिट्ठावणियागारेणं (३) महत्तरागारेणं (४) सव्वसमाहिवत्तियागारेणं (५) वोसिरामि ॥ ८ ॥

९ अथ तिविहार उपवासका पच्चक्खाण ॥

उग्गए सूरे अभत्तट्ठ पच्चक्खामि तिविहं पि आहारं असणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेण (१) सहसागारेणं (२) पारिट्ठावणियागारेण (३) महत्तरागारेण (४) सव्वसमाहिवत्तियागारेणं (५) पाणस्स लेवेण वा, अलेवेण वा, अच्छेण वा, बहुलेवेण वा, ससित्थेण वा, असित्थेण वा वोसिरामि ॥ ९ ॥

१० अथ चरम पच्चक्खाण ॥

दिवसचरिमं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असण पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं (१) सहसागारेण (२) महत्तरागारेणं (३) सव्वसमाहिवत्तियागारेणे (४) वोसिरामि ॥१०॥

११ अथ अभिग्रह का पच्चक्खाण ॥

उग्गए सूरे गंठिसहियं मुट्ठिसहियं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं (१) सह० (२) मह० (३) सव्वसमाहिवत्तियागारेणं (४) वोसिरामि ॥ ११ ॥

१२ अथ निव्विगई का पच्चक्खाण ॥

उग्गए सूरे निव्विगइयं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं (१) सहसागारेणं (२) लेवालेवेणं (३) गिहत्थसंसट्ठेणं (४) उक्खित्तविवेगेणं (५) पडुच्चमक्खिएणं (६) पारिट्ठावणियागारेणं (७) महत्तरागारेणं (८) सव्वसमाहिवत्तियागारेणं (९) वोसिरामि ॥ १२ ॥



॥ वन्देवीरम् ॥

चोईसी.

(श्रीजीनाथमहाराज अर्ज मेरा मनकी, ॥
तुम खैंचो हमारी डोर सुरत दर्शनकी ॥एदेशी॥)



जिनराज महाराज चौवीसों जिनवरजी,
तुम रखो हमारीलाज सुनो गणधरजी ॥ टेर ॥

श्री ऋषभ अजित संभव अभिनदस्वामी, सुमति पद्म सुपार्श्व नमो शिरनामी; श्री चंद्रप्रभ सुविधिनाथ शीतल गुण गाऊं, श्री श्रेयांस वासुपूज्य महाराजकूं शीश नमाऊं॥ श्री० ॥ १ ॥ श्री विमल अनंत धर्मनाथ शांति जिनदेवा, श्री कुंथुनाथ अरनाथ की करतहूं सेवा; श्री मल्लिनाथ मुनिसुव्रत व्रतमोय दीजो, नमिनाथ नेम महाराज पारमोय कीजो ॥ श्री० ॥ २ ॥ श्री पार्श्वनाथ महावीर शरन रहूं तेरी, मै छूं चरण को दास अरज सुनो मेरी; तुम चरण की शरणबिन काल अनंत गमाये, अब जन्म भये मुझ सफल चरण तुम पाये ॥ श्री० ॥ ३ ॥ हुवो चउवीसो महाराज को शरनो हमारे, तुम विन नाथ अनाथ कहो कुनतारे; प्रभु दीन दयाल कृपाल सुनो तन मनकी, तुम खैचो हमारी डोर सुरत दर्शन की ॥ श्री० ॥ ४ ॥ तुम दर्शन विन महाराज काज मुझ बिगड्यो तुम दर्शन विन महाराज काल बहु भटक्यो; मुनि राम कहे

महाराज पूरन करो आशा, मुझ रखो पारन क पाम न करिया निराशा ॥ श्री० ॥ ५ ॥ इति ॥

प्रतिक्रमण सज्झाय ॥ दान कहे जग हूं वडो एदेशी ॥

करपडिक्रमणो भावसुं, दोय घडी शुभआण लालर; परभव आतो जीवने, मबल माथा गुणखाण लालर ॥ क० ॥ १ ॥ श्रीमुख वीर सम्रुच्चरे, श्रेणिक राय प्रतिबाय लालर; गात तीर्थकर बांधने पावे मुक्तिनो मोष लालरे ॥ क ॥ २ ॥ लाख खांडी माना तणी, देय नितप्रति दान लालरे; दायटक पडिक्रमणा कर, नहीं आय तह ममान लालरे, ॥ ३ ॥ लाख वरस लग त वली दीज दान अपार लालरे; एक सामायिकन तुल, नहिं आय दिलमें धार लालर ॥ क० ॥ ४ ॥ सामायिक चउविसत्था, वंदन दाय दाय वार लालर; व्रत समातो आपणा, कटेन्दु कम अपार लालर ॥ क० ॥ ५ ॥ कर काउसग शुभध्यानथी, दिलमें दाम दाय बार लालर; करो सझाय ते वली, टाळि सप अति चार लालर ॥ क० ॥ ६ ॥ गात तीर्थंकर निमला, करना बांध दिन राय लालर; कम तणी काथा रुप, टळ मकल व्यापात लालर; ॥ क० ॥ ७ ॥ पाकथइ नित कीजिय, पडिक्रमणा गुर्दाचार लालर; लीला लहर मिल मिल, अविचल गतिमें निस लालरे ॥ क० ॥ ८ ॥ सामायिक परसादथी, पामे अमर विमान लालर; धर्मसिंह मुनिवर कम, मुक्तितणाऊं निधान लालर ॥ ॥ क० ॥ ९ ॥ इति ॥

थोकडा संग्रह.

पच्चीस बोलका थोकडा.

(१) पहिले बोले गति चार । नरकगति, तिर्यंचगति । मनुष्य गति । देव गति (२) दूसरे बोले जाति पाँच । एकेन्द्रिय । बे इन्द्रिय, ते इन्द्रिय, चौरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय । (३) तीसरे बोले काया छे । १ पृथ्वीकाय । २ अप काय । ३ तेउ काय । ४ वाउ काय । ५ वनस्पति काय । ६ त्रस काय । (ये छकाय के गोत्र है)

छ काय के नाम १ इंदी थावर काय । २ बंभी थावर काय। ३ सप्पि थावर काय । ४ सुमति थावर काय । ५ पयावच्च थावर काय । ६ जंगम काय ।

(४) चोथे बोले इन्द्रिय पाँच । १ श्रोतेन्द्रिय (कान)। २ चक्षु इन्द्रिय (आंख) । ३ घ्राणेन्द्रिय (नाक) । ४ रसेन्द्रिय (जीभ) । ५ स्पर्शेंद्रिय (शरीर) ॥

(५) पाँचमे बोले पर्याप्ति छे । १ आहार पर्याप्ति । २ शरीर पर्याप्ति । ३ इन्द्रिय पर्याप्ति । ४ श्वासोश्वास पर्याप्ति । ५ भाषा पर्याप्ति । ६ मन पर्याप्ति ॥

(६) छठे बोले प्राण दश । १ श्रोतेन्द्रिय बल प्राण । २ चक्षुइन्द्रिय बल प्राण । ३ घ्राणेन्द्रिय बल प्राण । ४ रसेन्द्रिय बल प्राण । ५ स्पर्शेन्द्रिय बल० । ६ मन बलप्राण । ७ वचन बल

प्राण । ८ काय बल प्राण । ९ श्वासोश्वास बल प्राण । १० आयुष्य (आउखो) बल प्राण ।

(७) सातमे बोल शरीर पाँच । १ औदारिक शरीर । २ वैक्रिय शरीर । ३ आहारिक शरीर । ४ तेजस शरीर । ५ कार्मण शरीर ॥

(८) आठमे बोल योग (जोग) पन्द्रह । चार मनके योग —१ सत्य मन योग । २ असत्य मन योग । ३ मिश्र मन योग ४ व्यवहार मन योग । (४) वचन के योग—१ सत्य भाषा । २ असत्य भाषा । ३ मिश्र भाषा । ४ व्यवहार भाषा । (७) सात कायाके योग । १ औदारिक योग । २ औदारिक मिश्र योग । ३ वैक्रय योग । ४ वैक्रय मिश्र काय योग । ५ आहारिक योग । ६ आहारिक मिश्रकाय योग । ७ कार्मण योग ॥

(९) नवमे बोल उपयोग बारह । पाँच ज्ञान । १ मति ज्ञान । २ श्रुतज्ञान । ३ अवधि ज्ञान ४ मनः पर्यव ज्ञान । ५ केवल ज्ञान ॥ तीन अज्ञान । १ मति अज्ञान । २ श्रुत अज्ञान । ३ विभंग अज्ञान ॥ चार दर्शन—१ चक्षु दर्शन । २ अचक्षु दर्शन । ३ अवधि दर्शन । ४ केवल दर्शन ॥

(१०) दशमें बोले कर्म आठ । १ ज्ञानावरणीय कर्म । २ दर्शनावरणीय कर्म । ३ वेदनीय कर्म । ४ मोहनीय कर्म । ५ आयुष्य कर्म । ६ नाम कर्म । ७ गोत्र कर्म । ८ अन्तराय कर्म ॥

(११) इग्यारमे बोल गुणस्थान (गुणठाण) चौदह । १ पहिला । मिथ्यात्व गुणस्थान । २ दूसरा सास्वादान गुण

स्थान। ३ तीसरा मिश्र गुण०। ४ चौथा अव्रति (सम्यग्‌ दृष्टि) गुण०। ५ पांचमा देशव्रति गुण०। ६ छट्टा प्रमादी (प्रमत्त) संयति गुण०। ७ अप्रमादी (अप्रमत्त) गुण०। आठमा नियति बादर (निवृत्ति करण) गुण स्थान। नवमा अनियत्ति बादर (अनिवृत्ति करण) गुण०। दशमा सूक्ष्म संपराय गुणस्थान। इग्यारमा उपशांत मोहनीय गुणस्थान। बारमा क्षीणमोहनीय गुणस्थान। तेरमा सहयोगी केवली गुण० चौदमा अयोगी केवली गुणस्थान।

(१२) बारमे बोले पांच इंद्रियकी २३ विषय (अभिलाषा)॥ श्रोत्रेन्द्रियकी तीन विषय। १ जीव शब्द। २ अजीव शब्द। ३ मिश्र शब्द। चक्षु इन्द्रियकी पांच विषय। १ काला। २ नीला। ३ लाल। ४ पीला। ५ सफेद। घ्राणेन्द्रियकी दो विषय- १ सुगन्ध। २ दुर्गन्ध। रसेन्द्रियकी पांच विषय। १ कडवा। २ कषाय।। ३ तीखा (चरपरा) ४ खट्टा। ५ मीठा। स्पर्शेन्द्रियको आठ विषय। १ खरदरा। २ मुलायम (सुंवालो) ३ भारी। ४ हलका। ५ ठंडा। ६ गरम (उन्हो)। ७ रूखा (लूखो)। ८ चिकना (चोपड्यो)।

(१३) तेरहमे बोले मिथ्यात्व पचीस। १ जीवको अजीव श्रद्धे (माने) तो मिथ्यात्व। २ अजीवको जीव श्रद्धे तो मि-० ३ धर्मको अधर्म श्रद्धेतो मि० ४ अधर्मको धर्म श्रद्धेतो मि०। ५ साधुको असाधु श्रद्धे तो मि०। ७ संसारके मार्गको मोक्षका मार्ग श्रद्धे तो मि०। ८ मोक्षके मार्ग को संसारका मार्ग श्रद्धे तो मि० ९ आठ कर्मसे मुक्तहुएको अमुक्त श्रद्धे तो मि०। १० आठ कर्मसे अमुक्तहुएको मुक्तहुए श्रद्धेतो मि०। ११ आभिग्रहिक मिथ्यात्व। १२ अनाभिग्रहिक मिथ्या०। १३

अभिनिवेशिक मिथ्या० । १४ संशयिक मिथ्यात्व । १५ अणा भोगे मिथ्यात्व । १६ लौकिक मि । १७ लोकोत्तर मि० १८ कुप्रा वचन मिथ्यात्व । १९ कमप्ररूपे तो मिथ्यात्व । २० ज्यादह प्ररूपे तो मि । २१ विपरीत प्ररूपे तो मि० । २२ अक्रिय मिथ्यात्व । २३ अज्ञान मिथ्यात्व । २४ अविनय मि० । २५ आशातना मिथ्यात्व ।

(१४) चौदहमें बोले नवतत्त्वके (११५) एकसौ पंद्रह भेद । जीवतत्त्व के चौदह–भेद, सूक्ष्म एकेन्द्रियके दो भेद १ अपर्याप्ता । और २ पर्याप्ता । बादर एकेन्द्रिय के दो भेद १ अपर्याप्ता और २ पर्याप्ता । बे इंन्द्रिय के दो भेद । १ अपर्या० २ पर्याप्ता । चौरिन्द्रिय के दो भेद १ अपर्याप्ता । २ पर्याप्ता। असंनी (असज्ञी) पंचेन्द्रियके दो भेद । १ अपर्याप्ता । २ पर्याप्ता । संनी(सज्ञी) पंचेन्द्रियके दो भेद । १ अपर्याप्ता । २ पर्याप्ता । अजीव तत्त्व के चौदह भेद–धर्मास्तिकायके तीन भेद । १ स्कन्ध २ देश । प्रदेश ३ । अधर्मास्तिकाय के तीन भेद–१स्कन्ध २ देश । ३ प्रदेश । आकाशास्ति कायके तीन भेद । १स्कन्ध, २ देश । ३ प्रदेश । ये नव भेद हुए । और दशमा काल (अद्धासमय) । पुद्गलास्ति काय के चार भेद–१ स्कन्ध । २ देश । ३ प्रदेश और ४ परमाणु । पुण्यतत्त्व के नव भेद–१ अन्न पुन्ये । २ पाण पुन्ये । ३ लयण पुन्ये । ४ सयण पुन्ये । ५ वत्थ पुन्ये । ६ मन पुन्ये । ७ वचन पुन्ये । ८ काय पुन्ये । ९ नमस्कार पुन्ये ।

पाप तत्त्व के अठारह भेद । १ प्राणातिपात । २ मृषावाद । ३ अदत्तादान । ४ मैथुन । ५ परिग्रह । ६ क्रोध । ७ मान ।

८ माया । ९ लोभ । १० राग । ११ द्वेष । १२ कलह । १३ अभ्याख्यान । १४ पैशुन्य । परपरिवाद । १६ रति अरति १७ माया मोसो । १८ मिथ्यात्व दर्शन शल्य । आश्रव तत्व-के बीस भेद । १ मिथ्यात्व आश्रव । २ अव्रत्त आश्रव । ३ प्रमाद आश्रव । ४ कषाय आश्रव । ५ अशुभ योग आश्रव । ६ प्राणातिपात आश्रव । ७ मृषावाद आश्रव । ८ अदत्तादान आश्रव । ९ मैथुन आश्रव । १० परिग्रह आश्रव । ११ श्रोत्रे-न्द्रियआश्रव । १२ चक्षु इन्द्रिय आश्रव । १२ घ्राणेन्द्रिय आश्रव । १५ स्पर्शेंद्रिय आश्रव । १६ मन आश्रव । १७ वचन आश्रव । १८ काय आश्रव । १९ भंडोपकरण आश्रव । २० सुई कुसग्ग (सुईकी अग्रपे आवे उतनी वस्तु अयत्ना से लेवे और अयत्नासेरखे तो) आश्रव ।

सवरतत्व के बीस भेद । १ सम्यक्त्व संवर । १ व्रतपच्चक्खाण संव० । ३ अप्रमाद संव० । ४ अकषाय संव० । ५-शुभ योग संव० । ६ प्राणातिपात हिंसा नहीं करे तो सं० । ७ मृषा-वाद झूठ नहीं बोले तो स० । ८ अदत्तादान चोरी नहीं करे तो सं० । ९ मैथुन कुशील नहीं सेवे तो सं । १० परिग्रह नहीं राखे तो संवर । ११ श्रोत्रेन्द्रिय वश करे तो सं० । १२ चक्षु-इन्द्रिय वश करे तो सं० । १३ घ्राणेन्द्रिय वश करे तो सं० । १४ रसोन्द्रिय वश करे तो सं० । १५ स्पर्शेंद्रिय वश करे तो सं० । १६ मन वश करे तो सं० । १७ वचन वश करे तो सं० १८ काया वश करे तो सं० । १९ भंडोपकरण यत्नासे उठावे

* कान, आंख, नाक, जीभ, शरीर, आदिको नियममें नहीं रखनेसे आश्रव (कर्मबन्ध) होता है ।

यत्नासे रखे तो स० । ३० सुई कुसग्गमात्र यत्नासे लेवे और यत्नासे रखे तो सवर ॥

निर्झरा तत्त्व के बारह भेद । १ अनशन । २ उणोदरी । ३ वृत्ति संक्षेप (भिक्षाचरी) । ४ रसपरित्याग । ५ कायक्लेश । ६ संलीनता (पडि संलीनता) । ७ प्रायश्चित्त । ८ विनय ९ वैयावृत्य (वैयावच । १० स्वाध्याय (सज्झाय) । ११ ध्यान १२ कायोत्सर्ग (काउसग्ग)

बंधतत्त्वके चार भेद । १ प्रकृति बंध । २ स्थिति बंध । ३ अनुभाग बंध (रस बंध) । ४ प्रदेश बंध ।

मोक्ष तत्त्व के चार भेद । १ ज्ञान २ दर्शन ३ चारित्र ४ तप । अथवा १ दान २ शील ३ तप ४ भाव ।

(१५) पन्द्रहमे बोले आत्मा आठ । १ द्रव्य आत्मा । २ कषाय आत्मा । ३ योग आत्मा । ४ उपयोग आत्मा । ५ ज्ञान आत्मा । ६ दर्शन आत्मा । ७ चारित्र आत्मा । ८ वीर्य आत्मा

(१६) सोलहमें बोले दंडक चौबीस । सातों नारकियोंका एक एकदंडक, उनके नाम —१ घम्मा । २ वंशा । ३ शीला । ४ अंजना । ५ रिठा । ६ मघा । ७ माघवई । सातोंके गोत्र — १ रत्नप्रभा । २ शर्कराप्रभा । ३ वालुप्रभा । ४ पंक प्रभा । ५ धूम प्रभा । ६ तम प्रभा । तमतमाप्रभा ॥

भुवनपति देवोंके (१०) दश दण्डक । नाम —१ असुर कुमार । २ नाग कुमार । ३ सुवर्ण कुमार । ४ विद्युत्कुमार । ५ अग्नि कुमार । ६ द्वीप कुमार । ७ उदधि कुमार । ८ दिशा कुमार । ९ पवन कुमार । १० स्तनित कुमार ।

पांच थावरोंके (५) पाँच दंडक । १ पृथ्वी काय । २

२ अप काय । ३ तेउकाय । ४ वायु काय। ५ वनस्पति काय

विकलेन्द्रियके (३) दंडकः—१ बे इन्द्रिय। २ ते इन्द्रिय। ३ चौरिन्द्रिय । ये १९ दंडक हुए। (२०) वीसमा तिर्यंच। पंचेन्द्रियका । (२१) एकीसमा मनुष्यका (२२) बाइसमा वाणव्यंतरदेवका । (२३) तेवीसमा ज्योतिषी देवका. (२४) चोविसमा वैमानिक देवका ।

(१७) सतरमे बोले लेश्या * छे १ कृष्ण लेश्या। २ नील लेश्या ३ कापोत लेश्या। ४ तेजो लेश्या। ५ पद्म लेश्या ॥ शुक्ल लेश्या ६

(१७) अठारहमे बोले दृष्टि तीन। १ समग् दृष्टि। २ मिथ्या दृष्टि । ३ मिश्र दृष्टि (समा मिथ्या दृष्टि)

(१९) उगणीसमे बोले ध्यान चार। १ आर्त ध्यान। २ रौद्र ध्यान । ३ धर्म ध्यान। ४ शुक्ल ध्यान ॥

(२०) वीसमे बोले षट् द्रव्य के तीस भेदः—धर्मास्ति काय के पॉच-भेद १ द्रव्यसे धर्मास्ति काय एक है। २ क्षेत्रसे सम्पूर्ण लोक व्यापी है । ३ कालसे आदि अन्त रहित है । ४ भावसे अरूपी वर्ण गन्ध रस स्पर्श रहित है।५ गुणसे चलन गुण है जीव तथा पुद्गलको चलनेमे सहायता देता है, जैसे पानीके आधारसे मछली चलती है—वैसे जीव और पुद्गलभी धर्मास्ति कायके आधारसे चलते है ॥

अधर्मास्ति कायके पॉच भेदः शेष तो ऊपर कहे मुआफिक जानना । और गुणसे स्थिरगुण है, जीव और पुद्गलको

* जिसमे जीव भटकते रहते है उसे दण्डक कहते है ।

*जीवके परिणामोंकी एक झाई—परि छाया विशेषको लेश्या कहते है।

स्थिर रहनेमे सहायता करता है। पथिक और तरुके दृष्टान्तसे समझलेना चाहिए ॥

आकाशास्तिकाय के पाँच भेद —१ द्रव्यसे एक है। २क्षेत्रसे लोकालोक प्रमाण में है। ३ कालसे आदि अन्त रहित है ४ भावसे अरूपी वर्ण गन्ध रस स्पर्श रहित है। ५ गुणसे अवगाहना गुण है भींत और खूँटीके दृष्टान्त अथवा दूध और शक्करके दृष्टान्तसे समझना ॥

जीवास्तिकायके पाँच भेद —१ द्रव्यसे जीव अनन्त है। २ क्षेत्रसे चौदह राजलोक व्यापी है। ३ कालसे आदि अन्त रहित है। ४ भावसे अरूपावर्ण गन्ध रस स्पर्श रहित है। ५ गुणसे चैतन्य गुण वाला, ज्ञानवाला है ॥ चन्द्रमाकी कलाके दृष्टान्त से समझना ॥

पुद्गलास्तिकायके पाँच भेद —१ द्रव्यसे पुद्गल द्रव्य अनन्त है। २ क्षेत्रसे सम्पूर्ण लोक प्रमाण में है। ३ काल से आदि अन्त रहित है। ४ भावसे रूपी है–वर्ण गन्ध रस स्पर्श सहित है। ५ गुणसे गलन, मिलने, सड़न, मिल होन, नष्ट होनेवाला है। बादलके दृष्टान्तसे समझना ॥

कालद्रव्यके पाँच भेद —१ द्रव्यसे कालद्रव्य अनन्त है। २ क्षेत्रसे ढाई द्वीप प्रमाण में है। ३ कालसे आदि अन्त रहित है। ४ भावसे अरूपी–वर्ण गन्ध रस स्पर्श रहित है। ५ गुणसे परिवर्तन गुणवाला है। कतरनी के दृष्टान्तसे समझना।

(२१) इक्कीसमें बोल राशि दो। १ जीव राशि। (२) अजीव राशि। १ जीव राशिके ५६३ भेद। अजीवराशिके ५६० भेद ॥

जीवराशिके ५६३ भेदोंका विस्तार। १४चौदह भेद नारकी-के ४८ भेद तिर्यचके, तीनसौ तीन भेद मनुष्य के, एकसौ अठाणूं भेद देवताओंके, ऐसे कुल ५६३ भेद होते है।

नारकोंके चौदह भेद—सात नारकियोंका अपर्याप्ता और पर्याप्ता (सात नारकियोंके नाम, और गोत्र, सोलहमे बोलमें आगये है वहाँसे जान लेना)

तिर्यचके अडतालीस भेद–पृथ्वी कायके चार भेद। सूक्ष्म और बादर, दोनोंका पर्याप्ता और अपर्याप्ता। ऐसे-अपकाय तेउ काय वायु कायके चार चार भेद जानलेना। ये सोलह भेद हुए॥ वनस्पति कायके छे भेद–१ सूक्ष्म, २ साधारण और ३ प्रत्येक, इन तीनोंका पर्याप्ता और अपर्याप्ता। ये बावीस भेद एकेन्द्रियके हुए। तीन विकलेन्द्रियके छे भेद। १ बे इन्द्रिय, २ ते इन्द्रिय, ३ चौरिन्द्रिय. इन तीनों का पर्याप्ता और अपर्याप्ता ये अठावीस भेद हुए॥

तिर्यंच पंचेन्द्रियके वीस भेद–१ जलचर, २ स्थलचर, ३ खेचर, ४ उरपर ५ भुजपर ये पांच संज्ञी (सन्नी). और पांच असंज्ञी (असन्नी) इनके पर्याप्ता और अपर्याप्ता॥

जलचरके पाँच भेद–१ जलकच्छा, २ जलमच्छा, ३ गाहा, ४ मगरा, ५ सुसुमार।

स्थलचरके चार भेद–१ एक खुरा, (जैसे घोडा, गद्धा इत्यादि) २ दो खुरा, (जैसे गाय भैंस आदिक) ३ गाडिपया

---

१ जल [पानी] में रहेवाले जीव। २–जमीनपर चलनेवाले जीव।

जैसे–हाथी गैंडा इत्यादि । ४ चौथा–सणीपया–नखवाले जान मर जैसे–वाघ, रींछ, कुत्ता, बिल्ली इत्यादि)

खेचर के चार भेद–१ चर्मपक्षी, [जिसके चमड़ेकी परें (पांखें) होवें, जैसे चमचेड़ आदि] २ रोमपक्षी–[जिसके रोम (बाल) की परें (पांखें) होवे जैसे चिड़ी, तोता इत्यादि–] । ३ वितत पक्षी [जिसके रेखा जैसी परें (पांखें) होवे उसे कहते है] ४ समुद्गक पक्षी [जिसके डब्बा जैसी परें (पांखें) होवें उसे कहते है] ये दोनों जातक पक्षी ढाई द्वीपके बाहर होते हैं; यहां नहीं ।)]

उरपर के तीन भेद—अहि, अजगर, आसालिया ॥

भुजपरें–के अनेक भेद है । जैसे–चूहा (उंदर) नौलिया आदि ॥

मनुष्यके ३०३ भेद । १५ कर्मभूमि । ३० अकर्म भूमि । ५६ अंतर्द्वीप ऐसे एकसो एक जाक संज्ञी मनुष्य का पर्याप्ता और अपर्याप्ता । और एकसो एक क्षेत्रोंके असंज्ञी मनुष्य का अपर्याप्ता । एवं तीनसौ तीन भेद मनुष्यके हुए ।

पंद्रह कर्मभूमि के नाम । पाँच भरत, पाँच इरवर्त, पाँच महा विदेह, इनमेंसे एकेक क्षेत्र जम्बूद्वीप में है, दो दो क्षेत्र धातकी खण्डमें है । दोदो क्षेत्र अर्ध पुष्कराद्ध द्वीपमें है ।

तीस अकर्म भूमि के नाम ॥ पाँच हेमवय । पाँच एरण्यवय । पाँच हरिवास । पाँच रम्यक्वास । पाँच देव कुरू । पाँच उत्तर कुरू, ये तीस क्षेत्र युगलियों के–इनमेसे एकेक क्षेत्र जम्बुद्वीपमें

३–आकाशमें उड़नेवाले जीव । ४–पेटसे चलनेवाले जीव । ५–भुजाओं (हाथोंके) बलसे चलनेवाले जीव ।

है। दो दो क्षेत्र धातकी खंडमें है। दो-दो क्षेत्र अर्ध पुष्करार्ध द्वीप में है॥

छःपन अन्तरद्वीप जम्बूद्वीपमें मेरूपर्वतसे दक्षिण दिशिमें चूल हेमवन्त पर्वत है, वह एकसौ योजनका ऊँचा है, एक हजार बावन योजन बारह कला [एक योजनका १९ भाग करने-पर बारहवें भाग उतना] चौडा है। चौवीस हजार नवसौ छत्तीस योजन आधी कला (मठेरीका) लंबा है। उसके पूर्व, पश्चिम के अन्तमें दो दो दाढें निकलकर लवण समुद्रमें गई है। एके-क दाढके ऊपर सात सात अन्तर द्वीपें है। जम्बूद्वीपकी जगती (कोट)से तीनसौ योजन लवण समुद्र में जावें, जब तीनसौ-योजनका पहिला अन्तरद्वीप आवे वहांसे चारसौ योजन समुद्रमें जावें जब चारसौ योजन का लंबा चौडा दूसरा अन्तरद्वीप आवें—ऐसे सौसौ योजन वढाते बढाते नवसौ योजन समुद्र में जावे जब नवसौ योजनका लंवा चौडा सातमा अंतरद्वीप आवें, इसी तरह से चारोंही दाढोंके ऊपर सात सात अंतरद्वीप जानना॥

उनके नामः—१ एगरूवें, २ अभासे, ३ वैसानिये, ४ लांगुले, ५ हयकन्ने, ६ गयकन्ने, ७ गोकन्ने, ८ सकीलकन्ने, ९ अयंसमूहे, १० मीडमुहे, ११ आहिमुहे, १२ गोमुहे, १३ सीह-मुहे, १४ वागमुहे, १५ आसकन्ने, १६ हत्थीकन्ने, १७ सींह-कन्ने, १८ वाघकन्ने, १९ अकन्ने, २० कन्नपावरणा, २१ ऊका मुहे, २२ मेहमुहे, २३ विज्जुमुहे, २४ विज्जुदन्ते, २५ घ्रण, दन्ते, २६ लठदन्ते, २७ गुढदन्ते, २८ सुद्धदन्ते इति॥

ऐसेही मेरूपर्वतसे उत्तर दिशिमें शिखरी पर्वत है—उसका विस्तार भी सब इसी मुजब समझना। ये छःपन अंतरद्वीपें

युगलियों क है (युगलिक मनुष्योंके है)।

असन्नी मनुष्य चौदह स्थानोंमें पैदा होते हैं (उपजते है) सो कहते हैं —उच्चारसुवा (मल–विष्टामें पैदा होवे,) २ पासवणसुवा (मूत्रमें पैदा होवे) ३ खेलसुवा (खखार में पैदा होवे)। ४ सघाणे-सुवा (नाकके मलमें पैदा होवे)। ५ वंत सुवा (उलटीमें पैदा होवे)। ६ पित्त–सुवा (पित्तमें पैदा होवे)। ७ पुइएसुवा (रस्सीमें पैदा होवे)। ८ सोणिए सुवा (शोनिरमें पैदा होवे)। ९ सुक्कसुवा (वीर्य में पैदा होवे) १० सुक्क-पोगलपरिसाडिए-सुवा (सूखे हुए वीर्यके पुद्गल फिरागीले होनेपर उनमें पैदा होवें) ११ विगयजीवकलेवर सुवा [मनुष्य के मृत शरीरमें (कलेवरमें) पैदा होवें]। १२ इत्थिपुरिससंजोगसुवा। (स्त्रीपुरुषके संयोग की वक्त (मैथुन) में पैदा होवे)। १३ नगरनीधमणेसुवा शहरके नालों नालियों मोरियों इत्यादिमें पैदा होवें)। १४ सव्वसुवअसुई ठाण सुवा (सब अशुचिस्थानोंमें पैदा होवे।

एकसौ अठांणु भव देवताओंके —दसजातिके भुवनपति देव २नके नाम सोलहमें बोलमें आगए हैं।

पन्द्रह परमाधामी देवोंके नाम —१ अम्ब, २ अम्बरीय, ३ श्याम, ४ सबल, ५ रुद्र, ६ वैरुद्र, ७ काल, ८ महा काल, ९ असिपत्र, १० धनुष्य, ११ कुंभ, १२ बालु, १३ वैतरणी, १४ खरस्वर, १५ महा घोष ॥

१६ बाण व्यंतर देवोंके नाम –१ पिशाच, २ भूत, ३ यक्ष, ४ राक्षस, किन्नर, ६ किंपुरुष, ७ महोरग, ८ गन्धर्व, ९

आणपन्नी, १० पाण पन्नी, ११ इसीवाइ, १२ भुइवाइ, १३ कंदिय, १४ महा कंदिय, १५ कोहंड, १६ पयंग देव ॥

दश तिर्यग् जंभका देवोंके नामः—१ आण जंभका, २ पाणजंभका, ३ लयणजंभका ४ सयणजंभका, ५ वत्थजंभका, ६ पुप्पजभका, ७ फलजभका, ८ बीयजभका, ९ विज्जुजभका, १० अवियतजंभका ॥

दश ज्योतिषी देवोंके नामः—१ चंद्र, २ सूर्य, ३ ग्रह, ४ नक्षत्र, ५ तारा ये पांच तो ढाई द्वीपमें चलते फिरते है और यही पांच ढाई द्वीपके बाहर स्थिर है, याने चलते फिरते नहीं है ॥

तीन प्रकारके किल्विषि देवोंके नामः—१ तीन पलिया, २ तीन सागरिया, ३ तेरह सागरिया ॥

नव लोकान्तिक देवोंके नामः—१ सारस्वत, २ आदित्य, ३ विन्हि, ४ वरुण, ५ गर्दतोया, ६ तोपिया, ७ अव्या व्याधा, ८ अगिच्चा, ९ रिट्ठा ॥

बारह देव लोकके नामः—१ सुधर्म, २ ईशान, ३ सनत्कुमार, ४ महेन्द्र, ५ ब्रह्मलोक, ६ लंतक, ७ महाशुक्र, ८ सहस्रार, ९ आनत, १० प्राणत, ११ आरण, १२ अच्युत, ॥

नव ग्रैवेयकके नामः—१ भद्दे, २ सुभद्दे, ३ सुजाए, ४ सुमाणसे, ५ प्रियदर्शने, ६ सुदर्शने, ७ आमोहे, ८ सुपडिभद्दे, ९ यशोधरे ॥

पांच अनुत्तर विमानके नामः—१ विजय, २ वैजयन्त, ३ जयंत, ४ अपराजित, ५ सर्वार्थ सिद्ध ॥

इन ९९ जातिके देवताओंका अपर्याप्ता ओर पर्याप्ता मिलकर १९८ भेद हुए।

नारकीके १४,तिर्यंचके ४८,मनुष्यके ३ ३ देवताओंके १९८ सब मिलाय सो जीव राशि (जीवतत्व) के ५६३ भेद होते है।

इति जीव राशिके भेद समाप्त ॥

अब ५६० अजीव राशिके भेद कहते हैं

अजीवके दो भेद-१ रूपी अजीव, २ और अरूपी अजीव। अरूपी अजीवके ३ भेद है और रूपी अजीवके ५३० भेद है।

(रूपी अजीवके ५३० भेदोंका विस्तार)

सो १०० भेद वर्णके, ४६ गन्धके, १०० रसके, १८४ स्पर्शके १०० संठाणके, यों सब मिलकर, ५३० भेद है।

१०० भेद वर्णके-१ काला, २नीला, ३ लाल ४ पीला ५ सफेद ॥ एकेक वर्णमें-बीस बीस भेद (बोल) पावे हैं-दो गन्ध, पांच रस आठ स्पर्श, पांच संठाण यों बीस २भेद पांचोंहि वर्णोंके जानना। सब मिलाय तो सौभेद वर्णके हुए॥

४६ गन्धके-१ सुगन्ध, २ दुर्गन्ध, ॥ इन दोनो में-तेवीस तेवीस बोल पावे है-पांच वर्ण, पांच रस, आठ स्पर्श और पांच संठाण। एम ४६ भेद गन्धके हुए।

१०० रसके-१ कड़वा, २ कषायला, ३ तीखा, ४ खट्टा ५ मीठा, एकेक रसमें-बीस २ बोल पावे है। पांच वर्ण, दो गन्ध, आठ स्पर्श, पांच संठाण, यह १०० भेद रसके जानना।

१८४ भेद स्पर्शके:—१ खरदरा, २ मुलायम, (सुंहालो) ३ भारी, ४ हलका, ५ ठंडा, ६ गरम, ७ चीकना, (चौंपड्या) ८ रूखा (लूखा) ॥ एकेक स्पर्शमे तवीस तवीस बोल पाते है-पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस, छे स्पर्श, (एक अपना (पोताको) और एक प्रतिपक्षी का छोडकर) पांच संठाण- एवं-तेवीस अष्ठा एकसो चौरासी-भेद स्पर्श के हुए।

१००-भेद संठाण के—१ परिमंडळ संठाण, २ वट संठाण, ३ त्रंश संठाण, ४ चौरंस संठाण, ५ आयत संठाण, ॥ एकेक संठाण में वीस वीस बोल पाते है-पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, आठ स्पर्श-एवं-सौभेद संठाण (संस्थान) के हुए।

तीस भेद अरूपी अजीवके, सो कहते है॥ "

धर्मस्ति कायके पांच, अधर्मास्तिकायके पांच, आकाशास्ति कायके पांच, कालद्रव्यके पांच, ये वीस भेद वीसमें बोलके मुआफिक समझना। और धर्मास्तिकायके तीन भेद-१ स्कन्ध, २ देश, ३ प्रदेश ऐसेही अधर्मास्तिकायके और आकाशास्ति कायके तीन तीन भेद जानना। और दशमा काल (अद्धा समय) ये तीस भेद अरूपी अजीवके हुए॥

सर्व मिलके ५६० भेद अजीव राशिके (अजीव तत्त्वके) पूरे हुए॥

(२२] बावीसमें बोले श्रावकजीके बारह व्रत:—

पहले व्रतमें श्रावकजी, निरापराधी त्रस जीवोंकी हिंसाका त्याग करें। और स्थावर जीवोके हिंसाकी मर्यादा करें।

दूसरा व्रतमें—मोटे (बड़े) झूठ बोलनेका त्याग करें।

तीसरे व्रतमें—मोटी (बड़ी) चोरीका त्याग करें।

चौथे व्रतमें—परस्त्रीका त्यागन करें। और अपनी स्त्रीसे मैथुनादि सेवन करनेकी मर्यादा करें।

पांचमें व्रतमें—परिग्रह रखनेकी मर्यादा करें।

छठे व्रतमें—छओं दिशाओंमें जानेकी मर्यादा करे।

सातमें व्रतमें—पन्द्रह कर्मादानोंका त्याग करें, और छब्बीस बोलोंकी मर्यादा करें।

आठमें व्रतमें—अनर्थ दंड (निरर्थक पापोंका) का त्याग करें।

नवमें व्रतमें—सामायिक करें।

दशमें व्रतमें—प्रति दिनमें जाने, आने, खाने, पीने व्यवहारादि कामोंके करनेकी मर्यादा करें।

ग्यारहमें व्रतमें—महीनामें छे पोषा (पौषध) करें।

बारहमें व्रतमें—साधु मुनिराजको चौदह प्रकार का सूझता शुद्ध-दान देवें।

[२३] तेवीसमे बोले साधु मुनिराजके पांच महाव्रत।

(१) पहिले महाव्रतमें-साधु मुनिराज सर्वथा प्रकार किसी जीवको मारे नहीं मराये नहीं, मारतेको भला जाने नहीं। *

---

* इन पांच महाव्रतोंके भांगे इस प्रकार है—पहलाके ८१, दूसराके ३६ तीसराके—५४, चौथाके—२७, पांचमाके ५४, यों सब २५२ भांगे (भागा) होते है।

(२) दूजे महाव्रतमे— सर्वथा प्रकारे–झूठ बोले नहीं, बुलावे नहीं, बोलते को भला (अच्छा) जाने नहीं।

(३) तीसरे महाव्रतमे—सर्वथा प्रकारे चोरी करे नहीं, करावे नहीं, करतेको भला जाने नहीं।

(४) चोथे महाव्रतमें—सर्वथा प्रकारें कुशील (मैथुन) सेवे नहीं सेवावे नहीं, सेवतेको भला जाने नहीं।

(५) पांचमें महाव्रतमें—सर्वथा प्रकारे परिग्रह (धन-दौलत स्थावर, जंगमादि) रखे नहीं, रखावे नहीं, रखतेको भला जाने नहीं।

[२९] चौवीसमें बोले–व्रतपच्चखाणके ४९ भांगेः—

अंक ग्यारहका भांगें, (भागां)९— एक करण एक योगसे कहना–(१) करूं नहीं मनकर (मनसा) (२) करूं नहीं वचनकर (वायसा) (३) करूं नहीं कायकर (कायसा) (४) कराऊं नहीं मनकर (५) कराऊं नहीं वचनकर (६) कराऊं नहीं कायाकर (७) करतेको भला जानूं नहीं (अनमोदूं नहीं) मनकर, (८) करतेको भला जानूं नहीं वचनकर, (९) करतेको भला जानूं नहीं–कायाकर ॥

अंक बारहका भांगें ९–एक करण दो योगसे कहना—(१) करूं नहीं मनकर, वचनकर, (२) करूं नहीं मनकर काया-कर, (३) करूं नहीं वचनकर कायाकर, (४] कराऊं नहीं मनकर वचनकर, [५] कराऊं नहीं, मनकर कायाकर (६) कराऊं नहीं वचनकर, कायाकर, [७] करतेको

मला जानूं नहीं मनकर वचनकर [८] करतेका मला जानूं नहीं मनकर, कायाकर, [९] कराऊं नहीं वचनकर कायाकर।

अंक तेरहका भांगे ३–एक करण तीन योगसे कहना। [१] करूं नहीं मनकर, वचनकर कायाकर (२) कराऊं नहीं मनकर वचनकर कायाकर (३) करतेका मला जानूं नहीं मनकर, वचनकर, कायाकर ॥

अंक इक्कीसका भांगे ९–दो करण एक योगसे कहना। (१) करूं नहीं कराऊं नहीं मनकर, [२] करूं नहीं कराऊं नहीं वचनकर, [३] करूं नहीं कराऊं नहीं कायाकर ॥ [४] करूं नहीं, करतेका मला जानूं नहीं मनकर, [५] करूं नहीं, करतेको मला जानूं नहीं वचनकर, [६] करूं नहीं, करतेको मला जानूं नहीं कायाकर, [७] कराऊं नहीं, करतेको मला जानूं नहीं मनकर, [८] कराऊं नहीं, करतेको मला जानूं नहीं वचनकर, [९] कराऊं नहीं करतेका मला जानूं नहीं, कायाकर ॥

अंक बावीसका भांगे ९–दो करण दो योगसे कहना। [१] करूं नहीं कराऊं नहीं, मनकर, वचनकर, [२] करूं नहीं, कराऊं नहीं मनकर, कायाकर, [३] करूं नहीं, कराऊं नहीं वचनकर कायाकर, [४] करूं नहीं, करतेको मला जानूं नहीं मनकर वचनकर, [५] करूं नहीं,, करतेको मला जानूं नहीं मनकर, कायाकर, [६] करूं नहीं, करतेको मला जानूं नहीं, वचनकर, कायाकर [७] कराऊं नहीं, करतेका मला जानूं नहीं, मनकर, वचनकर, [८] कराऊं नहीं, करतेका मला

जानूं नहीं, वचनकर [९] कराऊं नहीं, करतेको भला जानूं नहीं कायाकर ॥

अंक वावीसका भांगे ९- दो करण दो योगसे कहना ।[१) करूं नहीं, कराऊं नहीं, मनकर, वचनकर, (२) करूं नहीं, कराऊं नहीं, मनकर, कायाकर, [३] करूं नहीं, कराऊं नहीं वचनकर, कायाकर, [४] करूं नहीं, करतेको भला जानूं नहीं, मनकर, वचनकर, [५] करूं नहीं, करतेको भला जानूं नहीं, मनकर, कायाकर, [६] करूं नहीं, करतेको भला जानूं नहीं वचनकर, कायाकर, [७] कराऊं नहीं करतेको भला जानूं नहीं, मनकर, वचनकर, (८) कराऊं नहीं, करतेको भला जानूं नहीं, मनकर, कायाकर, (९) कराऊं नहीं, करतेको भला जानूं नहीं वचनकर, कायाकर ॥

अंक २३ का-भांगे ३-दो करण तीन योगसे कहना-- [१] करूं नहीं, कराऊं नहीं, मनकर, वचनकर, कायाकर, (२) करूं नहीं, करतेको भला जानूं नहीं, मनकर, वचनकर, कायाकर, [३] कराऊं नहीं, करतेको भला जानूं नहीं, मनकर, वचनकर, कायाकर ॥

अंक ३१-का भांगे ३-दो करण एक योगसे कहना-- [१] करूं नहीं, कराऊं नहीं, मनकर, वचनकर कायाकर, (२) करूं नहीं, करतेको भला जानूं नहीं, मनकर, वचनकर, कायाकर, (३) कराऊं नहीं, करतेको भला जानूं नहीं, मनकर, वचनकर, कायाकर ॥

अंक ३२ का भांगे ३-तीन-करण दो योगसे कहना ।(१)

करू नहीं, कराऊं नहीं, करतेका भला जानूं नहीं मनकर, वचन कर (२) करूं नहीं, कराऊं नहीं, करतका भला जानूं नहीं, मनकर कायाकर (३) करू नहीं कराऊ नहीं, करतका भला जानूं नहीं वचनकर कायाकर ॥

–अंक ३३ का भांगा १–तीन करण तीन जोगसे कहना(१) करूं नहीं, कराऊं नहीं, करतका भला जानूं नहीं, मनकर वचनकर, कायाकर ॥

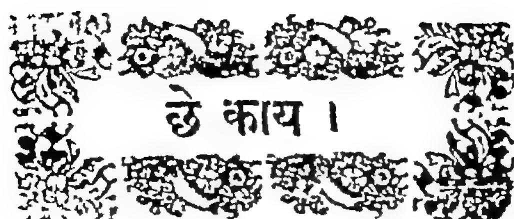
सब भांगें ४९ हुए ॥

[२५] पच्चीसमें बोले–चारित्र पांच –

[१] सामायिक चारित्र, [२] छेदोपस्थापनीय चारित्र, [३] परिहार विशुद्धि चारित्र, [४] सूक्ष्म संपराय चारित्र, [५] यथाख्यात चारित्र ॥ इति ॥

सेवभंते सेवभंते तमेव सच्चम् ।





छे काय।

संसारी जीव छे प्रकारसे पहचाने जाते है–उनको 'छे काय' कहते हैं। छे कायके दो भेदः—[१] स्थावर, और (२) त्रस। [१] जो एकही जगहपर स्थिर रहें, जो नहीं चलें हलें, उसको ' स्थावर ' कहते हैं। [२] जो चलें हलें तथा एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जावें, उसे त्रस कहते हैं॥

छे कायके नामः—१ इंदी स्थावर काय, २–वंभी स्थावर काय, ३–सप्पि स्थावर काय, ४–सुमति स्थावर काय, ५–पयावच स्थावर काय, ६–जंगम काय॥

छे कायके गोत्रः—१ पृथ्वी काय, २–अप काय, ३–तेउ काय, ४–वायु काय, ५–वनस्पति काय ६–त्रस काय॥

स्थावरके दो भेदः—१–सूक्ष्म और [२] बादर॥

[१] जो मारनेसे नहीं मरे, बालनेसे नहीं बलें, सम्पूर्ण लोकमें भरे हुए है, ज्ञानीके नजरमें आवे, परंतु छद्मस्थके नजरमें नहीं आवें, उसका नाम सूक्ष्म है। [२] जो मारनेसे मरें बालनेसे बलें, और जो छद्मस्थके नजरमें आवें–उसका नाम बादर है॥

पृथ्वी कायके दो भेदः—१–सूक्ष्म, और २ बादर। सूक्ष्म तो सब लोकमें भरी है। और बादर पृथ्वी काय यह-

है । आयुष्य—जघन्य अंतर्मुहूर्तका उत्कृष्ट तीन हजार वर्षका है । ऐसा समझकर जो वायुकायके जीवोंकी दया पालेंगे वह साधक अनन्त सुख पावेंगे ॥

वनस्पति कायके दोभेद —१-सूक्ष्म और [२] बादर ॥ सूक्ष्म तो संपूर्ण लोकमें भरा पड़ा है । और बादर वनस्पतिकायकेभी दो भेद है –१ प्रत्येक वनस्पति काय, और (२) साधारण वनस्पति काय ॥

प्रत्येक वनस्पति याने प्रत्येक शरीरमें एकही जीव रहता है, उसे कहते हैं—उनके नाम —वृक्ष, बल, गुल्म लता, तुलसी, एरण्ड, आक, धतुरा, दाडिम, केला, नारंगी, जवार, बाजरी, गहू, मूग मोठ चणा, चावल, मक्का आदिधान्य, और मूगकी फली, मोठकी फली, ग्वारकी फली, चवलाककी फली, इत्यादि बहुतसी, शाकभाजी आदि सब प्रत्येक वनस्पति काय है । इसमेंभी संख्याता असंख्याता दो भेद हैं । संख्याता याने जिसके जीवोंकी संख्या हो सके, असंख्याता याने जिसके जीवोंकी संख्या न हो सके, इस प्रकार दो भेद माने हैं इनका आयुष्य जघन्य अंतर्मुहूर्तका उत्कृष्ट दश हजार वर्षका होता है।

साधारण वनस्पति याने जिसके एक शरीरमें अनन्त जीव हो उसे कहते है। साधारणवनस्पतिके कुछनाम नीलण, फूलण, गाजर मूला, आलु, लसण, कांदा मुंगफली, अदरख, सूरणकन्द, आदि सब जमीकन्द-वगेरह वगेरह साधारण वनस्पति काय है । इसमेंभी जीवोंकी अपेक्षासे संख्याता

असंख्याता, अनन्ता ऐसे तीन भेद होते हैं। कंदमूलके, सुईके अग्रभाग [अनी] उतने टुकडेमें अनन्त जीव सर्वज्ञ देवने बताये हैं। इनका आयुष्य-जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्तका है। साधारण वनस्पतिकायकी 'कुल कोडी' अट्ठावीस लाख हैं। इस प्रकार इनका स्वरूप जानकर जो इनके जीवोंकी दया पालेंगे —वह मोक्षके अनन्त सुख पावेंगे ॥

त्रसकायके चार भेदः—[१] बे इन्द्रिय, [२] ते इन्द्रिय, [४] चौरिन्द्रिय, [५] पंचेन्द्रिय ॥

बे इन्द्रिय—याने जिसके दो इन्द्रिय [जीभ और शरीर] हो उसे कहते हैं।

बे इन्द्रिय जीवोंके कुछ नामः—कोडी, शीप, शंख, लट, कृमि, (कीडा) जौंक, इत्यादि बहुतसे बे इन्द्रिय जीव हैं। बे इन्द्रियकी 'कुल कोडी' सात लाख है। आयुष्य-जघन्य अंतर्मुहूर्तका उत्कृष्ट बारह वर्षका है।

ते इन्द्रिय—याने तीन इन्द्रिय (जीभ, नाक, शरीर,) वाले जीवोंको कहते हैं। उनके कुछ नामः—जू, लिख, चिंटी [कीडी] मकोडा, कुंथुआ, खटमल, आदि आदि तेन्द्रिय जीव है। इनकी 'कुल कोडी' आठ लाख है। आयुष्य-जघन्य अंतर्मुहू-—र्तका उत्कृष्ट ४९ दिनका है ॥

चौरिन्द्रिय याने जिसके चार इन्द्रिय [जीभ, नाक, आंख, शरीर) हो, उसे, कहते हैं। चौरिन्द्रिय जीवोंके कुछ नामः—मकडी, मच्छर, भंवरा, टीडी, पतंगिया, बिच्छू,

कसारी इत्यादि चारिन्द्रिय जीव हैं। इनका कुलकोटी ९ लाख हैं। आयुष्य-जघन्य अन्तर्मुहूर्तका-उत्कृष्ट छे मासका है॥

पचेन्द्रिय—याने पांच इन्द्रिय वाले (काया, कान, आंख, जीभ, नाक) आत्माओंको कहते हैं। इनके दो भेद—१ अपर्याप्ता २ पर्याप्ता, तथा चार भेद—नारकी तिर्यंच, मनुष्य और देवता॥ नारकीका कुल कोडी २५ लाख, देवताकी कुल कोडी २६ लाख, तिर्यंच पचेन्द्रियकी कुल कोडी ५३॥ लाख, और मनुष्यकी कुल कोडी १२ लाख है॥

नारकी और देवताका आयुष्य-जघन्य दश हजार वर्ष, उत्कृष्ट ३१ सागरका, तिर्यंच और मनुष्यका जघन्य अंतर्मुहूर्तका उत्कृष्ट-तीन पल्यका॥

ऐसा—जानकर जो त्रस कायके जीवोंकी दया पालेंगे व मोक्षके अनन्त सुख पावेंगे॥

इति छे कायका थोकडा समाप्त॥

* तिर्यंच पचेन्द्रियकी ५३॥ लाख कुल कोडीका हिसाब—जलचरकी १२॥ लाख, स्थलचरकी १० लाख, खेचरकी १२ लाख, उरपरकी दश लाख भुजपरकी ९ लाख, यों मिलकर सब ५३॥ लाख होते हैं॥

जीवके छे भेदः—१ पृथ्वीकाय, २–अप काय, ३–तेउ काय, ४–वाउ काय, ५–वनस्पति काय, ६–त्रस काय ॥ तथा १–एकेन्द्रिय, २–बेइन्द्रिय, ३–तेइन्द्रिय, ४–चौरिन्द्रिय, ५–पंचेन्द्रिय, ६–अनेंद्रिय ॥ तथा १–सकषायी, २–क्रोधकषायी, ३–मान कषायी, ४–माया कषायी, ५–लोभ कषायी, ६–अकषायी ॥

जीवके सात भेद —१–पृथ्वी काय, २–अप काय, ३–तेउ काय, ४–वाउ काय, ५–वनस्पति काय, ६–त्रस काय, ७–अकाय ॥

जीवके आठ भेद –१ सलेशी, २–कृष्ण लेशी, ३–नील-लेशी, ४–कापुत लेशी, ५–तेजू लेशी ६–पद्म लेशी, ७–शुक्ल लेशी, ८–अलेशी ॥ तथा १–नारकी, २–तिर्यंच, ३–तिर्यंचनी, ४–मनुष्य, ५–मनुष्यनी, ६–देवता, ७–देवी, ८–सिद्धभगवान् ॥

जीवके नव भेद —चार गतिका अपर्याप्ता, पर्याप्ता और सिद्धभगवान ॥ तथा पांच स्थावर और चार त्रस, ये ९ ॥

जीवके दश भेदः—पांच स्थावर, चार त्रस, ये नव, और दशमा–नो स्थावर, नो त्रस, एवं १० ॥ तथा एकेन्द्रियसे लेकर पचेन्द्रिय तक, इन पांचोंका अपर्याप्ता और पर्याप्ता, एवं १० ॥

जीवके ग्यारह भेदः—पांचोंन्द्रियों (एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय तक) का अपर्याप्ता, पर्याप्ता, ये दश, और नो अपर्याप्ता, नो पर्याप्ता एवं ११ ॥

जीवके बारह भेद —छहों कायका अपर्याप्ता, और पर्याप्ता य १२, ॥

जीवके तरह भेद — छहों लेश्याका अपर्याप्ता और पर्याप्ता और अलश्री, एव १३ ॥

जीवके पौदह भद —१ सूक्ष्म एकेन्द्रिय, २-बादर एकन्द्रिय, ३—बइन्द्रिय, ४—तेइन्द्रिय, ५—चौरिन्द्रिय, ६—असन्नी पचेन्द्रिय, ७—सन्नी पचेन्द्रिय, इन सातोंका अपर्याप्ता और अपर्याप्ता, ये १४ ॥ इस तरह जीवके-५६३ भेद होते हैं, जिनका विस्तार पचीस बोलके [थोकडेके] इकीसमें बोलमें आगया है, वहांसे जान लेना ॥

२ अजीव तत्त्व ।

अजीव तत्त्व किसको कहना ? जिसमें चैतन्यता नहीं, जो सुख दुःखको न जान सकता हो या कर्मोंका कर्ता [करने वाला) और भोक्ता (भोगनेवाला) न हो, इत्यादि लक्षणोंसे जो युक्त हो उसका नाम 'अजीव' है ॥ उस अजीवके जघन्य १४ भेद, और उत्कृष्ट ५६० भेद है ॥

इनकाभी विस्तार पचीस बोलके इकीसमें बोलमें आचुका है—वहांसे जान लना चाहिए ॥

३ पुण्य तत्त्व ।

जिन शुभ कर्मोंके करनेसे जीवको, सम्पत्ति, आरोग्यता, स्त्री, पुत्रादिक परिवार, कीर्ति, रूप, लक्ष्मी दीर्घायुष्य, आदि २ अच्छी २ चीजें मिलती हैं—उसको 'पुण्य' कहते हैं । सब पुण्य बांधनेके समय जीवको दुःख मालूम होता है और

नवतत्त्व

गाथा.

जीवाजीवा पुण्णं, पावासव संवरोय निज्झरणा ॥
बंधो मुरकओ य तहा, नव तत्ता हुंति नायव्वा ॥ १ ॥

अर्थ—१ जीव, २–अजीव, ३ पुण्य, ४–पाप, ५–आश्रव ६ संवर, ७–निर्जरा, ८–बंध, ९–मोक्ष ॥ ये नव तत्त्व है ।

जीवतत्त्व ।

जीवतत्व किसको कहना? जो चैतन्य, लक्षणवाला हो, जो सदा सहउपयोगी हो, जो सुखदुःखको जाननेवाला हो, और जो असंख्यात प्रदेशी हो, व्यवहारनयसे जो कर्मोंका करनेवाला, वा भोगनेवाला हो, तथा कर्मोंको तोडनेवालाभी हो, निश्चयनयसे जो ज्ञानदर्शन चारित्रका धारक हो, इत्यादि लक्षणोंकर जो सहित हो–उसका नाम जीव है ।

उस जीवके दो भेदः—१–संसारी, और २–सिद्ध ।

१ **संसारी जीव उसे कहते है**—जो कर्म बंधनोंसे बंधाहुआ हो । २ **सिद्ध जीव उसे कहते हैं**—जिसके पीछे कर्म रूप बन्धन न हो ॥

फिर जीवके दो भेद–१-स्थावर,*और २ त्रस, फिरजीवके दो भेद –१-सन्नी, और २-असन्नी, फिर जीवके दो भेद –१-सूक्ष्म, और २-बादर ॥

जीवके तीन भेद —१ स्त्रीवेद, २ पुरुष वेद, ३ नपुसक वेद ॥ तथा १–भवसिद्धिया २–अभवसिद्धिया, ३–नोभव सिद्धिया-नो अभवसिद्धिया ॥ तथा १ सन्नी २ असन्नी, ३ नो सन्नी ना असन्नी ॥

जीवके चार भेद —१ स्त्री वेद, २–पुरुष वेद, ३–नपुसक वेद, ४–अवेदी ॥ तथा १–चक्षुदर्शनी, २–अचक्षुदर्शनी, ३–अवधि दर्शनी, ४–केवल दर्शनी ॥

जीवके पांच भेद —१-नारकी, २ देवता, ३ तिर्यंच, ४ मनुष्य, ५ सिद्धभगवान, तथा १–एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, ३–तेइन्द्रिय, ४–चौरिन्द्रिय, ५–पचेन्द्रिय तथा १–सयोगी २–मनयोगी, ३–वचन योगी, ४–काययोगी, ५–अयोगी ॥ तथा १–क्रोध कषायी, २–मानकषायी, ३–माया कषायी, ४ लोभ कषायी, ५ अकषायी ॥

---

*१ जो एकही जगहपर रहे जिससे चलन हलनादि क्रिया न हो सके, उसका नाम 'स्थावर' है। २–इसके विपरीत जिसका लक्षण हो वह 'त्रस' है। ३–जिसके मन हो वह सन्नी (सज्ञी) है। ४–जिसके मन न हो वह असन्नी (असज्ञी) है। ५–जो बारीकसे बारीक हो सर्वज्ञके बिना दूसरा जिसे न देख सके वह 'सूक्ष्म' कहा जाता है। ६–जो सबकी दृष्टिमें आसकता है वह 'बादर' (बड़ा) है।

भोगनेके समय सुख मालूम होता है—उसेभी 'पुण्य' कहते हैं।

पुण्य बांधनेके जघन्य ९ भेद हैं—१ अन्न पुन्ने (भूखोंको भोजन देनेसे पुण्य होता है), पाण पुन्ने [प्यासोंको पानी पिलानेसे पुण्य होता है], ३लयण पुन्ने [निराश्रितोंको आश्रय याने—स्थान, मकान, आदि जगह देनेसे पुण्य होता है] ४सयण पुन्ने, [शय्या,बिछौना पाट, पाटलादिक देनेसे पुण्य होता है] ५ वत्थ पुन्ने (वस्त्र,कपडा देनेसे पुण्य होता है) ६ मन पुन्ने (मन को अच्छे कामोंमें लगानेसे पुण्य होता है) ७ वचन पुन्ने [वचन याने -जबानको अच्छे कामोंमें चलानेसे पुण्य होता है], ८ कायपुन्ने [शरीरसे अच्छे काम बनाने—सेवाभक्ति—करनेसे पुण्य होता है] ९—नमस्कार पुन्ने [सबको नमस्कार करनेसे तथा सबके साथ नमकर चलनेसे पुण्य होना है] ये पुण्य बांधने उपार्जन-पैदा-करनेके ९ साधन-उपाय-कारण-है।

पुण्यके उत्कृष्ट४२भेद हैः—[जिसके द्वारा-पुण्य भोगा जाता है उसके] १ शातावेदनीय, २ उच्च गौत्र, ३ मनुष्यगति, ४ मनुष्यानुपूर्वी, ५ देवगति, ६ देवानुपूर्वी, ७ पंचेन्द्रिय. ८ औदारिक शरीर, ९ वैक्रयिक शरीर, १० आहारक शरीर, ११ तेजस शरीर, १२ कार्माणशरीर, १३ औदारिक शरीर, अगोपांग, १४ वैक्रयिक शरीर, अंगोपांग. १५ आहारक शरीर

१ जिस जीवके जन्मसे मरण पर्यंत किसी प्रकारका दुःख न हो सुखीवना रहे,—उसे 'शातावेदनीय' पुण्यका उदय कहते हैं २ जो लोकमान्य उच्च कुलमें उत्पन्न हो वह 'उच्च गौत्र' पुण्यहै। ३ मनुष्य जन्मभी 'मनुष्य गति' नामक पुण्य से मिलता है। ४

भगोपांग १६ वज्रऋषभनाराचशरीर संघयण १७ समचउरंस (समचतुरस्र) संठाण (संस्थान) १८ शुभ वर्ण १९ शुभगंध २० शुभरस २१ शुभस्पर्श २२ अगुरुलघु नाम २३ परघात नाम २४ उच्छ्वास नाम २५ आतप नाम २६ उद्योतनाम २७ शुभगति नाम २८ निमाण नाम २९ त्रस नाम ३० बादर नाम ३१ पर्याप्त नाम ३२ प्रत्येक

'मनुष्यानुपूर्वी' मनुष्य जन्मका बंध पड़नेको कहते हैं। ५ देव होनामी 'देवगति' नामक पुण्य है। ६ देवानुपूर्वी' देवगतिके बंध पड़नेको कहते है। ७पांचोंइन्द्रियोंका पाना 'पंचेन्द्रिय' है। ८औदारिक ९ वैक्रियिक १० आहारक ११ तैजस १२ कार्माण इन पांचों शरीरका बंध पड़नामी पुण्यका उदय है १३औदारिक शरीरके पूर्ण अङ्गपांङ्ग १४ वैक्रियिक शरीरके पूर्ण अङ्गोपांग १५ आहारक इन तीन शरीरों इन तीन शरीरोंके पूर्ण अङ्गोपाङ्गोंका पानाभी पुण्यफल है १६ जिस शरीरके हाड़ गठन (बंधन) और कीलें वज्रके मुताबिक हो उसे वज्र ऋषभ नाराच शरीर संहनन कहते है, ऐसा शरीर मिलनाभी पुण्यफल है। १७ जिसका शरीर चारों ओरसे मापमेंपर एकसा आवे तथा जो शरीर सुडौल सुदर हो उसे समचउरंस संठाण कहते है। जिसके शरीरका १८ शुभवर्ण १९ शुभगंध २० शुभरस २१ शुभस्पर्श हातादिफलमी पुण्योदय है २२ 'यस्मात्यादय पिण्डवत् गुरुत्वात् न पतति नचार्कतूलवत् लघुत्वादूर्ध्व गच्छति तदगुरुलघुनाम' जिसका शरीर लोह पिण्डकी तरह भारी, नीचेको जानेवाला तथा अर्कतूलके मुताबिक ऊपरको जानेवाला न हो, याने न तो भारी हो और न हल्का हो

नाम. ३३ स्थिर नाम. ३४ शुभ नाम. ३५ सौभाग्य नाम. ३६ सुस्वर नाम. ३७ आदेय नाम. ३८ यशःकीर्ति नाम. ३९

उसे 'अगुरुलघु नाम' कहते है। २३ 'परेपाघात परघात –यदुदयात्तीक्ष्णशृंगनखसर्पदाढादयो भवंति अवयवा तत्परघातनाम' जिसके उदयसे दूसरोंका घात करसकें ऐसे शरीरावयव मिले उसका 'परघात नाम' है। २४ सुखपूर्वक श्वासोच्छ्वास लेनेको 'उच्छ्वास नाम' कहते है। २५ जिसका शरीर सूर्यवत् तेजवान् हो वह 'आतपनाम' हैं। २६ चन्द्रमाके जैसी जिसके शरीरकी प्रभा हो उसका 'उद्योत नाम' हैं। २७ जिसकी चाल मनोहर हो 'वह शुभगति' हैं। २८ जिसके शरीरके अवयव, इन्द्रियाँ, जहाँकितहाँ हो उसे 'निर्माणनाम' कहते है। २९ जिसके उदयसे बेइन्द्रियादिकमें जन्म हो उसे 'त्रस' कहते हैं। ३८ 'यदुदयादन्यबाधाकरशरीर भवति तद्बादरनाम' जिस शरीरसे दूसरोंको पीड़ा हो तथा जो स्थानको रोककर रहे, वह 'बादर' है ३१ छहों पर्याप्ति जिसके पूरी हो वह 'पर्याप्ति नाम' है. ३२ एक शरीरमें एकही आत्मा (जीव) हो, उसे 'प्रत्येक नाम' कहते है। ३३–जिसके उदयसे शरीरमें रसादिक धातु और उपधातु अपनी २ जगहपर स्थिर रहे सो 'स्थिरनाम' है। ३४–जिसके उदयसे शरीरके मनोज्ञ–रमणीय-प्रशस्त मस्तकादिक अवयव हो वह शुभनाम है। ३५–जिसके उदयसे अन्य जीव उससे प्रीति करें वह 'सौभाग्य नाम' है। ३६–जिसका स्वर (कण्ठ आवाज) मनोज्ञ–सुहावना हो सो 'सुस्वर नाम' है। ३७–जिसके वचनका कोई उल्लंघन न करसकें वह 'आदेयनाम' पुण्यफल है। ३९–जिसकी यश.कीर्ति जगत्‌गरमें फैलजाय उसके 'यश कीर्ति नाम' पुण्यका उदय कहना

देवायु, ४० मनुष्यायु ४१ तिर्यंचायु ४२ तीर्थंकर नामकर्म।
ये पुण्यके ४२ भेद हुए।

५ पापतत्त्व

पापतत्त्व किसको कहना ? जिस कार्मोंके करनेसे जीवको दुःखोंकी प्राप्ति होती है उसे 'पाप' कहते हैं। तथा पाप करते समय तो जीवको अच्छा मालूम हो परंतु भोगनेके समय बुरा मालूम हो वह 'पाप' है। उस पापके (पाप बांधनेके) जघन्य [कमसे कम] अठारह भेद (प्रकार) हैं -१ प्राणातिपात २ मृषावाद ३ अदत्तादान ४ मैथुन ५ परिग्रह ६ क्रोध ७ मान ८ माया ९ लोभ १० राग ११ द्वेष १२ कलह (लड़ाई) १३ अभ्याख्यान १४ पैशून्य १५ परपरिवाद १६ रति अरति १७ माया मोसो (मर्ममृषा) मिथ्यादर्शनशल्य ॥

पापके उत्कृष्ट (पाप भोगनेके) ८२ भेद हैं —१ मतिज्ञानावरणीय २ श्रुतज्ञानावरणीय ३ अवधिज्ञानावरणीय ४

चाहिए। ३९-४ -४१-जिसके उदयसे देव-मनुष्य-तिर्यंचका पूर्णायु प्राप्त हो उसे देवायु मनुष्यायु, तिर्यंचायु नामक पुण्यप्रकृतिका उदय कहना चाहिए। ४२-जिससे तीर्थंकर पदकी प्राप्ति हो वह तीर्थंकर नाम' पुण्य कर्म है।

ये पुण्यके ४२ भेदोंका संक्षिप्त भावार्थ हुआ।

१-मतिज्ञानावरणीय उसे कहते हैं-जो मतिज्ञानको (इन्द्रियों तथा मनसे जो कुछ जाना जाता है उसे मतिज्ञान कहते हैं) न होने देवे अथवा मतिज्ञानका आवरण या घात करे। २-श्रुतज्ञानावर

मनः पर्यवज्ञानावरणीय. ५ केवल नाज्ञावरणीय. ६ निद्रा.७निद्रा-निद्रा. ८ प्रचला. ९ प्रचला प्रचला. १० थिणाद्धिनिद्रा(स्त्यान-गृद्धि) ११ चक्षुदर्शनावरणीय. १२ अचक्षुदर्शनावरणीय. १३

णीय उसे कहते हैं—जो श्रुत [सुननेसे जो बात माल्रुम होती हैं उसे श्रुतज्ञान कहते हैं] ज्ञानका घात करें. । ३—अवधिज्ञानावरणीय उसे कहते है जो अवधि ज्ञान [बिना इद्रियोंकी सहायताके आत्मिक शक्तिसे रूपी पदार्थोंके जाननेको अवधि ज्ञान कहते हैं । यह पचेन्द्रिय सज्ञी जींवकेही होता हैं] का घात करें । ४—मन पर्यवज्ञानावरणीय उसे कहते हैं—जो मन पर्यव [विना इन्द्रियोंकी सहायताके दूसरोंके मनकी बात जानलेनेको मन.पर्यव ज्ञान कहते हैं] ज्ञानका घात करें । ५—केवल ज्ञानावरणीय उसे कहते है—जो केनल ज्ञान [लोक अलोककी, भूत भविष्यत् और वर्तमानकी सर्व वस्तुओंको और उनके गुण पर्यायों (हालतों) को एकसाथ एक कालमें विना इन्द्रियोंकी सहायतासे आत्मिक शक्ति से जाननेको केवल ज्ञान कहते हैं केवलज्ञानीके ज्ञानसे कोई वस्तु वची नहीं रहती] का घात करें । ६—सुखसे जागृत होनेको निद्रा कहते है । ७ दु खसे जागृत होनेको ‘ निद्रा निद्रा ’ कहते हैं । ८—जिसे उठते बैंठते नींद आया करती हैं, तथा कुछ सोताभी रहे, और कुछ जागताभी रहे, उसे ‘ प्रचला ’ कहते हैं । ९ जिसे चलते फिरते नींद आया करती हैं तथा जिसके मुखसे नींदमें लार वहती रहती है, उसे ‘ प्रचला प्रचला ’ कहते हैं । १०—जिसकी उत्कृष्ट छे महिनोंकी नींद होती है, जो नींदमेंही सब काम करता रहता हैं तथा नींदमें अपनी शक्तिसे बाहरकाभी काम हो तोभी वह कर लेता है और फिर जागनेपर यहभी माल्रुम नरहे कि—मैंने क्या

अवधि दर्शनावरणीय १४ केवल दर्शनावरणीय, १५ नीच गोत्र १६ असाता वेदनीय १७ मिथ्यात्व मोहनीय १८ स्थावर नाम १९ सूक्ष्म नाम २० अपर्याप्त नाम २१ साधारणनाम ।

किया था, उस "थिणद्धि निद्रा" कहते हैं । इस निद्रावालेके वासु देवमें आधा बल होता है और वह मरकर नरकमें जाता है । ११ चक्षुदर्शनावरणीय उसे कहते हैं—जो चक्षुर्दर्शन [आंखोंसे देखना] न होने दे । १२ अचक्षुर्दर्शनावरणीय उसे कहते हैं जो अचक्षुर्दर्शन [आंखके बिना बाकी इन्द्रियों तथा मनसे किसी वस्तुका देखना] न होने दे । १३—अवधि दर्शनावरणीय उसे कहते हैं—जो अवधि दर्शन न होने दे । १४—केवल दर्शनावरणीय उसे कहते हैं—जो केवल दर्शन न होने दे । १५—नीच गोत्र उसे कहते हैं—जिसके उदयसे आत्मा निंदित-अर्थात् हलके कुलमें पैदा हो । १६ असातावेदनीय उसे कहते हैं—जिसके उदयसे दुःख हो । १७—मिथ्यात्व मोहनीय उसे कहते हैं—जिसके उदयसे जीवको यथार्थ तत्वोंका श्रद्धान (विश्वास) न हो । १८—स्थावरनाम—उसे कहते हैं—जिसके उदयसे जीव पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु वनस्पतिमें, अर्थात् एकेन्द्रियमें जन्म लेता है । १९—सूक्ष्म नाम उसे कहते हैं—जिसके उदयसे ऐसा बारीक शरीर पावे कि—न तो वह किसीसे रुक सके और न वह किसीको रोक सके । सांकल भीत पत्थरके बीचमें ... निकल जाता है । २० अपर्याप्त नाम वह है—जिसके उदयसे ... पर्याप्त ... न हो । २१ साधारण नाम वह है—जिसके उदयसे एक शरीरके स्वामी अनन्त जीव होवें । २२ अस्थिरनाम

२२ अस्थिरनाम. २३ अशुभनाम. २४ दुर्भाग्यनाम. २५ दुःस्वरनाम. २६ अनादेय नाम. २७ अयशःकीर्ति नाम. २८ नरकगतिनाम. २९. नरकायु. ३० नरकानुपूर्वी. ३१ अनन्तानुबन्धी क्रोध. ३२ अनंतानुबन्धी मान. ३३ अनंतानुबन्धी माया. ३४ अनंतानुबन्धी लोभ. ३५ अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध. ३६ अप्रत्याख्यानावरणीय मान. ३७ अप्रत्याख्यानावरणीय माया. ३८ अप्रत्याख्यानावरणीय लोभ ३९. प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध. ४० प्रत्याख्यानावरणीय मान. ४१

होय. इसके उदयसे शरीरके धातु और उपधातु अपने अपने स्थानमें नहीं रहते हैं. २३ 'अशुभनाम' इसके उदयसे शरीरके अवयव [शिरादि] अशुभ होते हैं. २४ 'दुर्भाग्यनाम' इसके उदयसे दूसरे जीव आपसे प्रीति ना कर सकता है. २५ 'दुःस्वरनाम' इसके उदयसे स्वर [आवाज] अच्छा नहीं होता है । २६ 'अनादेयनाम' इसके उदयसे कोई इसके वचनको न मानता है. २७ 'अयशःकीर्ति' इसके उदयसे जगतमें यश कीर्ति नहीं होने पाती है. २८ 'नरकगति' और 'नरक' हैं जिसके उदयसे जीव नरकमें जाय. २९. 'नरकायु' इसके उदयसे नरकमें जीवको जानेकी अवधि तक रहना. ३० 'नरकानुपूर्वी' नरकगति तक पहुंचाती जाती है. ३१ अनंतानुबंधी क्रोध. ३२ मान. ३३ माया. ३४ लोभ ये कषाय हैं जो आत्माके सम्यक्दर्शन गुणका घात करे. अनादिकालसे कषाय रहती है सम्यक्दर्शन नहीं होता, इनकी स्थिति यावज्जीव पर्यंत है. ३५ अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध. ३६ मान. ३७ माया ३८ लोभ ये कषाय हैं जो आत्माके देश विरतिका घात करे. इनकी स्थिति १ वर्षकी है. ३९.

प्रत्याख्यानावरणीय माया ४२ प्रत्याख्यानावरणीय लोभ ४३ संज्वलनका क्रोध ४४ संज्वलनका मान ४५ संज्वलनकी माया ४६ संज्वलनका लोभ ४७ हास्य ४८ रति, ४९ अरति ५० भय ५१ शोक ५२ दुगछा (जुगुप्सा) ५३ स्त्रीवेद ५४ पुरुषवेद ५५ नपुंसक वेद ५६ तिर्यंचगति ५७ तिर्यंचगत्यानुपूर्वी ५८ एकेन्द्रियनाम ५९ द्वीन्द्रियनाम ६० त्रीन्द्रिय

प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध ४० मान ४१ माया ४२ लोभ उसे कहते हैं-जो आत्माके सपूर्ण चारित्रका नाश करै इसकी स्थिति चार मासकी है ४३ संज्वलनका क्रोध ४४ मान ४५ माया ४६ लोभ उन्हें कहते हैं-जो यथाख्यात चारित्रका घात करें इसकी स्थिति पन्द्रहदिनकी है ४७ हास्य उसे कहते हैं-जिसके उदयसे हसी आवे ४८ रति उसे कहते हैं-जिसके उदयसे प्रीति हो ४९ अरति उसे कहते हैं-जिस उदयसे अप्रीति हो ५० भय उसे कहते हैं-जिसके उदयसे डर लगे ५१ शोक उसे कहते हैं जिसके उदयसे सताप हो ५२ दुगछा (जुगुप्सा) उसे कहते हैं जिसके उदयसे ग्लानि उत्पन्न हो ५३ स्त्रीवेद उसे कहते हैं जिसके उदयसे जीवके पुरुषसे रमण करनेके भाव हों ५४ पुरुष वेद उसे कहते हैं-जिसके उदयसे जीवके स्त्रीसे रमनेके भाव हों ५५ नपुंसक वेद उसे कहते हैं-जिसके उदयसे स्त्री पुरुष, दोनोंसे रमनेके परिणाम हो ५६ तिर्यंचगति तिर्यंच योनिमें जानेको कहते हैं ५७ तिर्यंचगत्यानुपूर्वी तिर्यच गतिका क्रम पकडनेको कहते हैं ५८ जिसके उदयसे जीव, एकेन्द्रिय ५९ द्वीन्द्रिय ६० त्रीन्द्रिय ६१ चौइन्द्रियका शरीर धारण करै उसे क्रमसे एकेन्द्रियादि नाम

नाम. ६१ चौरिन्द्रिय नाम. ६२ अशुभगतिनाम. ६३ उपघात नाम. ६४ अशुभवर्ण. ६५ अशुभगन्ध. ६६ अशुभरस. ६७ ६८अशुभस्पर्श. ६९ऋषभ नाराच संघयण [संहनन] ७०नाराच संघयण. ७१ अर्ध नाराच सघयण. ७२ कीलक संघयण ७३ छेवट संघयण [असंप्राप्ताश्रृपाटिका संहनन] ७४ न्यग्रोधप-

कहते हैं ६२ जिसकी चाल खराब हो, उसे अशुभगतिनाम कहते हैं- ६३ उपघातनाम उसे कहते हैं-जिसके उदयसे ऐसे अग हो, जिनसे अपनाही घात हो. ६४ जिसके उदयसे शरीरका अशुभवर्ण (रग) ६५अशुभगध(वास) ६६अशुभ रस, ६७ अशुभस्पर्श हो, उसे अशुभवर्ण नामादि कहते हैं. ६८जिस शरीरके हाड, और बेठन (वेष्टन) तो वज्रके हो परंतु कीलें, वज्रकी न हो, उसे ऋपभ नाराच सघयण कहते हैं. ६९ जिस शरीरकी हड्डियोंमें- बेठन और कीलें लगी होती हैं उसे नाराच सघयण कहते हैं ७० जिसशरीरकी आधी हड्डियोंमें -बेठन और कीलें लगी होती है उसे नाराच सघयण कहते है ७१ जिस शरीरकी आधी हड्डियोंमें कीलें होती है और आधीमें नहीं होती, उसे अर्ध नाराच सघयण कहते है ७२ जिस शरीरकी हड्डियोंकी सधिया कीलोंसे मिली होती है उसे कीलक (कीलिका) संघयण कहते है ७३ जिस शरीरकी जुदी जुदी हड्डिया नसोंसे बधी होती है उसे छेवट [असप्रात्याश्रृपाटिका] संघयण कहते हैं. ७४-२-न्यग्रोध परिमडल सस्थानवालेका शरीर वडके पेडकी तरह

१ हाडोंके समूहको सघयण (सहनन) कहते हैं हाडों, वधनों और कीलियोंके परिवर्तनसे सहननके छे भेद होते है

२ शरीरकी आकृति—सूरत—शिकलको सस्थान कहते है

रिमंडल सस्थान (संठाण) ७५ स्वाति संस्थान [सादि संस्थान) ७६ वामन सस्थान ७७ कुब्ज संस्थान ७८ हुंडक सस्थान ७९ दानांतराय ८० लाभांतराय ८१ भोगां तराय ८२ उपभोगांतराय ८३ वीर्यान्तराय ये पापतत्त्वके भेद हुए

---

५ आश्रवतत्त्व

आश्रव तत्त्व किसका कहना ? जिन कारणोंसे कर्मोंका आ-

होता है याने नाभिके नीचेका भाग छोटा और ऊपरका भाग बडा होता है ७५ स्वाति सस्थानवालेका शरीर नीचेसे बडा ऊपर से छोटा होता है ७६ कुब्ज संस्थान वालेका शरीर कुबडा होता है ७७ वामन सस्थान वालेका शरीर ठींगणा होता है ७८ हुंडक सस्थान वालेका शरीर एकसा नहीं होता याने शरीरका कोई हिस्सा छोटा तो कोई बडा, इस प्रकार अशोभनीय होता है ७९ दानांतराय उसे कहते है–जिसके उदयसे और दान न दे सके ८० लाभांतराय उसे कहते है जिसके उदयसे लाभ न होसके ८१ भोगांतराय उसे कहते है जिसके उदयसे अच्छे पदार्थोंको भोग न सके ८२ उप भोगांतराय उसे कहते है–जिसके उदयसे बारबार भोगमें आनेवाले (जवर कपडे वगैरह चीजोंको) पदार्थोंका भोग न सके ८३ वीर्यांतराय उसे कहते है जिसके उदयसे शरीर निर्बली हो, सामर्थ्य और ताकत न हो, अथवा हो, तो उसको प्रकाशित न करसके

१ जीवोंको मारनेसे, चोरी करनेसे, मैथुन सेवनसे, परिग्रह रख नेसे, पांचों इन्द्रियों, चारों कषायों, तीनों योगोंका वश न करनेसे, आश्रव होता है

त्माके साथ सम्बन्ध होता है उसे आश्रव कहते है। याने "आश्रूयते कर्म अनेन इत्याश्रवः" जिससे कर्मोंका आना हो —जैसे किसी नावमें कोई छेद हो जाय और उस छेदमेंसे-उस नावमें पानी आने लगे, इसी प्रकार व्रत और प्रत्याख्यानके न होनेसे, विषय कषायोंके सेवनसे आत्मारूप नदीमें, इन्द्रियरूप छेदसे कर्मरूप पानी आने लगे उसका नाम "आश्रव" है.

आश्रवके जघन्य वीस भेद है—वह पचीस बोलमें पहिले बतलाये गये हैं—और उत्कृष्ट ४२ भेद हैः–१ प्राणातिपात आश्रव, २ मृषावाद आश्रव, ३ अदत्तादान आश्रव, ४ मैथुन आश्रव, ५ परिग्रह आश्रव, ६ श्रोतेन्द्रिय आश्रव, ७ चक्षु इन्द्रिय आश्रव. ८ घ्राणेन्द्रिय आश्रव, ९ रसेन्द्रिय आश्रव, १० स्पर्शेंद्रिय आश्रव, ११ क्रोध आश्रव, १२ मान आश्रव, १३

---

१ कायासे जीवादि मारनेको 'काइया क्रिया' कहते है. २ शस्त्रादिकोंसे जीवोंका घात करनेको 'अधिकरणिया' क्रिया कहते है ३ जीव अजीवके ऊपर द्वेष रखनेसे पाउसिया क्रिया लगती है. ४ दूसरोंको परिताप उपजावे तो, परितावणिया क्रिया होती है. ५ जीव हिंसाको पाणाइवाइया क्रिया कहते है. ५ आरंभादि पापोंके करनेसे आरंभिया क्रिया लगती है. ७ धनधान्यादि परिग्रह रखनेसे तथा उनपर ममत्वभाव रहनेसे परिग्रहक्रिया होती है. ८ किसीके साथ छल कपट दंभ करनेसे, ठगनेसे-मायावत्तिया क्रिया लगती है, ९ जिनेन्द्र देवके वचनोंको न माननेसे-विपरीतप्ररूपना करनेसे मिथ्यादंसणवत्तिया क्रिया लगती है. १० किसी प्रकारके व्रत, प्रत्याख्यान नहीं करनेसे 'अपच्चक्खाणिया क्रिया' लगती हैं.

माया आश्रव, १४ लोभ आश्रव, १५ मन आश्रव, १६ वचन आश्रव, १७ काय आश्रव व १७ और २५ क्रिया–१ काइया २ अधिकरणिया, ३ पाउसिया, ४ परितावणिया, ५ पाणाइवाइया, ६ आरंभिया, ७ परिग्गहिया, ८ मायावत्तिया, ९ मिच्छादंसणवत्तिया, १० अपच्चक्खाणिया, ११ दिट्ठिया, १२ पुट्ठिया, १३ पाडुच्चिया, १४ सामंतोवणिया, १५ निसत्थिया १६ साहत्थिया, १७ आणवणिया, १८ विदारणिया,

---

११ कौतुहल भावोंसे नाटक, ख्याल, तमाशा आदि देखनेसे दिट्ठिया क्रिया लगती है १२ राग भावोंसे स्त्री, पुरुष, जेवर, कपड़ा गाय बैल, आदि पदार्थोंको स्पर्श करनेसे पुट्ठिया क्रिया लगती है १३ किसीको धनाढ्य परिवार सम्पन्न, सुखी, देखकर, उसका बुरा चिंतन करें तो पाडुच्चिया क्रिया लगती है १४ अपनी सम्पदा देखकर मान करें, तथा अपनी सम्पदाकी प्रशंसा सुनकर हर्षित होवें या दूध, दही घी, तेल, प्रमुखके बरतनोंको उघाडे रक्खे तो सामंतोवणिया क्रिया लगती है १५ राजादिकोंके आदेशसे, सग्राम करें ताल, सर, गढ, कोट वगैरह बनावें, कुवा, बावडी, खुदावें वा निसत्थिया क्रिया लगती है १६ जाति कुल अभिमानके वश होकर जीव हिंसा करें तथा दूसरोंसे करावें, तथा धोबी, किसान आदिकी प्रशंसा करें तो साहत्थिया क्रिया लगती है १७ दूसरोंको आरंभ समारंभ करनेकी आज्ञा दे तो आणवणिया क्रिया लगती है १८ जीव, अजीवका वध करनेसे विदारणिया क्रिया लगती है १९ दूसरोंके भोगोंकी इच्छा करें, मनमें कामभोगोंकी तिमाभिलाषा रक्खें तथा वस्त्रादि महोपकरण अयत्नासे उठावें, और अयत्नासे रक्खें तो

१९ अणाभोगक्रिया, २० अणवकंखवत्तिया, २१ अणउपयोगक्रिया, २२ सामुदाणिया, २३ पेजवत्तिया, २४ दोसवत्तिया, २५ इरियावहिया क्रिया, ये आश्रवके ४२ भेद हुए.

---

६ संवरतत्त्व.

संवर तत्त्व किसको कहना? संवर कहते है रोकनेको, याने आत्मारूप नदीमें इन्द्रियरूप छेदसे जो कर्मरूप पानी आता है उसे जो रोकदे, उसका नाम संवर है.

संवरके जघन्य २० भेद, उत्कृष्ट ५७ भेद है. जघन्य २० भेद पच्चीस बोलमें आचुके है। यहाँ उत्कृष्ट ५७ भेदोंका विस्तार कहते है:—

पांच समिति—१ इरिया समिति, २ भाषासमिति, ३ एषणासमिति, ४ आयाणभंड़मतनिखेवणा समिति, ५ उच्चारपासवण खेल जल संघाण पारिठावणिया समिति ॥ (तीन गुप्ति) ६

अणाभोगक्रिया लगती हैं. २० ससार विरुद्ध और धर्म विरुद्ध कोई कार्य करनेसे अणवकंखबत्तिया क्रिया लगती है. २१ उपयोगरहित कोई काम करनेसे अणउपयोग क्रिया लगती है २२ मेळो, तमाशा, आदि देखा जाता है, तथा बहुत लोक मिलकर जो कार्य करते है, वह सामुदाणिया क्रिया हैं. २३ राग, प्रीति, मोहके वशसे पेजवत्तिया क्रिया लगती हैं. २४ क्रोधके वशसे दोषवत्तिया क्रिया लगती हैं. २५ चलते हलते इरिया वहिया क्रिया लगती हैं,

---

१ कोई आदान समिति. २ कोई उत्सर्ग समिति कहते हैं.

मन गुप्ति, ७ वचन गुप्ति, ८ काय गुप्ति ॥ (बाईस परिषह) ९ क्षुधापरिषह, १० तृषा परिषह, ११ शीतपरिषह १२ उष्ण परिषह, १३ दंश मशक परिषह, १४ अचेल परिषह, १५ अरति परिषह, १६ स्त्री परिषह, १७ चर्या परिषह १८ आसन

१ देखकर चलनेको 'इर्या समिति' कहते हैं निरवद्य [पाप रहित] मित, प्रिय, सत्य, वचन बोलनेको 'भाषासमिति' कहते हैं ३ शास्त्रमर्यादायुक्त निर्दोष आहार वस्त्र पात्र, आदि लेनेको 'एषणा समिति' कहते हैं ४ प्रत्येक वस्तु यत्नासे उठाने रखनेको 'आयाणभंडमत्त निक्खेवणा समिति' कहते हैं ५ डालनेयोग्य वस्तुको यत्नासे डालनेको 'उच्चार पासवण खेल जल्ल सिंघाण पारिठावणिया समिति' कहते हैं ६ मन वश करनेसे 'मन गुप्ति' होती है ७ वचन वश करनेसे 'वचन गुप्ति' होती है ८ काय [शरीर] वश करनेसे 'काय गुप्ति' होती है ९ भूखके सहन करनेको क्षुधा परिषह कहते हैं १० प्यासके सहन करनेको तृषापरिषह कहते हैं ११ सर्दीका दुःख सहन करनेको शीतपरिषह कहते हैं १२ गर्मीका दुःख सहन करनेको उष्ण परिषह कहते हैं १३ डांस, मच्छर बिच्छू वगैरह जानवरोंके काटनेको दंश मशक परिषह कहते हैं १४ अल्प वस्त्रोंसे निर्वाह करनेको अचेल परिषह कहते हैं १५ अनिष्ट वस्तुपरभी द्वेष नहीं करनेको अरति परिषह कहते हैं १६ ब्रह्मचर्य नष्ट भ्रष्ट करनेके लिये स्त्रियोंके द्वारा मनको उपद्रव होनेपरभी विकार नहीं करना मन परिणामोंको चलने नहीं देना स्त्रीपरिषह है १७ चलते समय पैरमें कांटे घास कंकर चुभ जानेका दुःख

१ कोई कोई 'परिषह' का 'परीषह' लिखते हैं

परिषह, १९ शय्यापरिषह, २० आक्रोश परिषह, २१ वध परिषह, २२ याचना परिषह, २३ अलाभपरिषह, २४ रोग परिषह, २५ तृणस्पर्श परिषह, २६ मळ परिषह, सत्कार पुरस्कार परिषह, २८ प्रज्ञा परिषह, २९ अज्ञान परिषह, ३०

सहन करना तथा पैदल चलना चर्यापरिषह हैं. १८ एकही आसन पर बैठे रहनेका दुःख सहन करना, आसन परिषह हैं १९ ककरीली जमीन अथवा पत्थरपर सोनेका दुःख सहन करना शय्यापरिषह होता है २० किसी दुष्ट पुरुषके गाली वगैरह देनेपरभी क्रोध न करके क्षमा धारण करना आक्रोश परिषह हैं २१ किसी दुष्ट पुरुषके द्वारा मारे पीटे जानेपरभी क्रोध और क्लेश नहीं करना वध परिषह हैं २२ मागकर लाना-भिक्षा करना-गौचरी लाना-मागना-याचना परिषह है २३ बिमारीका दुःख सहन करना रोग परिषह हैं. २४ आवश्यतानुसार कोई वस्तु न मिलनेपर क्लेश न करना अलाभ परिषह हैं. २५ शरीरमें काच, सुई, काटे वगैरहके चुभजानेका दुःख सहन करना तृणस्पर्श परिषह है. २६ शरीरमें पसीना आजाने, वस्त्रोंमें धूल मिट्टी लगजानेका दुःख सहन करना और न्हाना धोना नहीं करना मळ परिषह हैं. २७ किसीके आदर सत्कार अथवा विनय प्रणाम वगैरह न करनेपर बुरा न मानना; सत्कार पुरस्कार परिषह हैं. २८ अधिक विद्वान् होनेपरभी मान न करना प्रज्ञा परिषह हैं. २९ मिहनत करनेपरभी [पढनेपरभी] ज्ञान न आनेका दुःख सहन करना-अज्ञान परिषह है ३० केवळी तीर्थंकर कथित—सूक्ष्म बातें समझमें न आनेपरभी अपनी श्रद्धाको दूषित न करना दर्शन परिषह हैं.

दर्शन परिषह * — — — —

[दश प्रकारका यति धर्म]

१ ३१ 'खंती' (क्रोध न करना) ३२ 'मुत्ति' (लोभन करना) ३३ 'अज्जवे' (कपट न करना) ३४ मद्दवे (मान न करना) ३५ 'लाघवे अथवा शौचे' (केवलीक वचनोंकी, आज्ञाओंकी चोरी न करना तथा अपने अंत करणको शुद्ध रखना) ३६ 'सच्च' (सच बोलना) ३८ 'संयमे' (१७ प्रका संयम पालन करना) ३८ 'तवे' (१२ प्रकारका तप करना या मनको वश करना) ३६ 'आकिंचन्न' (समस्त परिग्रहका त्याग करना—अथवा ममत्वभाव रहित होना) ४० बमचरवास" (मैथुनका त्याग करना)

(बारह भावना)

४१ अनित्य भावना—ऐसा विचार करनाकि संसारकी तमाम चीजें नाश हो जानेवाली है, कोईभी नित्य नहीं है

४२—अशरण भावना—ऐसा विचार करना कि जगतमें कोइ का शरण नहीं है और मरणसे बचानेवालाभी कोइ नहीं है

४३ संसार भावना—ऐसा चिन्तवन करना कि यह ससार असार है, इसमें जरासी सुख नहीं है

४४एकत्व भावना—ऐसा विचार करना कि—अपने अच्छे

* मुनिलाग कर्मोंकी निर्जरा और कायक्लेश करनेके लिए समता भावोंसे जो स्वयं दु ख सहन करते है उन्हें परिषह (परिषह शब्दसे परिषह सहन समझना चाहिए) कहते हैं

बुरे कर्मोंके फलको यह जीव अकेलाही भोगता है, कोई सगा साथी नहीं बँटा सकता.

४५ अन्यत्व भावना—ऐसा विचार करना कि पुत्र, स्त्री वगैरह संसारकी कोईभी वस्तु अपनी नही है,

४६ अशुचि भावना—ऐसा विचार करना कि-यह देह अपवित्र और घिनावनी है, इससे कैसे प्रीति करना चाहिए?

४७ आश्रव भावना—ऐसा चितवन करना कि-मन, वचन कायके हलन चलनसे कर्मोंका आश्रव होता है, सो बहुत दुखदाई है, इससे बचना चाहिए।

४८ संवर भावना—ऐसा विचार करना कि—संवरसे यह जीव संसार समुद्रसे पार हो सकता है इस लिए संवरके कारणोंको ग्रहण करना चाहिए.

४९ निर्जरा भावना—ऐसा विचार करना कि—कर्मोंका कुछ दूर होना निर्जरा है, इस लिए इसके कारणोंको जानकर कर्मोंको दूर करना चाहिए,

५० लोकभावना—लोकके स्वरूपका विचार करना कि—कितना बडा है, उसमे कौन २ जगह है, और किस किस जगह क्या क्या रचना है, और उससे संसार परिभ्रमणकी हालत मालूम करना.

५१ बोधि दुर्लभ भावना—[बोध भावना]-ऐसा विचार करना कि-यथा प्रवृत्तिकरण या अकाम निर्जरासे, मनुष्यभव, उत्तमकुल, दीर्घायुष्य, शरीर निरोग, धर्मश्रवणादि योग वगैरह वगैरह बडी कठिनतासे प्राप्त हुए है, इन्हें पाकर बेमतलब न

खोना चाहिए किन्तु रत्नत्रय [सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान सम्यग् चारित्र] का धारण करना चाहिए ।

५२ धर्मभावना—धर्मका स्वरूप चिन्तन करना कि इसीसे इस लोक और परलोकके सब तरहके सुख मिल सकते हैं

[पांच प्रकारका चारित्र]

५३—सामायिक चारित्र ५४ छेदोपस्थापन य चारित्र ५५ परिहार विशुद्धि चारित्र ५६ सूक्ष्म सांपराय चारित्र ५७ यथाख्यात चारित्र

१–सब जीवोंमें समतामाव रखना रागद्वेषरहित होना-सुख दुःखमें समान रहना शुभ अशुभ विकल्पोंका त्याग करना, जिसमें ज्ञान दर्शन-चारित्रका पूर्ण लाभ हो, जिससे-सावद्य कर्मोंका त्याग हो जाय, उसका नाम सामायिक चारित्र है

२ पूर्वोक्त-सब विरति सामायिक चारित्रकाही—छेदादि विशेष प्रकारसे विशुद्ध किया जाता है तथा जो नवदीक्षित साधुको कुछ समयबाद दशवैकालिकादि अध्ययन पढ़ाकर पंच महाव्रत दिये जाते है तथा व्रतादिमें भंग पड़नेपर प्रायश्चित वगैरह लेकर सावध न होना-पड़ता है-यह छेदोपस्थापनीय चारित्र है

३ रागद्वेषादि विकल्पोंका त्यागकर तपादियोगसे अधिकताके साथ आत्मविशुद्धि करना परिहार विशुद्धि चारित्र है

४ अपनी आत्माको कषायसे रहित करते करते उपशमलाभ

कषाय नाममात्रको रहजाय उसको सूक्ष्म सांपराय कहते हैं.

५ सर्वथा कषाय रहित-जैसा निष्कंप आत्माका शुद्ध स्वभाव है वैसा होना यथाख्यात चारित्र है.

५ समिति, ३ गुप्ति, २२ परिषह, १० यतिधर्म, १२ भावना, ५ चारित्र, सर्व मिलकर संवरके ५७ भेद पूरे हुए.

---

७ निर्जरातत्त्व.

निर्जरा तत्त्व किसको कहना? जिससे कर्मोंका खिरना-झडना हो, याने जिससे कर्मोंका थोडा थोडा क्षय होता जाय -उसे निर्जरा कहते हैं. जैसे किसी नांवमें पानी भरजाय-और उसे थोड़ा थोडा कर बाहर फैंकाजाय-इसी प्रकार आत्माके पीछे जो कर्म लगे हुए हैं उनका थोडा थोडा क्षय होना-निर्जरा है. इसकेभी दो भेद हैं. (१) द्रव्य निर्जरा (२) भाव निर्जरा तथा (१) अकाम निर्जरा, २ सकाम निर्जरा.

१ आत्माके जिन भावोंसे कर्म अपना फल देकर नष्ट होता है-वह भाव निर्जरा है. २ और समय पाकर तपसे कर्मका नाश होना-द्रव्यनिर्जरा है.

१ इच्छाके विना जो कष्ट सहन किया जाता है उसे अकाम निर्जरा कहते हैं.

२ अपनी इच्छासे जो कष्ट सहन किया जाता है उसे सकाम निर्जरा कहते हैं.

निर्जरातत्वके जघन्य उत्कृष्ठ बारह भेद हैं

१ अनसन २ ऊनादरी, ३ वृत्तिसंक्षेप [भिक्षाचरी] ४ रस परित्याग, ५ कायक्लेश, ६ प्रतिसंलीनता, ७ प्रायश्चित्त ८ विनय ९ वैयावच्च, १० सज्झाय, ११ ध्यान, १२ काउसग्ग्

१ तीनों तथा चारों आहारका त्याग करनेको 'अनसन कहते हैं इसके दो भेद —१ इत्तरीय, और २अवकाहिय, इत रीय तपके ६ भेद —१ श्रेणी तप, २ प्रतर तप, ३ घन तप, ४ वर्ग तप, ५ वर्गावर्ग तप, ६ प्रकीर्ण तप

(१) एक उपवाससे लेकर छह महीने तककी तपस्याको श्रेणीतप कहते हैं

(२) प्रतर तप उन्हें कहते हैं–जो इस रीतिसे तप किया जाता है–उपवास, बेला, तेला, चौला, फिर बेला, तेला, चौला, फिर उपवास तेला, चौला फिर उपवास, बेला फिरचौला, उपवास, बेला तेला इस प्रकार सोलह काठोंमें आनेवाले तपको प्रतरतप कहते हैं यह तप एक महीना और छब्बीस दिनमें पूरा होता है

३ घन तप —उपरोक्त मुताबिक ६४ काठोंमें आनेवाले अंकोंकी तपस्याको कहते हैं यह तप सात महीनों और चौदह दिनोंमें पूरा होता है

४ वर्ग तप– ऊपरके मुताबिक ४०९६ काठोंमें आनेवाले अंकोंकी तपस्याको कहते हैं यह तप ३० वर्ष ९ महीनें, २६ दिनोंमें पूरा होता है

५ वर्गावर्ग तप–१ करोड, ६७ लाख, ७७ हजार, २१६ कोठोंमें आनेवाले अंकोंकी तपस्याको कहते है. यह तप १ लाख, ६३ हजार, १११ वर्ष, ९ महीना, २६ दिनोंमें पूरा होता है

६ प्रकीर्ण तप–अनेक प्रकारसे किया जाता है. इसके कुछ भेद ये है:–एकावली, रत्नावली, कनकावली, मुक्तावलि, लघु सिंह क्रीडित, बृहत्‌सिंह क्रीडित खुड्डाग सर्वतो भद्र, महाभद्र महासर्वतोभद्र, जवमध्यपडिमा, वज्रमध्यपडिमा, गुणरत्नावली कर्म चूर, आंबिलवर्धमान इत्यादि इत्यादि

१ एकावली तप इस रीतिसे किया जाता है:–प्रथम-उपवास करें, फिर बेला, करे, तेला करें, इसके बाद बीचमें, फुटकर आठ उपवास करे, फिर उपवाससे लेकर १६ तक चढावें, फिर फुटकर चौंतीस उपवास करे. फिर सोलहसे लेकर उपवासतक पीछा उतारे, फिर बीचमें फुटकर आठ उपवास करें. बादमें ३–२–१ करें. इस तरह चार वक्त तप करें पहली वारमें (पारणाके दिन) जैसा मिले वैसा आहार करे, दूसरी वारमें- ऊपरसे विगयको त्यागे. याने विगय न ले तीसरी वारमे लूखा खावें चौथी वारमें–आंबिल करें

इस तपके करनेमें–चार वर्ष, आठमास, आठ दिन लगते है. ऐसेही आगे ९ नवमें तप तक की जो जो तपस्या हैं वेभी चार चार वक्तही करना, समझना. परंतु जहां जहा जो जो फर्क है वह दिखाते हैं.

२ रत्नावली तपमें–पहलेके एकावली तपमें जहां आठ आठ

और चौतीस उपवास हैं यहां–आठ आठ और चौतीस चौतीस बेले समझने चाहिए इस तपके करनेमें पांच वर्ष, दो महीना, अठाईस दिन लगते हैं शेष रीति एकावलीकी तरह जानना चाहिए

३ कनकावली तप–रत्नावली तपमें जहां–आठ आठ और चौतीस चौतीस बेल हैं–यहां आठ आठ तथा चौतीस चौतीस तेले जानने, इसके करनेमें–पांच वर्ष, नव मास अठारह दिन, लगते हैं शेषरीति–रत्नावलीकी तरह जानना

४ मुक्तावली तप–एकसे लेकर १६ तक चढ़ाना और उतारना, और चढ़ाना और उतारना इस प्रकारकरनेसे मुक्तावली तप होता है इसके करनेमें ३ वर्ष, १० महीने लगते हैं

५ लघु सिंह क्रीडित तप–इस तरह करें–पहले–१ फिर २ फिर १, फिर ३ फिर २, फिर ४ फिर३–५ ४ ६ ५–७ ६ ८ ७–९ –८ ९–७–८ ६ ७–५ ६ ४ ५ ३ ४ २ ३ १ २ १ इस प्रकार क्रम क्रमसे चार वक्त उपवासोंके थोक करें इस तपके करनेमें–दो वर्ष, अठावीस दिन लगते हैं–

६ वृहत सिंह क्रीडित तप–इस तरह किया जाता है १ २ १ ३ २ ४ ३ ५ ४ ६ ५ ७ ६ ८ ७–९ ८ १० ९ ११ १० १२ ११ १३ १२ १४–१३ १५ १४–१६ १५ १६ १४ १५ १३ १४ १ १३ ११ १२ १० ११ ९ १० ८ ९–७ ८–६ ७ ५ ६ ४ ५ ३–४ २ ३ १ २ १ इस प्रकार चार दफह उपवासोंके थोक करनेका महत्सिंह क्रीडित तप करते हैं इसके करनेमें ६ वर्ष, २ महीना, १२ दिन लगते हैं

७ खुड़ाग सर्वतोभद्र तप इस तरह किया जाता है:—१-२-३-४-५-३-४-५-१-२ ५-१-२-३ ४-२-३-४-५-१-४-५-१-२-३ इस क्रमसे चार दफह तप करनेको खुडाग सर्वतोभद्र तप कहते है. इसके करनेमें १ वर्ष, १ महीना, १० दिन लगते है.

८ महाभद्र तप इस प्रकार किया जाता है:—१ ६ ७-८ ९ ७ ८ ९ ५ ६ ९-५-६ ७-८ ६-७-८ ९ ५-८-९-५-६ ७ इस क्रमसे चार दफह करनेके तपका नाम महाभद्र तप है इस तपके करनेमे २ वर्ष, २ मास २० रोज लगते है.

९ महा सर्वतोभद्र तप इस प्रकार किया-जाता है:—१-२-३,४-५-६ ७ ४-५-६-७-१-२-३-७ १-२-३-४ ५ ६, ३ ४-५-६,७-१-२-६ ७-१-२-३-४-५ २ ३ ४ ५ ६ ७ १,५-६-७-१-२-३ ४ इस क्रमसे चार दफह तपके करने का नाम महा सर्वतो भद्र तप है. इसके करनेमें—२—वर्ष, ८—मास, १०, रोज लगते है

१०—जवमध्यपडिमा तप इस प्रकार करनेमें आता है:—प्रथम शुदि एकमके रोज एक कॅवल (ग्रास) आहार करें, दूजके रोज दो कॅवल, तीजके रोज तीन कॅवल, यों बढ़ाते बढ़ाते पूर्णिमाके रोज पन्द्रह कॅवल आहार करें फिर घटाना शुरू करें—सो—वदि एकमके रोज १४ कॅवल आहार करें, दूजके रोज १३ कॅवल, तीजके रोज १२ कवल, यों घटाते घटाते वदि १४ के रोज एक कॅवल आहार करें और अमावासके रोज उपवास करें.

इस तपके करनेमें एक महीना लगता है,

११— वज्रमध्य पड़िमा तप इस प्रकार किया जाता है:—

प्रथम वदि एकमके रोज पन्द्रह कँवल आहार करे दूसरे रोज १४ कँवल, एसे घटाते घटाते अमावासके रोज एक कँवल पर आवे, फिर बढ़ाना शुरू करे, सो शुदि एकमके रोज दो कँवल आहार करे दूसरे रोज तीन कँवल, तीसरे रोज चार कँवल यों बढ़ाते बढ़ाते चौदशके रोज १५-कँवल आहार करे पूनमके रोज उपवास करे इस प्रकारके तपका नाम 'वज्रमध्य पडिमा' है इसके करनेमेंभी एक महीना लगता है

१२ गुणरत्नावली तपके करनेकी विधि —नीचे लिखे अनुसार चौविहार तपस्या करे, दिनमें सूर्यकी आतापना ले उत्कटासन (उकडासन)से बैठे, रातमें वीरासनसे रहे, वा नग्न रहे सोलह महीनोंतक यह विधि करे जिसमें पहिले महीनेमें-१५ उपवास करे दूसरे महीनेमें-१०-बेले करे तीसरे महीनेमें-आठ तेले करे चौथे महीनेमें-छे चौले करे पांचवे महीनेमें पांच पचौले करे, छट्ठे महीनेमें-छह छहके चार थोक करे, सातवें महीनेमें सात सातके तीन थोक करे आठवें महीनेमें-आठ आठके तीन थोक करे नववें महीनेमें नव नवके तीन थोक करे दसवें महीनेमें-दस दसके तीन थोक करे, ग्यारहवें महीनेमें-ग्यारह ग्यारहके तीन थोक करे, बारहवें महीनेमें-बारह बारहके दो थोक करे तेरहवें महीनेमें तेरह तेरहके दो

१— लगातार दो उपवास करनेको बेला कहते है २ तीन उपवास करनेको तेला कहते है, ३ चार उपवास करनेको चौला कहते है ४ पांच उपवास करनेको पचौला कहते है ५ चार थोक चार बार करनेको कहते है

थोक करें, चौदहवें महीनेमें—चौदह चौदहके दो थोक करें, पंद्रहवे महीनेमें—पन्द्रह पन्द्रहके दो थोक करें, सोलहवें महीनेमें सोलह सोलहके दो थोक करें, इस प्रकारके तपका नाम गुण रत्नावली है

१३ कर्मचूर तप—इस तरह करें-पहले एक आठाई करे फिर तेरह पँचोलें, सतरह चौलें, तेईस तेलें, बयालीस बेलें. और सौ उपवास करें. इसको कर्मचूर तप कहते हैं इसके कर नेमें एक वर्ष, सात मास, वीस रोज लगते है

१४—आंबिल वर्द्धमान तप—इस तरह होता है:—एक आंबिल और एक उपवास, दो आंबिल और एक उपवास, तीन आंबिल और एक उपवास, यावत् सौ आंबिल और एक उपवास इस तरहके तपका "आंबिल वर्धमान" नाम है. यह चौदह वर्ष तीन महीना और वीस दिनमें पूरा होता है.

अवकाहिय (तप) के ६ भेद—(१) 'भत्तपच्चक्खाण—यावज्जीवपर्यन्त—चारों आहार छोड देनेको कहते है, (२) 'पादोगमन' आहार और शरीर दोनों छोड़देनेको और हलन चलन क्रिया नहीं करनको कहते है. (३) 'परिकम्म'—भक्त प्रत्याख्यान वाला प्रतिक्रमण करें, उसे कहते है (४) 'अप रिकम्म' पादोगमनवाला प्रतिक्रमण नहीं करें, उसे कहते है.(५) 'निहारिम'—गांवमें संथारा करने और उनके शरीरका दहन होनेको कहते है.

(६) 'अनिहारिम'—गॉवके बाहिर अटवियों, पहाडों आदिमें संथारा किया जाता है और फिर उनके शरीरका दहन नहीं होता—उसे कहते है.

(२) उणोदरी तपके दो भेद—द्रव्य उणोदरी २ भाव उणोदरी

द्रव्य उणोदरीके ३ भेद—१ आहार उणोदरी २ वस्त्र उणोदरी, ३ पात्र उणोदरी,

१, २, ३—आहार, वस्त्र, पात्र, आदि उपकरणोंके कम करनेको आहार-वस्त्र-पात्र उपकरण उणोदरी कहते हैं

भाव उणोदरीके ८ भेद —१ क्रोध उणोदरी, २ मान उणोदरी, ३ माया उणोदरी, ४ लोभ उणोदरी ५ राग उणोदरी, ६ द्वेष उणोदरी, ७ क्लेश उणोदरी, ८ अल्प वचन उणोदरी

१-२-३-४-५-६-७-क्रोध मान, माया, लोभ राग, द्वेष, और क्लेश इन भावोंका घटानेको क्रमसे क्रोधादि उणोदरी कहते हैं ८ अल्पभाषी होनेको, अल्प वचन उणोदरी कहते हैं

३ भिक्षाचरीके चार भेद —१ द्रव्य भिक्षाचरी, २ क्षेत्र भिक्षाचरी, ३ काल भिक्षाचरी, ४ भाव भिक्षाचरी

द्रव्य भिक्षाचरीके २६ भेद —१ उक्खित चरिये'—ऐसा अभिग्रह करें कि—बरतनमेंसे निकालकर देगा तो लूंगा २—निक्खित्त चरिये'—ऐसा अभिग्रह करें कि—बरतनमें डालता हुआ देगा तो लूंगा ३ 'उक्खित निक्खित चरिये' ऐसा अभिग्रह करें कि—बरतनमें निकाल, पीछे डालता हुआ देगा तो लूंगा ४ 'निक्खित उक्खित चरिये'—ऐसा अभिग्रह करें कि—बरतनमें डाल पीछे निकालता हुआ देगा तो लूंगा ५—'वट्टिज्जमाण चरिये' ऐसा अभिग्रह करें कि—दूसरेका पुरसता

हुआ दे तो लूंगा. ६ 'साहरिज्जमाण चरिये' ऐसा अभिग्रह करें कि दूसरेको पुरसनेबाद जो बचाहुआ आहार मिले तो लूंगा. ७- 'अवणिज्झमाण चरिये '-ऐसा अभिग्रह धारण करें कि-दूसरेके लिये ले जाता हुआ आहार मिले तो लूंगा. ८ 'उवणिज्झमाण चरिये ऐसा अभिग्रह करें कि-दूसरेको देनेबाद बचाहुआ और वापिस लायाहुआ आहार मिले तो लूं. ९-' उवणिज्झ माण चरिये -ऐसा अभिग्रह करे कि-पहिले दूसरेको दे और फिर उनसे वापिस ले. मुझे दे तो लूं. १०-'अवणिज्झ-उवणिज्झमाण चरिये '-ऐसा अभिग्रह करे कि-दूसरेके पाससे लेकर दे तो लूं. ११-" संसटमाण चरिए " ऐसा अभिग्रह करें कि-भरे हुए हाथोंसे दे तो लूं १२ 'असंसठ चरिये '-ऐसा अभिग्रह करे कि-बिन भरे हाथोंसे दे तो लूं. १३ 'तज्जाए संसठ चरिए '-ऐसा अभिग्रह करे कि-जिस वस्तुसे हाथ भरे हुए हो अगर वही वस्तु दे तो लूं. १४- अन्नाए चरिये' ऐसा अभिग्रह करे कि-जहां मेरी पहचान न हो वहांसे मिले तो लूं, १५ ' मोण चरिये '-ऐसा अभिग्रह करे कि-कोई चुपचाप (मौन रखकर) दे तो लूं. १६-' दिटलाभए'-ऐसा अभिग्रह करे कि-देनेकी वस्तु बताकर दे तो लूं. १७ 'अदिठलाभए'-ऐसा अभिग्रह करे कि-बिना दिखाये दे तो लूं. १८ ' पुठलाभए '-ऐसा अभिग्रह करे कि-पूछकर वस्तु दे तो लूं. १९ ' अपुठलाभए ' ऐसा अभिग्रह करे कि-बिना पूछे दे तो लूं. २० 'भिखलाभए' -मेरी निन्दा कर दे तो लूं. २१ ' अभिखलाभए '-मेरी स्तुति कर दे तो लूं. २२ ' अन्नागिलाए ' जिसके खानेसे शरीरमें अशाता हो, वैसा आहार दे तो लूं. २३ ' उवणीहिए '-जो

आपत्यानेको बैठा हो और उसमेंसे दे तो लू २४ 'परमित पिंडपातिए' सरस [अच्छा) आहार मिले तो लूं, २५ 'सुद्ध एसणीए' निर्दोष आहार मिले तो लू २६ 'संखादत्तीए' कुडछी तथा अन्य किसी मापके प्रमाणमे आहार लू

क्षेत्र भिक्षाचरीके आठ भेद—१ 'पेटीके समान गौचरी करे याने चारों कोनोंके घरोंसे आहार लें २ 'अर्धपेटीके समान' गौचरी करें [भिक्षा मांगें], याने दो कोनोंके घरोंसे आहार ले ३ 'गोमूत्रकी तरह गौचरी करे, याने एक इधरके घरसे और एक उधरके घरसे आहार लें ४ पतंगियाकी तरह गौचरी करे,-याने खुले खुले [कुन्कर] घरोंसे आहार ले ५ अभ्यतर शंखावर्त गौचरी—पहिले नीचेके घरोंसे और फिर ऊपरके घरोंसे आहार ले ६ 'बाह्य शंखावर्त गौचरी पहिले ऊपरके घरोंसे और फिर नीचेके घरोंसे आहार ले ७ जाते हुए आहार ले परंतु फिर वापिस आते हुए न ले ८ आते हुए आहार ले, परंतु वापिस जाते हुए न ले

काल भिक्षाचरीके चार भेद—१ पहिले प्रहरका लाया हुआ तीसरे प्रहरमें भोगे [खावे], २ दूसरे प्रहरका लाया हुआ, चौथे प्रहरमें भोगे ३ दूसरे प्रहरका लाया हुआ तीसरे प्रहरमें भोगे ४ पहिले प्रहरका लाया हुआ, दूसरे प्रहरमें भोगे

भाव भिक्षाचरीके चार भेद—१ सब वस्तुओंको अलग अलग लावे २ सब वस्तुओंको शामिल कर लावे ३ दिन भरकी पीड़ा न आवे ४ मुंहमें ग्रास (निवाला) न फेरे या प्रमाणसे कम खावे

रस परित्यागके १० भेद.

१ दूध, दही, घी तैल, मीठा इन पांच विगयका त्याग करें. २ ऊपरसे विगय न ले. ३ चावल आदिकोंका उसावण [रांधने-पकानेके बाद जो पानी निकाला जाता है, उसमें रहा हुआ—अन्नका अंश] ही खाकर रह जावे. ४ विना रसका आहार करे ५ पकाया हुआ पुराने धानका आहार करें ६ 'अंत आहार'-उडद चणे प्रमुखके बाकुले खाकर रह जावे. ७ 'पंत आहार' ठण्डा बासी खाकर रहे. ८ "लुह आहार" रूखा [लूखा] आहार करें. ९ "तुच्छ आहार" निःसार शक्तिहीन आहार करे. १९ रूखा, सूखा, निःसार, सार, सब को एक जगह कर [मिलाकर] खावें.

कायक्लेशके १८ भेद.

साधुकी बारह प्रतिमा [पडिमा] धारण करें (वहन करें) :—१ पहिली प्रतिमा. एक महीनेकी, उसमें-एक दात आहार, और एक दात पानीकी ले. २ दूसरी प्रतिमा दो महीनोंकी-उसमें दो दात आहार और दो दात पानीकी ले. ३ तीसरी प्रतिमा तीन महीनोंकी—उसमें तीन दात आहार और तीन दात पानीकी लें. ४ चौथी--चार महीनोंकी उसमें चार दात आहार, और चार दात पानीकी लें. ५ पांचवीं-पांच महीनोंकी-उसमें पांच दात आहार, और पांच दात पानीकी ले. ६ छठी-छह महीनोंकी-इसमें छह दात आहार और छह दात पानीकी लें. ७ सातवीं प्रतिमा सात महीनोंकी उसमें सात दात आहार और सात दात पानीकी लें. आठवी, नववी, और

दशवी प्रतिमामें सात सात दिनोंतक एकान्तर चौविहार उप वास करें ११ ग्यारहवीमें वैसा करें १२ बारहवीमें वैसा करें स्मशानमें कायोत्सर्ग करें १३ कायोत्सर्ग कर खडा रहे १४ अनेक प्रकारके आसन करें १५ केशलोंच करें १६ उग्र विहार करें १७ ठण्ड, घाम सहन करें १८ खाज आदि नहीं खुजावें वगेरह वगेरह

प्रतिसलीनताके चार भेद

१ इंद्रिय प्रतिसलीनता २ कषाय प्रतिसंलीनता, ३ योग प्रतिसंलीनता, ४ विविक्त सयनासण प्रति सलीनता

इन्द्रिय प्रतिसलीनताके पांच भेद—श्रोत्रेन्द्रिय प्रतिसली नता, चक्षु इन्द्रिय प्रति सलीनता घ्राणइन्द्रिय प्रतिसंलीनता रस इन्द्रिय प्रतिसलीनता, स्पर्श इन्द्रिय प्रतिसंलीनता,

२ कषाय प्रतिसलीनताके चार भेद —१ क्रोध कषाय प्रति सलीनता मान कषाय प्रतिसलीनता, माया कषाय प्रति संली नता, लोभ कषाय प्रतिसलीनता

३ योग प्रतिसंलीनताके ३ भेद —मन योग प्रतिसलीनता, वचन योग प्रतिसंलीनता, काय योग प्रतिसंलीनता,

(पांचों इन्द्रियों, चारों कषाय, तीनों योग इनको वश करनेका प्रतिसंलीनता कहते हैं]

१—प्रतिसंलीनताका अर्थ होता है—वश करना, काबूमें रखना या कम करना

२—स्त्री, पशु, नपुंसक रहित स्थानमें रहनेका नाम " विविक्त शयनासन प्रतिसंलीनता " है

४ विविक्त सयणासण प्रतिसलीनताका एकही भेद है.

प्रायश्चित्तके ५० भेद.

१० लिये हुए व्रत प्रत्याख्यानोंमें दश कारणोंसे दोप लगता है:-१ कंदर्प,-याने कामके वश होनेपर. २-प्रमादके वश होनेपर. ३-अनजानपनसे. ४-क्षुधाके वश होनेपर. ५-कोई आपत्ति आजानेपर, ६-संदेह उत्पन्न होनेपर. ७-उन्मादके वश होनेपर. ८-भय होनेपर. ९-द्वेपके वश होनेपर. १०-परीक्षाके निमित्तसे. २०-जो अविनीत -पापात्मक पुरुप होता है-वह आलोयणा दश प्रकारसे करता है. (पापोंका प्रकाश करता है.):—१ स्वयं गुस्सामें [क्रोध में] आकर या दूसरोंको क्रोधमें लाकर आलोयणा करें [अपने दोपों [पापों] को कहे. २-पाहिले दोपोंका प्रायश्चित्त पूछकर [जैसेकि किसीने अमुक पाप किया तो उसका क्या प्रायश्चित्त है ?] फिर आलोयणा करें. ३ दूसरेके देखादेख याने जिस प्रकारसें दूसरेको कहता-देखे वैसा आपही कहने लगे. ४छोटे छोटे दोप कहे वडे न कहे. ५ वडे बड़े दोप कहे, छोटे न कहे. ६-वोलता हुआ गडवड करें. ७-लोकोंको सुनाकर कहें ८-वहुतसे लोगोंके सामने वके. ९-जो प्रायश्चित्तका (दण्डविधिका) जानकार, न हो, उसके आगे कहे. १०-सदोपी (सुननेवालाभी दोपी हो उसके) के आगे कहे.

३० जो इन दश गुणोंका धारक होता है वही आलोचना [आलोयणा] कर सकता है:—१ जो आत्म कल्याणकी भावना वाला हो. २ जो जातिवन्त हो. ३ जो कुलवन्त

हो ४ जो विनयवान् हो ५ जो ज्ञानवान हो ६ जो दर्शनका धारक हो ७–जो चारित्रका धारक हो ८–जो क्षमावान हो ९–जो वैराग्यवान हो १०–जो जितेन्द्रिय हो

[४०) जो इन दशगुणोंका धारक होता है वही प्रायश्चित्त (दण्ड) दे सकता है —१ जो शुद्धाचारी हो वह २ जिसका व्यवहार शुद्ध हो वह ३ प्रायश्चित्त विधिका ज्ञान हो वह ४ शुद्ध श्रद्धावान् हो वह ५ मीठ माड [पक्षपात या लज्जा] न रखनेवाला हो वह ६ शुद्ध करनेका सामर्थ्य रखता हो वह ७ गम्भीरस्वभाव वाला हो वह ८ दोषीके मुहसे दोष कबूल करवा सकता हो वह ९ जो विचक्षण हो वह १० प्रायश्चित लेनेवालेकी शक्तिका ज्ञान हो वह

[५०] दश प्रकारका प्रायश्चित्त होता है:—१ गुरुके आगे पाप प्रकाश देनेसे २ प्रतिक्रमण याने पश्चात्तापयुक्त मिच्छामि दुक्कडं देनेसे ३ आलोचना और मिथ्या दुष्कृत दानोंसे ४ अकल्पनीय वस्तुको दूर करनेसे [परठ आनेसे– छोड़ आनेसे] ५ इरियावही आदि कायोत्सर्ग करनेसे ६ आंबिल उपवास आदि तपके करनेसे ७ बड़ेको [दीक्षामें] छोटा करनेसे ८–दूसरीबार दीक्षा देनेसे ९–उठने बैठने हलने चलने की शक्ति न रहे ऐसा तप करानेसे १०–कमसे कम ६ मास, ज्यादहसे ज्यादह बारह वर्षतक सांप्रदायके बाहिर रखनेसे

---

१ जिनके करनेसे किये हुए पापोंका नाश हो सके, या मारी से कुछ हलका होसके–उसे प्रायश्चित्त कहते है

विनयके मूळ भेद सातः—१ ज्ञान विनय, २ दर्शन विनय ३ चारित्र विनय. ४ मन विनय, ५ वचन विनय, ६ काय विनय. ७ लोक व्यवहार विनय.

१–ज्ञान विनयके ५ भेदः–मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव, केवल, [इन पांचों ज्ञानवालोंका विनय करे] ॥

२–दर्शन विनयके दो भेदः—१ आदर सत्कार विनय, और २–आशातना विनय.

(आशातना विनयके ४५ भेदः—१ अरिहंतकी आशा. तना न करें. २ अरिहंत प्ररूपित धर्मकी आशातना न करे- ३ आचार्यकी आशातना० ४ उपाध्यायकी आशातना० ५ स्थविरकी आशातना० ६ कुलकी आशातना० ७ गणकी आशा० ८ संघकी आशा० ९ क्रियावन्तकी आशा० १० संभोगीकी आशा० ११ मतिज्ञानीकी आशा० १२ श्रुतज्ञानीकी आशा० १३ अवधिज्ञानीकी आशा० १४ मनःपर्यवज्ञानीकी आशा० १५ केवल ज्ञानीकी आशा० इन १५ के गुणानुवाद करें, यह ३० भेद हुए. इन १५ की भक्ति करें. यह सर्व मिलकर ४५ भेद हुए.]

३ चारित्र विनयके ५ भेदः–१ सामायिक, २ छेदोपस्थापनीय, ३ परिहार विशुद्धि, ४ सूक्ष्म सांपराय, ५ यथाख्यात. इन पाचों चारित्र वालोंका विनय करे.

४ मन विनयके दो भेदः—१ पापके कामोंमें मनको न जाने दे, और २ धर्मके कामोंमें मनको लगावें.

५ वचन विनयके दो भेदः–१ पापके कामोंमें मौन रक्खें, और २ धर्मके कामोंमें वोलें.

६ काय विनयके ७ भेद—चलनेमें, खड़ रहनेमें, उठनेमें बैठनेमें, सोनमें, खानेमें, पीनेमें, सब इन्द्रियोंसे यत्नासे काममें

७ लोक व्यवहार विनयके ७ भेद — गुरुकी आज्ञामें चले, २ अपनेसे अधिक गुणवान स्वधर्मीकी आज्ञा माने ३ स्वध र्मीका काम करें, ४ उपकारीका उपकार मान ५ 'सिक्षा'का परित्याग करें ६ सावधानता पूर्वक वर्ताव कर ७ देशाकालों 'नुसार चले

वैयावच्च [वैयावृत्त्य] के १० भेद

१ आचार्य, २ उपाध्याय ३ नवदीक्षित, ४ रोगी, ५ तपस्वी, ६ स्थविर, ७ स्वधर्मी ८ गुरुभाई, ९ सम्प्रदाय १० सघ इन दसोंकी आहार, वस्त्र, पात्र, स्थानादिसे वैयावच्च करें

सज्झायके ५ भेद

१ वायणा, २ पुच्छणा, ३ परियट्टणा ४ अणुपेहा, ५ धर्मकथा

१ सूत्र पढनेका वायणा कहते हैं

२ शंकाओंका निर्णय करनेका पुच्छणा कहते हैं

३ पढेहुए और पूछेहुएको दीर्घ दृष्टिसे विचारना—'अणुपेहा' है

३ पढहुए और पूछहुएको वारवार याद करना—परि यट्टणा है

५ व्याख्यान वाचना, उपदेश देना, लोगोंको तात्त्विक बातें [न्याय युक्तियोंसे] समझाना धर्मकथा है

ध्यानके ४ भेद.

१ आर्त्त ध्यान २ रौद्रध्यान, ३ धर्मध्यान, ४ शुक्लध्यान,

आर्त्तध्यानके चार भेदः-१ मन इच्छित वस्तुओंके संयोगकी इच्छा करना, २ मनके प्रतिकूल वस्तुओंके वियोगकी इच्छा करना. ३ मेरे ज्वरादि रोगोंका नाश हो ऐसी चिन्ता करना ४ मेरे कामभोगोका कभी नाश नहो ऐसी अभिलाषा करना

आर्तध्यानके चार लक्षणः-१ आक्रन्द करना २ शोक करना ३ आँसू गेरना, ४ विलाप करना.

[इन लक्षणोंमेंसे एकभी लक्षण जिसमें मिलता हो उसे आर्तध्यानी जीव कहना चाहिए]

रौद्र ध्यानके चार भेदः—हिंसानन्द जीव हिंसा करनेमें आनन्द मानना] मृषानन्द (झूठ बोलनेमें आनन्द मानना. चौर्यानन्द (चौरी करनेमे आनन्द मानना) कामभोगानन्द (काम भोगोंके सेवनमें आनन्द मानना वा तीव्राभिलाषा रखना)

रौद्र ध्यानके चार लक्षणः—हिंसा, झूठ चौरी, मैथुन, परिग्रह, इन पंचाश्रवोंका एकवार, या वारंवार चिंतन करना, हिंसामय धर्मस्थापना , या अज्ञानतासे अकृत्य काम करना, और मरे वहांतक अपने कियेहुए पापोंका पश्चात्ताप न करना, इन लक्षणोंमेंसे एकभी लक्षण जिसमें पाताहो, उसे रौद्रध्यानी आत्मा समझना चाहिए.]

☞ इन दोनों ध्यानोंको छोडने, दूर करनेसेभी तप होता है,

६ काय विनयके ७ भेद —चलनेमें, खड़ रहनमें, उठनेमें बैठनमें, सानमें, खानेमें, पीनेमें, सब इन्द्रियोंसे यत्नासे कामसे

७ लोक व्यवहार विनयके ७ भेद — गुरुकी आज्ञामें चले, २ अपनेसे अधिक गुणवान स्वधर्मीकी अपेक्षा माने ३ स्वधर्मीका काम करें, ४ उपकारीका उपकार माने ५ 'चिंता'का परित्याग करें ६ सावधानता पूर्वक वर्ताव करें ७ देशकालानुसार चलें

वैयावच्च [वैयावृत्त्य] के १० भेद

१ आचार्य २ उपाध्याय ३ नवदीक्षित, ४ रोगी, ५ तपस्वी, ६ स्थविर, ७ स्वधर्मी, ८ गुरुभाई, ९ सम्प्रदाय १० संघ इन दशोंकी आहार, वस्त्र पात्र, स्थानादिसे वैयावच्च करें

सज्झायके ५ भेद

१ वायणा, २ पुच्छणा ३ परियट्टणा ४ अणुपेहा, ५ धर्मकथा

१ सूत्र पढनेको वायणा कहते हैं

२ शंकाओंका निर्णय करनेको पुच्छणा कहते हैं

३ पढेहुए और पूछेहुएका दीर्घ दृष्टिसे विचारना—'अणुपेहा' है

३ पढेहुए और पूछेहुएको बारबार याद करना—परियट्टणा है

५ व्याख्यान वाचना उपदेश देना, लोगोंको तात्त्विक बातें [न्याय युक्तियोंसे] समझाना धर्मकथा है

ध्यानके ४ भेद.

१ आर्त्त ध्यान, २ रौद्रध्यान, ३ धर्मध्यान, ४ शुक्लध्यान,

आर्त्तध्यानके चार भेदः-१ मन इच्छित वस्तुओंके संयोगकी इच्छा करना, २ मनके प्रतिकूल वस्तुओंके वियोगकी इच्छा करना. ३ मेरे ज्वरादि रोगोंका नाश हो ऐसी चिन्ता करना ४ मेरे कामभोगोंका कभी नाश नहो ऐसी अभिलाषा करना

आर्तध्यानके चार लक्षणः-१ आक्रन्द करना २ शोक करना ३ आँसू गेरना, ४ विलाप करना.

[इन लक्षणोंमेंसे एकभी लक्षण जिसमें मिलता हो उसे आर्तध्यानी जीव कहना चाहिए]

रौद्र ध्यानके चार भेदः—हिंसानन्द जीव हिंसा करनेमें आनन्द मानना] मृषानन्द (झूठ बोलनेमें आनन्द मानना. चौर्यानन्द (चोरी करनेमे आनन्द मानना) कामभोगानन्द (काम भोगोंके सेवनमें आनन्द मानना वा तीव्राभिलाषा रखना)

रौद्र ध्यानके चार लक्षणः—हिंसा, झूठ चोरी, मैथुन, परिग्रह, इन पंचाश्रवोंका एकवार, या वारंवार चिंतन करना, हिंसामय धर्मस्थापना , या अज्ञानतासे अकृत्य काम करना, और मरे वहांतक अपने कियेहुए पापोंका पश्चात्ताप न करना, इन लक्षणोंमेंसे एकभी लक्षण जिसमें पाताहो, उसे रौद्रध्यानी आत्मा समझना चाहिए.]

☞ इन दोनों ध्यानोंको छोडने, दूर करनेसेभी तप होता है,

धर्मध्यानके चार भेद

१ तीर्थंकरोंकी आज्ञाको विचारना, २ मैं रागद्वेष रहित होऊं, ऐसी चिन्ता करना, ३ दुःख और सुख शुभाशुभ कर्मोंसेही होता है यह चिन्तन करना, ४ लोकाकार याने-लोक [जगत्] के स्वरूपको विचारना

धर्मध्यानके चार लक्षण —

१ जिसके हृदयमें तीर्थंकरोंकी आज्ञानुसार चलनेकी रुचि हो, २ जिसको तत्त्वोंके पहचाननेकी रुचि हो ३ जिसको उपदेश श्रवण करनेकी रुचि हो ४ जिसको सूत्र सिद्धान्त पढ़नेकी रुचि हो

[ये लक्षण जिसमें पाते हो उस धर्मध्यानी जीव कहना चाहिए]

धर्म ध्यानकी चार भावना

१ 'अनित्यानुप्पेहा' ऐसा विचार करे कि-पौद्गलिक सर्व पदार्थ अनित्य है, २ 'असरणाणुप्पेहा' ऐसा विचार करे कि संसारमें आत्माको किसीका (एक धर्मका छोड़कर) सरण नहीं है, ३ 'एगत्ताणुप्पेहा' ऐसा चिन्तन करें कि-आत्मा सदासे अकेला है, संसारमें इसका कोई साथी नहीं है ४ 'संसाराणुप्पेहा' इस प्रकार सोचे कि-संसारपरिभ्रमण दुःख मय है लवलेश मात्रमी इसमें सुख नहीं है

धर्मध्यानके चार अवलम्बन

१ वायना, २ पुच्छणा, ३ परियट्टणा, ४ धर्मकथा

शुक्ल ध्यानके चार भेद.

१ द्रव्यके गुण पर्यायोंका अलग २ विचार करना. २ एक, द्रव्यकाही विचार करना. ३ सूक्ष्म क्रिया रहित होना. परिणामोंको न डिगने देना. [चलाय मान न होने देना] ४ जिस क्रियाका नाश किया है—उसमें फिर वापिस प्रवृत्ति न होने देना.

शुक्ल ध्यानके चार लक्षण.

१ तिल आर तेलकी तरह कर्म और आत्मा को जुदे जाने २ बाह्य और अभ्यन्तर संयोगोंसे निवृत्त होवे ३ अनुकूल और प्रतिकूल दोनों तरहके परिषहोंको समता भावसे सहन करे. ४ मनोज्ञ और अमनोज्ञ पदार्थोंपर राग द्वेष न लावे

शुक्ल ध्यानके चार अवलम्बन.

१ क्षमा, २ निर्लोभ, ३ सरलस्वभाव, ४ निरभिमान, इन चारोंको धारण करनेसे सहजही शुक्लध्यान रहता है.

शुक्ल ध्यानकी चार भावना.

१ " आवायाणुपेहा " ऐसा विचारे कि-राग और द्वेषही कर्म बंन्धके कारण है, इसलिए यह छोडने योग्य है. २ " असुभाणुप्पेहा " ऐसा विचारें कि-संसारमें जो जो पौद्गलिक वस्तु है, वे सब अशुभ (अच्छी नही है.) है. ३ " अनन्तवत्तियाणुप्पेहा " ऐसा चिन्तन करें कि इस जीवनें संसारमें अनन्त पुद्गल परावर्तन किये है ४ ' विपरिणामाणुप्पेहा " ऐसा विचार करें कि पुद्गलका स्वभाव पलटताही रहता है. पौद्गलिक सब वस्तु अस्थिर है.

कायोत्सर्ग के २५ भेद

मूल भेद दो हैं — १ द्रव्य कायोत्सर्ग [२] भाव कायोत्सर्ग

द्रव्य कायोत्सर्ग के चार भेद —१ " शरीर कायोत्सर्ग " [शरीरका ममत्व छोडनेको कहते हैं] २ गण कायोत्सर्ग (गच्छ सम्प्रदायका ममत्व त्यागन करनेको कहते हैं) ३ " उपधी कायोत्सर्ग " [वस्त्र पात्र वगैरह भंडोपगरण उपाधि छोडनेको कहते हैं] " भक्तपान कायोत्सर्ग (आहार पानी, त्यागन को कहते हैं)

भाव कायोत्सर्ग के ३ भेद —१ कषाय कायोत्सर्ग २ संसार कायोत्सर्ग ३ कर्म कायोत्सर्ग

कषाय कायोत्सर्ग के चार भेद —१ क्रोध २ मान, ३ माया ४ लोभ, इन्हें छोडनेको कहते हैं

संसार कायोत्सर्ग के चार भेद —१ नरक, २ तिर्यच ३ देव, ४ मनुष्य इन चारों गतिमें जानेके कर्म बन्धनोंके त्याग करनेको कहते हैं

कर्म कायोत्सर्गके आठ भेद —ज्ञानावरणीय आदि आठों कर्म बन्धनोंके कारणोंसे आत्माको बचानेका नाम कर्म कायोत्सर्ग है यह विवरण भगवतीके [illegible] में शतक विस्तार हुवा

८ बंधतत्त्व

[illegible] करना' कर्मका आत्माके साथ दूध और पानीकी तरह कर्म बांधनेका नाम बंध है

बंधके चार भेद है.

१ प्रकृति बंध, २ स्थिति बंध, ३ अनुभाग बंध, ४ प्रदेश बंध,

१ कर्मका जो स्वभाव या परिणाम है. उसे प्रकृतिबंध कहते है. २ कर्मकी जो स्थिति है. उसे स्थितिबंध कहते हैं.

३ जीवके परिणामोंका तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, मंद, मंदतर, मंदत्तम, आदि आदि भावोंकी अपेत्तासे जो हल्का या भारी कर्म बंध होता है, उसे अनुभाग बंध कहते है.

४ कर्म पुद्गलोंका जो समूह [दल] है, उसे प्रदेश बंध कहते हैं.

अब इन्हींको [चार प्रकारके बंधोंको] मोदक के दृष्टांतसे समझाते हैं.

जैसे किसी सोंठ आदि डालकर बनाये हुए मोदक- (लड्डू) का स्वभाव, वात हरण करनेका होता है, जीरा आदि डाले हुए मोदकका स्वभाव पित्त हरण करनेका होता है, इसी तरह आठों कर्मोंका स्वभाव अलग अलग होता है. वास्तविकमें देखा जायतो कर्म शब्दसे एकका ही बोध होता है, परंतु उसमें स्वभावकी

१—सचित (शिथिल ढीला)

२ निकाचित (अति दृढ खूब मजबूत).

तपादिके योगसे, या शुभ भावानाके बलसे क्षय होनेवाला, भोगे विनाही छूटने वाला " सचित " कर्म कहलाता है.

२—जो अतिगाढ दृढ होता है. याने किसी उपायसे उसका क्षय नहीं होसकता, जो भोगनाही पडता है. वह ' निकाचित ' कर्म कहलाता है.

मिससास आठ मद हुए हैं। वैसे १ ज्ञानावरणीय कर्म का स्वभाव आत्माकी ज्ञान शक्तिको दबाना है जैसे २ यह कर्म विशेष रूपसे प्रगाढ़ होता जाता है वैसेही वैसे वह ज्ञान शक्तिको विशेष रूपसे आच्छादित करता जाता है जैसे जैसे इस कर्ममें शिथिलता आती जाती है वैसेही वैसे बुद्धिका विकाश होता जाता है इस कर्मके पूर्णतया नष्ट होजानेपर केवल ज्ञान, जिससे लोकअलोकके समस्त पदार्थोंका जानकारी होती है ऐसा ज्ञान हो जाता है

२ दर्शनावरणीय कर्म –दर्शन शक्तिको दबाता है ज्ञान और दर्शनमें विशेष अन्तर नहीं है सामान्य आकारके ज्ञानका नाम दर्शन, रक्खागया है जैसे हमने किसीको दूरसे देखा; हम उसकी पहिचान नहीं सके, केवल इतनाही जान सके कि यह मनुष्य है, इसका नाम है–दर्शन उसी मनुष्यको विशेष रूपसे जान लेना है ज्ञान

३ वेदनीय कर्मका काम सुख दुःखका अनुभव कराना है जो सुखका अनुभव कराता है उसे साता वेदनीय कहते हैं और जो दुःखका अनुभव कराता है उसको असाता वेदनीय कहते हैं

४ मोहनीय कर्म –मोह पैदा करताहै स्त्रीपर मोह पुत्रपर मोह मित्रपर मोह और अन्य पदार्थोंपर मोह होना मोहनीय कर्मका परिणाम है जो लोग मोहसे अन्ध हो जाते हैं, उन्हें कर्तव्याकर्तव्य-का भान नहीं होता जैसे मद्य पिया हुआ मनुष्य उस वस्तुस्थितिको नहीं देख सकता है, वैसेही जो मनुष्य मोहकी गाढ आत्मामें होता है वहभी तत्वको नहीं देख

नहीं समझ सकता है; और विपरीत स्थितिमें गोते खाया करता है मोहका लीलाके हजारों उदाहरण हम रात दिन देखते है आठों कर्मोंमेंसे यह कर्म आत्म स्वरूपकी खराबी करनेमे नेताका कार्य करता है. इस कर्मके दो भेद है:—तत्व दृष्टिको रोकनेवाला 'दर्शन मोहनीय' और चारित्रको रोकनेवाला 'चारित्र मोहनीय.

५ आयुष्य कर्म के चार भेद है:—देवायु, मनुष्यायु, तिर्यंचायु, और नरकायु. यह कर्म वेडीका काम करता है. जबतक पैरमें वेडी होती है. तबतक मनुष्य स्वतंत्रतासे भाग दौड नहीं करसकता है, वैसेही जबतक आयुष्यकर्म होता है तबतक जीव, देवगति, मनुष्यगति, तिर्यंच गति, या नरकगतिसे—जिसमें वह होता है, निकल नहीं सकता है.

६ नामकर्मके अनेक भेद प्रभेद है:—अच्छा या बुरा शरीरका संगठन, सुरूप या कुरूपकी प्राप्ति, यश या अपयशका मिलना, सौभाग्य या दुर्भाग्य और सुस्वर या दुस्वरका होना आदि आदि कई बातोंका आधार इसी नाम कर्मपर है. जैसे चित्रकार भले या बुरे चित्र बनाता है, वैसेही यह कर्मभी जीवको विचित्र स्थितियोंमें रखता है

७ गोत्रकर्मके दो भेद है:—उच्च और नीच. ऊंचे कुलमें या नीचे कुलमें उत्पन्न होना इसी कर्मका प्रभाव है, ज्ञाति बन्धनकी परवाह नहीं करनेवाले देशोंमेंभी ऊंच नीचका व्यवहार होता है. इसका कारण यही कर्म है.

८ अन्तराय कर्म—विघ्न डालनेका कार्य करता है धनी

और धर्मका जाननेवाला होकरभी कोई दान नहीं कर सकता इसका कारण यह कर्म है वैराग्यवृत्ति या त्याग वृत्तिके न होनेपरभी कोई धनका भोग नहीं करसकता है, इसका कारण यह कर्म है किसीको बुद्धिपूर्वक अनेक प्रयत्न करनेपरभी लाभ नहीं होता, उल्टी हानि उठानी पड़ती है इसका कारण यह कर्म है शरीरके पुष्ट होनेपरभी उद्यम करनेमें प्रवृति नहीं होती, इसका कारणभी यही अन्तराय कर्म है

[आठों कर्मोका स्वभाव]

१ 'ज्ञानावरणीय कर्मका स्वभाव, ज्ञानगुणको मिटाना है

२ 'दर्शनावरणीय' का स्वभाव दर्शन गुणका मिटाना है

३ वेदनीयका स्वभाव दु ख सुखका अनुभव कराना है

४ मोहनीयका स्वभाव–मोह (प्रीति,) राग पैदा करना है

५ आयुष्य कर्मका स्वभाव–चारों गतिके शरीरमें रोक रखना है

६ नामकर्मका स्वभाव–अच्छा या बुरा कहलाना है

७ गोत्र कर्मका स्वभाव–ऊँच या नीच कुलमें पैदा करना है

८ 'अन्तराय' का स्वभाव प्रत्येक काममें विघ्न उपस्थित करना है

२ स्थितिबंध

ऊपर कहे हुए कोई मोदककी स्थिति एक मासकी होती है, काईकी दोमासकी होती है, और किसीकी चार मासकी

१ विश्वास याने श्रद्धा न होने देना

होती है. इसी प्रकार कर्मोंके रहनेकी (कर्मोंकी) भी स्थिति होती है. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, इन दो कर्मोंकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्तकी है और उत्कृष्ट ३० कोडाकोडी, सागरोपमकी है

वेदनीय कर्मकी स्थिति जघन्य बारह मुहूर्तकी है, और एत्कृष्टी ३० सागरोपमकी है

मोहनीय कर्मकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्तकी है और उत्कृष्टी ७० कोडाकोड़ सागरोपमकी है.

आयुष्य कर्मकी स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्तकी है. और उत्कृष्टी ३३ सागरोपमकी है.

नामकर्मकी स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्तकी है उत्कृष्टी वीस कोडाकोड सागरोपमकी है

गौत्र कर्मकी स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्तकी है और उत्कृष्टी वीस कोडाकोड सागरोपमकी है

अन्तराय कर्मकी स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्तकी है और उत्कृष्टी तीस कोडाकोर्ड सागरोपमकी है.

[आठों कर्मोंकी प्रकृतियाँ,]

पहिलेकी ५, दूसरेकी ९, तीसरेकी २; चौथेकी २८ पांचवेकी ४, छट्टेकी १०३, सातवेंकी २, आठवेकी ५.

---

१ किसी जगहपर दो समयकी लिखी है. २-३ किसी जगहपर आठ समयकी लिखी है. ४ इन्होंका 'अबाधाकाल' भी और जुदा होता है.

आठों कर्म किस किसका काम करते हैं

१ ज्ञानावरणीय कर्म आंखकी परकी पट्टीका काम करता है जैसे आंखपरकी पट्टी काई पदार्थको देखने नहीं देती,—वैसेही ज्ञानावरणीय कर्म आत्माको ज्ञान नहीं होने देता

२ दर्शनावरणीय कर्म द्वारपाल [द्वार रक्षक] का काम करता है जैसे द्वारपाल किसीको अन्दर नहीं जाने देता, वैसेही दर्शना वरणीय कर्म सम्यग्दर्शनमें प्रवेश नहीं करने देता

३ वेदनीय कर्म—शहद लिपटी तरवार [शहदसे भरीहुई] का काम करता है, जैसे किसीकी शहदसे लिपटी हुई तरवारसे जबान कटजानेपरभी दु ख मालूम नहीं होता शहदके मिठाससे उसको मजाही मालूम होता है वैसेही आत्मा संसार क दु खोंको सुख मान बठा है यह वेदनीय कर्मका प्रभाव है

४ मोहनीय कर्म मद्य [मदिरा—शराब] का काम करताहै जैसे शराब मनुष्यके असली स्वभावको बिगाड देता है—वैसे मोहनीय कर्मनेभी आत्माके असली स्वभावको बिगाड रक्खा है

५ आयुष्यकर्म पैरकी बेडीका काम करता है जैसे पैरकी बेडी मनुष्यको इधर उधर भगने नहीं देती, वैसेही आयुष्य कर्मभी आत्माको चारों गतिके शरीरमेंसे निकलने नहीं देता

६ नाम कर्म—चित्रकारका काम करता है जैसे चित्रकार अनेक चित्र बनाता है वैसेही नामकर्मभी आत्माको नानारूप—नाना नाम देता है

७ गौत्रकर्म-कुंभकारका काम करता है। जैसे कुंभकार एकही मिट्टीके दो बरतन बनाता है-उसमें एक पूज्य और एक अपूज्य हो जाता है. वैसेही गौत्र कर्म आत्माको ऊंच और नीच कुलमें डालता है।

८ अन्तराय कर्म-भंडारीका काम करता है। जैसे-भंडारी राजाकी आज्ञा मिलनेपरभी जल्दी माल नहीं देता-वैसेही अन्तराय कर्म आत्माका जल्दी फायदा नहीं होने देता. हरेक काममें आडा आता है.

३ अनुभाग बंध.

जैसे वही (ऊपर कहाहुआ) मोदक कोई कम मीठा होता है-और कोई ज्यादह मीठा होता है, और कोई कम कडवा होता है. और कोई विशेष कडवा होता है इसी तरह एकही कर्म बांधतेवक्त परिणामोंकी, (भावोंकी अपेक्षासे आगे (कम और ज्यादहपनेके हिसाबसे) कोई कर्म शुभ फल देनेवाला होता है तो कोई ज्यादह अशुभ फल देनेवाला होता है। कोई कम अशुभ फल देनेवाला होता है तो कोई ज्यादह शुभ फल देनेवाला होता है. जीव जिस भावोंमे-जैसा कर्म बांधता है. विपाक कालमें वह वैसाही फल देता है. (जितनी शक्कर डालोगे उतना मीठा होगा. इस दृष्टान्तसे)-यह अनुभाग बंध कहाता है

४ प्रदेश बंध.

जैसे उपर्युक्त मोदकमेंसे किसी मोदकमे द्रव्यका परिमाण

---

१ एक पानी पीनेका और एक पाखाने जानेका.

थोड़ा होता है और किसीमें ज्यादह होता है, उसी तरह कहीं कर्म,-बंध में कर्म वर्गणाके पुद्गल थोड़े होते हैं—और कोईमें अधिक होते हैं—[यों कर्म बंधमें कम या ज्यादह प्रदेशों का होना] उसे प्रदेश बंध कहते हैं

---

९ मोक्ष तत्त्व

मोक्ष तत्त्व किसका कहना? सब कर्मोंसे छूट जाने—मुक्त हो जाने [कृत्स्न कर्म क्षयो मोक्ष] को मोक्ष कहते हैं

तथा-जन्म और मरणसे अलग हो जाने या परमात्मा पद पालनेका नाम मोक्ष या मुक्ति है

मुक्त जीवोंके [सिद्धोंके] १५ भेद हैं

१ तीर्थ सिद्धा [जो तीर्थंकर भगवानको केवल ज्ञान हुए बाद और चार तीर्थ स्थापित हुए बाद मोक्ष गये वे जीव जैसे—गणधरादिक]

२ अतीर्थ सिद्धा—[जो तीर्थंकर भगवानको केवल ज्ञान होनेके पहिलेही मोक्षमें चले गये व जीव जैसे—मरुदेवी आदि

३ तीर्थंकर सिद्धा—[जो तीर्थंकर पद पाकर मोक्ष गये व जीव]

४ अतीर्थंकर सिद्धा—[जो तीर्थंकर तो न हुए परन्तु केवल ज्ञान पाकर मोक्ष गये व जीव]

५ गृहस्थ लिंग सिद्धा—[जो गृहस्थके वेषमें मोक्ष गये व जीव]

६ स्वलिंग सिद्धा [साधुके वेषमें मोक्ष गये वे जीव]

७ अन्य लिंग सिद्धा [दूसरे साधुओंके वेषमें मोक्ष गए वे जीव, जैसे-वल्कल चिरी संन्यासी आदि]

पुरुषलिंग सिद्धा-(जो पुरुष चिन्हके धारक मोक्ष गये, वे जीव.]

९ स्त्री लिंग सिद्धा- [जो स्त्री चिन्हके धारक मोक्ष गये, वे जीव,)

१० नपुंसक लिंग सिद्धा-(जो नपुंसक चिन्हके धारक मोक्ष गये वे जीव,-जैसे गांगेय आदि]*

११ प्रत्येक बुद्ध सिद्धा [किसी पदार्थको देख वैरागी हुए और फिर चारित्र ले मोक्ष गये, वे जीव)

१२ स्वयं बुद्ध सिद्धा [विना किसीका उपदेश सुने, जाति स्मरणादि ज्ञानसे प्रतिबोध पा, चारित्रले, मोक्षगये वे जीव.)

१३ बुद्ध बोधि सिद्धा (गुरुका उपदेश लगनेसे-चारित्र-लिया और मोक्ष गये, वे जीव)

१४ एक सिद्धा (जो एक समयमें एकही मोक्ष गया, वहजीव).

१५ अनेक सिद्धा (जो एक समयमें, एक साथ बहुत जीव मोक्षमें गये, वे)

ये मुक्त जीवोंके १५ भेद हुए.

(यद्यपि-तीर्थ सिद्धा और अतीर्थ सिद्धा, इन दो भेदोंमें शेष १३ भेदोंका समावेश हो जाता है, तथापि विशेष प्रकारसें समझानेके लिये १५ भेद कहे है.

---

* जो जन्मसे नपुसक होता वह कभी मोक्ष नहीं जाता ।

मोक्ष जानेके चार भेद

१ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र ४ तप
तथा—१ दान, २ शील, ३ तप, ४ भाव
इनको स्वीकार कर जीव मोक्ष जाता है

(मोक्षके ९ द्वार)

१ सत्पद प्ररूपना द्वार २ द्रव्यद्वार, ३ क्षेत्रद्वार ४ स्पर्शना द्वार ५ कालद्वार, ६ अंतरद्वार, ७ भागद्वार, ८ भाव द्वार, ९ अल्प बहुत्व द्वार

१ सत्पद प्ररूपनाद्वार —गतकालमें मोक्ष थी, वर्तमान कालमें है और आगामी कालमें मोक्षवनी रहेगी यह सत्पद प्ररूपनाद्वार है

२ द्रव्यद्वार —संसारके अभव्य जीवों, और वनस्पतिके छोड़कर शेष २३ दण्डकोंके जीवोंसभी [१] सिद्ध अनंत गुणा अधिक है यह द्रव्यद्वार हुआ

३ क्षेत्रद्वार –सर्वार्थ सिद्ध विमानकी ध्वजा पताकासे बारह योजन ऊँचा आनवात् ४५ लाख योजन लम्बी और चौड़ा त्रिगुणी परिधि (घेरा) वाली सिद्ध शिला [जिस मुक्त शिलाभी कहते हैं] है, उसके ऊपर ३३३ धनुष्य, ३२ अंगुल प्रमाण उतना अगहमें सिद्धोंका निवास है यह क्षेत्रद्वार हुआ

४–स्पर्शनद्वार—सिद्ध क्षेत्रसे कुछ अधिक क्षेत्र सिद्ध-परमात्मा स्पर्श रहे हैं यह स्पर्शनाद्वार हुआ

---

१ चार भाग

५ कालद्वारः—एककी अपेक्षासे सिद्ध भगवान आदि अनन्त है. और अनेककी अपेक्षासे अनादि अनन्त है.

६ अन्तरद्वारः-एक दफह जो जीव मुक्त होगया, याने सिद्ध होगया वह फिर कभी संसारमें वापिस नहीं आता,—जन्ममरण नही करता. जहाँ, एक सिद्ध है, वहां अनन्त सिद्ध है, जहां अनन्त सिद्ध है, वहां एक सिद्ध है. सिद्ध-सिद्ध सब एक समान है, उनमें कोई तफावत [फर्क] नही है.

७ भागद्वारः—सब जीवोंसे सिद्ध अनन्तवें भाग और लोकके असंख्यातवें भाग है

८ भावद्वारः—सिद्धोंमें क्षायिक भाव, क्षायिक सम्यक्त्व, केवल ज्ञान. केवल दर्शन, ये सब पाते है. सिद्धत्व है सो परिणामिक भाव है.

९ अल्प बहुत्वद्वारः—सबसे थोडे नपुंसक लिंग सिद्ध, उससे स्त्रीलिंग सिद्ध संख्यात गुणें है, एक समयमें सिद्ध हो तो कितने हो ? , एक समयमें १० नपुंसक, २० स्त्री, १०८ पुरुष, सिद्ध हो सकते हैं.

इनमेंसे सिद्ध होता हैः—

१ त्रसमेंसे सिद्ध होता है, २ बादरमेंसे सिद्ध होता है, ३ संज्ञी पंचेंद्रीमेंसे सिद्ध होता है, ४ मनुष्य गतिमेंसे सिद्ध होता है. ५ वज्र ऋषभ नाराच संघयणवाला सिद्ध होता है, ६ शुक्ल ध्यानवाला सिद्ध होता है, ७ क्षायिक सम्यत्क्त्व वाला सिद्ध होता है. ८ यथाख्यात चारित्र वाला सिद्ध होता है, ९ पंडित वीर्यवाला सिद्ध होता है, १० केवल ज्ञानवाला सिद्ध होता है,

११ केवल दर्शन वाला सिद्ध होता है १२ भव्य जीव सिद्ध होता है, १३ परमशुक्ललेश्या वाला सिद्ध होता है, १४ चरम शरीरी जीव सिद्ध होता है १५ जघन्य दो हाथकी[1] अवगाहना वाला, उत्कृष्टी पांचसौ धनुष्यकी अवगाहनावाला सिद्ध होता है १६ कर्मभूमि होनेपर, जघन्य ९ वर्षका आयुष्य वाला और उत्कृष्ट करोडपूर्वका आयुष्यवाला सिद्ध होता है

इति नवतत्त्व संपूर्णम्

१ शरीरकी ऊंचाईका अवगाहना कहते हैं ।

बालबोध जैन तत्त्व ज्ञानपाठ माला ।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र ।

१

सम्यग्दर्शन ।

सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र तथा दयामयी धर्म का सच्चे दिल से श्रद्धान (यकीन) करना और उनमें किसी प्रकार की भी शंका नहीं करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है ।

सम्यग्दर्शन, धर्मरूपी पेड़ की जड़ है अथवा धर्मरूपी घर की नीव है । सबसे पहले इसे धारण करना चाहिये । इसके विना सब धर्म कर्म निष्फल हैं । उनसे कुछ अधिक लाभ नहीं होता ।

सम्यग्दर्शन की बड़ी महिमा है । जिस जीव को सम्यग्दर्शन हो गया वह मर कर उत्तम गतिमेंही जाता है । कभी उसकी दुर्गति नहीं होती ।

सम्यग्ज्ञान ।

पदार्थ के स्वरूप को ठीक जैसा का तैसा जानना और उसमें किसी प्रकार का संदेह या संशय नहीं करना, इसका नाम सम्यग्ज्ञान है ।

सम्यग्ज्ञान के होने से पहले जो ज्ञान होता है उसे कुज्ञान [अज्ञान] कहते हैं । वही कुज्ञान सम्यग्दर्शन होने पर सम्यग्ज्ञान कहलाता है । सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान का कारण है । विना सच्ची श्रद्धा के सम्यग्ज्ञान नहीं हो सकता ।

सम्यग्ज्ञान से ही आत्मज्ञान और केवलज्ञान होता है। इस लिए सम्यग्ज्ञान को शास्त्र स्वाध्याय, पढ़ने पढ़ाने सुनने सुनाने, तथा बार बार विचारने से प्राप्त करना चाहिये।

ज्ञान की बड़ी महिमा है। ज्ञान होने से थोड़ी सी मिहनत में भव भव के पाप कटते हैं जो अज्ञानी जीव के करोड़ों जन्म की मिहनत से भी नहीं कटते।

सम्यक् चारित्र।

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील परिग्रह तथा कषाय वगैरह से जिन के कारण हम संसार में भ्रम रहे हैं, इनसे विरक्त होना इसका नाम सम्यक् चारित्र है।

सम्यग्दर्शन, और सम्यग्ज्ञान को प्राप्त कर लेने पर संसार के, पर पदार्थों से राग द्वेष घटाने के लिए सम्यक् चारित्र का धारण करना जरूरी है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों का मिलना मोक्ष का मार्ग है, अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति का उपाय है।

२

सच्चे देव, शास्त्र, गुरु।

सच्चा देव।

सच्चा देव उसे कहते हैं, जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो।

वीतरागी उसे कहते हैं, जो न किसी से राग रखता है और न किसी से द्वेष रखता हो, सबको बराबर देखता हो।

सर्वज्ञ उसे कहते हैं, जो संसारके सब पदार्थों को सब दशाओंमें देखे और जाने। अर्थात् संसार में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जिसे सर्वज्ञ न जानता हो।

जो कुछ पहले हो गया, जो अब हो रहा है और जो कुछ आगे होगा, वह सब सर्वज्ञ को मालूम है।

हितोपदेशी उसे कहते हैं जो सब जवों को कल्याण करनेवाला उपदेश दे।

जिस देव में ये तीन गुण पाए जायँ, जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो—वही सच्चा देव हैं। उसको अरहंत जिनेंद्र तीर्थंकर, परमेष्टी आदि अनेक नामोंसे पुकारते है।

सच्चा शास्त्र।

सच्चा शास्त्र उसे कहते है, जो सच्चे देव का कहा हुआ हो, कोई भी जिसका खंडन न कर सके, जिसमें किसी तरह का विरोध न हो, सच्ची बातों का उपदेश भरा हो, जिसके पढने पढाने, सुनने सुनानें से जीवोंका कल्याण हो और जो खोटे मार्ग का नाश करनेवाला हो। इसको आगम सरस्वती जिनवाणी भी कहते हैं।

सच्चागुरु.

सच्चा गुरु उसे कहते है—जो पांचो इन्द्रियोंके विषयसे किसीभी विषयकी लालसा न रखताहो। जो हिंसा, झूट चौरी, मैथुन और परिग्रह, इनका त्यागी हो। जो भिक्षा-माधुकरी वृत्तिद्वारा अपना जीवन निर्वाह करता हो, जो धैर्यादि

गुणोंसे विभूषित हो, जो आत्म चिंतनमें लीन हो, ऐसे गुरु को ही साधु मुनि, यति, तपस्वी आदि कहते हैं

३

जीव और अजीव।

जीव—उन्हें कहते हैं जो जीते हों, जिनमें ज्ञान हो, जिनमें जानने देखने की ताकत हो। जैसे आदमी, घोड़ा, बैल, कीड़ी मकोड़ा वगैरह।

भावार्थः—जगत में हम जितने स्त्री, पुरुष, पशु पंछी, कीड़े, मकोड़े, वगैरह को खाते पीते चलते फिरते देखते हैं उन सब में जीव है।

अजीव—उन्हें कहते हैं जिन में ज्ञान न हो जैसे सूखी मिट्टी, ईंट, पत्थर, लकड़ी, मेज़, कुरसी, कलम, कागज, टोपी, रस्सी वगैरह।

जीव के भेद।

जीव दो तरह के होते हैं:—एक मुक्त जीव और दूसरे संसारी जीव।

१ मुक्त जीव उन्हें कहते हैं जो संसार से छूटे गये हैं अर्थात् जिनको मोक्ष होगया है और जिन्होंने सदा के लिये सच्चा सुख पालिया है और जो कभी संसार में लौटकर नहीं आवेंगे।

२ संसारी जीव वे हैं जो संसार में घूम रहे हैं और जन्म मरण के दुःख उठा रहे हैं। संसारी जीव दो तरह के होते हैं। १ त्रसजीव, २ स्थावरजीव।

त्रस जीव उन्हें कहते हैं जो अपनी इच्छा से चलते फिरते हों, डरते हों, भागते हों, खाना ढूंडते हो अर्थात् दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय और पांच इंद्रिय जीव, जैसे लट, चिंवटी, मक्खी, वर्र [ततइया] घोडा, बैल, आदमी वगैरह।

स्थावर जीव अर्थात एक इंद्रिय जीव उन्हें कहते हैं जो पैदा होते हों, बढते हों मरते हो पर अपने आप चल फिर नही सकते हों। जैसे पृथिवी (जमीन), जल [पानी], तेज (आग), वायु (हवा) और वनस्पति (पेड वगैरह)।

त्रस जीवों के भेद.

त्रस जीव चार प्रकार के होते हैं,-

१ दो इन्द्रिय जीव, २ तीन इन्द्रिय जीव, ३ चार इन्द्रिय जीव ४ पचेन्द्रिय जीव।

नोटः-दो इन्द्रिय जीव, तीन इंन्द्रिय जीव और चार इन्द्रिय जीव, इन जीवों को विकलत्रय कहते हैं।

पंचेन्द्रिय जीवों में से तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव पांच तरह के होते हैः—

१ जलचर जीव, २ थलचर जीव, ३ नभचर जीव ४ उरपर जीव, ५ भुजपर जीव।

१ जलचर जीव, उन्हें कहते हैं जो जल में ही रहें। जैसे-मच्छी, मगरमछ वगैरह।

२। थलचर जीव उन्हे कहते हैं जो जमीन पर चलते फिरते हों। जैसे गाय, भैंस कुत्ता, बिल्ली वगैरह।

३। नभचर जीव उन्हें कहते हैं जो आकाश में उडा

करते हैं। जैसे कौवा, चील, कबूतर वगैरह।

४। उरपर जीव, उन्हें कहते हैं जो पेटके सहारे से चलते हैं। जैसे—सांप, वगैरह।

५। भुजपर जीव, उन्हें कहते हैं। जो दोनों हाथोंके सहारसे चलते हैं। जैसे—मूस वगैरह।

पंचेन्द्रिय जीव सैनी, असैनी के भेद से दो तरह के होते हैं १ सैनी (सेज्ञी) २ असैनी [असंज्ञी]।

सैनी जीव उन्हें कहते हैं जिनके मन हो अर्थात जो शिक्षा और उपदेश ग्रहण कर सकें। जैसे ऊंट हाथी बकरी, मोर, बन्दर वगैरह पचेन्द्रिय तिर्यच, मनुष्य, नारकी।

असैनी जीव— उन्हें कहते हैं जिनके मन न हो अर्थात् जो शिक्षा और उपदेश ग्रहण न कर सकें। ऐसे जीव प्राय माता पिता के रज और वीर्य के मिलन से पैदा नहीं होते किंतु आपस में एक दूसरे के मिलन से पैदा हो जाते हैं। जल में रहने वाले सांप वगैरह करके असैनी होते हैं। कोई तोता भी असैनी होता है।

स्थावर जीवों के भेद।

स्थावर जीव, जिनके केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है, पांच प्रकार के होते हैं।

१। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, और चतुरेन्द्रिय जीवतो नियम से असैनी ही होते हैं।

२। ये पांच प्रकार के स्थावर जीव, और त्रस जीव इनको ६ काय कहते हैं।

१। पृथ्वीकायिकजीव– अर्थात पृथ्वी ही जिनका शरीर हो। जैसे-मिट्टी, पत्थर, अभ्रक (भोडल), रत्न सोना, चांदी वगैरह खानि से निकलने वाली धातुएँ, परन्तु पैदा होने की जगह अर्थात खानि से अलग होने पर प्रायः उन में जीव नहीं रहते।

१। जलकायिकजीव–अर्थात जल ही जिनका शरीर हो। जैसे जल ओला वर्फ, ओस वगैरह।

३ अग्निकायिकजीव–अर्थात अग्नि ही जिन का शरीर हो। जैसे–दीपक, लौ, बिजली, आग, वगैरह।

४। वायुकायिकजीव–अर्थात वायु ही जिनका शरीर हो। जैसे हवा।

५। वनस्पतिकायिकजीव–अर्थात वनस्पतिही जिनका शरीर हो। जैसे वृक्ष, वेल, फल, फूल, जडी, बूँटी, वगैरह।

ये पांचों काय के जीव वादर [स्थूल] और सूक्ष्म के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

४

पांच पाप।

पाप–पांच होते हैं। १ हिंसा, २ झूट, ३ चोरी, ४ कुशील, ५ परिग्रह।

१। हिंसा–प्रमाद से अपने वा दूसरे के प्राणों के घात करने वा दिल दुखाने को हिंसा कहते हैं। इस पाप के करने वाले को निर्दयी, हिंसक, हत्यारा कहते हैं इसलिये:—

जीवन की कुरुणा मत आर।
यह सब धर्मों में है सार॥

२। झूठ जिस बात या जिस चीज को जैसा देखा हो या जैसा कहा हो या जैसा सुना हो, उसको वैसा न कहना सो झूठ है। इस पाप के करने वाले झूठे, दगाबाज कहलाते हैं। इसलिये—

झूठ वचन मुख पर मत लाव।
सांच वचन पर राखहु भाव॥

३। चोरी-बिना दिये किसी की गिरी या पड़ी या रक्खी या भूला हुई वस्तु का ग्रहण करना अथवा उठा कर किसी दूसरे को दे देना, सो चोरी है। इस पाप के करने वाले चोर तस्कर कहलाते हैं और उनको सभी बुरा कहते हैं। इसलिये—

मालिक की आज्ञा बिन कोय।
चीज गहै सो चोरी होय॥
तातें आज्ञा बिन मत गहो।
चोरी से नित डरते रहो॥

४। कुशील-पराई स्त्री के साथ रमने को कुशील कहते हैं। इस पाप के करने वाले को व्यभिचारी, जार, लुच्चा, बदमाश कहते हैं और वे लोक में बुरी दृष्टि से देखे जाते हैं। इसलिये-

परदारा से नेह न लगा।
इस से तुम दुर्गति जाओ॥

५। परिग्रह-धन, मकान, धन, धान्य, गौ, भैंस, हाथी

घोडे, कपड़े, बरतन, जेवर वगैरह चीजों, से मोह रखना और इन्ही संसारी चीजों को इकठे करने में लालसा रखना सो परिग्रह है। इस पाप के करने वालों को लोभी बहुधंधी और कंजूस कहते है। इसलिये—

धन गृहादि में मूर्छा हरो।
इसका अति संग्रह मत करो॥

५

(कषाय)

कषाय—उसे कहते है जो आतमा को कषे अर्थात् दुःख दे। ऐसी कषायें चार है—१ क्रोध, २ मान, ३ माया, ४ लोभ।

१ क्रोध गुस्से को कहते है।

२ मान—घमंड को कहते है।

३ माया—छल कपट करनेको कहते हैं अर्थात मन में और वचन में और, करे कुछ और।

४ लोभ—लालच और तृष्णा को कहते हैं।

ये चारोंही कषायें पाप बंधकी मुख्य कारण हैं। और जीव को बहुत दुःख देनेवाली हैं।

तातें क्रोध कभी मत करो। मान कषाय न मनमें धरो।
माया मन वच तन तें हरो। लालच मांहि कबहुं मत परो।

[६]

जीवकी अवस्था विशेष गति गति कहते है। गति चार प्रकार की है:—१ नरक गति, २ तिर्यंच गति, ३ मनुष्य गति, ४ देव गति।

१ नरकगति–इस पृथ्वी के नीचे सात नरक हैं। उन नरकों में बड़ा भारी दु:ख है। उनमें रहने वाले जीवों को रात दिन दु:खही दु:ख सहना पड़ता है। एक समय मात्र भी सुख नहीं मिलता। इन नरकों में जब पशु या मनुष्य मर कर जन्म लेता है, तब उसको नरक गति होना कहते हैं। इस गति के जीव पंचेन्द्रियही होते हैं

२ तिर्यंचगति–स्थावर जीव, पशु, पक्षी, कीड़े, मकोड़े, मगर, मच्छ वगैरह जानवरों को तिर्यंच कहते हैं। जब कोई जीव मरकर इनमें जन्म लेवे तो उसका तिर्यंच गति में जन्म लेना कहते हैं। इस गति में पांचोंही इन्द्रियोंके जीव होते है।

३ मनुष्यगति–कोई भी जीव मर कर मनुष्य का शरीर धारण करे तो उसको मनुष्यगति में जन्म लेना कहते हैं। मनुष्यगति के जीव पंचेन्द्रिय ही होते हैं

४ देवगति–ऊपर कहे हुए तीन प्रकार के सिवाय एक चौथे प्रकारके जीव होते हैं। जिनको अनेक प्रकार के उत्तम २ भोग उपभोगकी चीजें प्राप्त होती है और जो रात दिन सुखमें मग्न रहते हैं उनको देव कहते हैं। उन देवों में, मरकर जो कोई जीव जन्म लेवे तो उसका देवगति का होना कहते है इस गतिके जीव पंचेन्द्रियही होते हैं।

७

(इंद्रिया,)

इन्द्रिय उसे कहते है-जिसके द्वारा जीव पहचाना जाय। वे इंद्रियां पांच होंती हे। १ स्पर्शन इंन्द्रिय अर्थात् त्वचा [चमड़ा] २ रसना इंद्रिय अर्थात् जीभ, ३ घ्राण इंद्रेय अर्थात् नाक. ४ चक्षु इंद्रिय अर्थात् आंख. ५ कर्ण इंन्द्रिय अर्थात् कान.

स्पर्शन इंद्रिय उसे कहते है-जिससे छू जानेपर हलके भारी रूखे चिकने, कडे, नरम ठंडे गर्मका ज्ञान हो। जैसे आग छूनेसे गर्म, और पानी छूनेसे ठंडा मालूम होता है वगैरह।

रसना इंद्रिय उसे कहते-जिससे खट्टे, मीठे, कडवे, चरपरे और कषायले रस का (स्वादका) ज्ञान हो। जैसे-पेडा चखनेसे मीठा, नीमके पत्ते कडवे, मिरच चिरपरी और नींबू खट्टा, मालूम होता है।

घ्राणेन्द्रिय उसे कहते हैं—जिस के द्वारा सुगंध (खुशबू) और दुर्गंध [बदबू] का ज्ञान हो। जैसे गुलाब केवडे के फूलों से सुगंध और मिट्टीके तेल से दुर्गंध आती है।

चक्षु इंद्रिय उसे कहते है जिससे काले, पीले, नीले, लाल, और सफेद रंग का तथा इन रंगों के मेलसे बने हुए तरह २ के रंगोंका ज्ञान हो। जैस दूध, दही, चांदी सुफेद है कोयला काला और खून लाल हे। सोना पीला और मोर का पंख नीला है।

कर्ण इन्द्रिय उसे कहते हैं— जिस से आदमी जानवर तथा बाजे वगैरह की आवाज जानी जाय।

८

(पांच तरह के जीव)

एक इन्द्रिय जीव—उनको कहते हैं जिनके सिर्फ एक ही स्पर्शन इन्द्रिय हो। जैसे मिट्टी, पानी, आग, हवा, फल फूल पेड़।

दो इन्द्रिय जीव—उनको कहते हैं जिन के स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियां हों। जैसे लट, केंचुआ जोंक, शंख वगैरह।

तीन इन्द्रिय जीव—उनको कहते हैं जिनके स्पर्शन रसना घ्राण, ये तीन इन्द्रियां हों। जैसे चिंवटी चिंवटा, खटमल, जूं वगैरह।

चार इन्द्रिय जीव—उन्हें कहते हैं जिन के स्पर्शन, रसना घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रिय हो। जैसे भौंरा, बर (ततइया) मक्खी, मच्छर, टिड्डी वगैरह।

पांच इन्द्रिय जीव—उन्हें कहते हैं जिन के पांचों ही इन्द्रियां हों, जैसे—देव, नारकी, मर्द, औरत, बैल, घोड़ा वगैरह।

अजीव के भेद।

अजीव पांच प्रकार के होते हैं —

१ पुद्गल, २ धर्म, ३ अधर्म ४ आकाश, ५ काल।

पुद्गल उसे कहते हैं, जिसमें स्पर्श[१] रस, गंध और वर्ण पाये जावें।

पुद्गल के कई भेद हैं। स्थूल (मोटा) पुद्गल तो आँखों से देखने में आता है; परन्तु सूक्ष्म (बारीक) पुद्गल नहीं।

[१] स्पर्श, रस, गंध, वर्ण का पाठ आगे दिया है।

दिखाई देता । पुद्गल के सबसे छोटे टुकड़े को परमाणु कहते हैं । दो या दो से ज्यादह मिले हुए पुद्गल परमाणुओं को स्कंध कहते हैं । धूप, छाया, अँधेरा, चाँदना सब पुद्गल की पर्याएं, (हालतें) हैं ।

२ धर्म उसे कहते हैं, जो जीव और पुद्गलों को चलने में सहकारी हो अर्थात् मदद देता हो । जैसे जल मछली को चलने में सहकारी है । यह पदार्थ तमाम लोक में पाया जाता है और अपनी आँखों से देखने में नहीं आता ।

३ अधर्म उसे कहते हैं, जो जीव और पुद्गलों के ठहरने में सहकारी हो । जैसे पेड की छाया थके हुए मुसाफिर को ठहरने में सहकारी है । यह पदार्थ भी तमाम लोक में पाया जाता है और अपनी आँखों से देखने में नहीं आता ।

धर्म अधर्म द्रव्य जीव पुद्गल को प्रेरणा करके चलाते या ठहराते नहीं हैं, परन्तु जब वे चलते हैं अथवा ठहरते हैं उस समय उनको मदद करते हैं । हाँ यह जरूर है कि यदि धर्म द्रव्य न हो तो कोई पदार्थ नहीं चल सकता और यदि अधर्म द्रव्य न हो तो कोई पदार्थ नहीं ठहर सकता । यहाँ धर्म अधर्म से साधारण धर्म अधर्म न समझना चाहिए जिनके अर्थ पुण्य पाप के हैं ।

नोट—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन पाच प्रकार के अजीवों में एक जीव द्रव्य और मिलाने से छह द्रव्य हो जाते हैं इन छहों द्रव्यों में से काल द्रव्य को छोड कर शेष के पाच द्रव्य पचास्तिकाय कहलाते हैं । काल द्रव्य कायवान् नहीं है । उसका एक एक अणु अलग अलग है ।

४ आकाश उसे कहते हैं, जो अन्य चीजों को अवकाश (स्थान) दे। अर्थात् यह वह पदार्थ है जिसमें सब चीजें रहती हैं।

इसके दो भेद हैं —१ लोकाकाश, अलोकाकाश। लोकाकाश में जीव अजीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, वगैरह सब चीजें पाई जाती हैं, परन्तु अलोकाकाश में केवल आकाश ही आकाश है और कुछ नहीं।

५ काल उसे कहते हैं, जो चीजों की हालतों के बदलने में मदद देता है। व्यवहार में पल, घड़ी, प्रहर दिन, सप्ताह [हफ्ता], पक्ष [पखवाड़ा] मास, वर्ष वगैरह को काल कहते हैं।

१०

(रूप, रस, गंध, स्पर्श ।)

रूप, रस, गंध और स्पर्श ये पुद्गल के गुण हैं। ये सदा पुद्गल में ही पाये जाते हैं। पुद्गल को छोड़ कर और किसी द्रव्य में नहीं रहते। ये चारों ही सदा साथ साथ रहते हैं। जैसे पके हुए आम में पीला रूप है मीठा रस है, अच्छी गंध है, और कोमल स्पर्श है।

रूप उसे कहते हैं, जो नेत्र इन्द्रिय से जाना जाए। यह पाँच प्रकार का होता है। कृष्ण [काला] नील [नीला] रक्त [लाल] पीत [पीला] और श्वेत (सफेद)। जैसे कोयल में काला, नील में नीला, गेरू में लाल सोने में पीला और दूध में सफेद रूप है।

रूप का दूसरा नाम रंग है। इन रंगो के मिलाने से और भी कई रंग हो जाते हैं। जैसे नीला और पीला रंग मिलाने से हरा रंग बन जाता है।

रस उसे कहते है, जो रसना [जिव्हा] इन्द्रिय से जाना जाय। रस पॉच प्रकार का होता है। तिक्त (तीखा अथवा चर्परा) कटु [कड़ुवा], कषाय (कसैला), आम्ल [खट्टा] और मधुर (मीठा)। जैसे मिर्चमें तीखा, नीम में कड़ुवा, ऑवले में कसैला, नीबू में खट्टा और गन्ने में मीठा रस होता है

गंध उसे कहते हैं, जो घ्राण [नासिका] इन्द्रिय से जाना जाय। गंध दो प्रकार की होती हैं, सुगंध (खुशबू) और दुर्गंध (बदबू)। जैसे गुलाब के फूल में सुगंध और मिट्टी के तेल में दुर्गंध होती है।

स्पर्श उसे कहते है, जो स्पर्शन इन्द्रिय से या छूने से जाना जाय। स्पर्श आठ प्रकार का होता है। स्निग्ध (चिकना) रूक्ष [रूखा], शीत (ठंडा), उष्ण (गरम), मृदु [कोमल, नरम], कर्कश (कठोर, कड़ा), गुरु (भारी) और लघु [हलका]। जैसे घी में स्निग्ध, बालू में रूक्ष, पानी में शीत, अग्नि में उष्ण, मक्खन में मृदु, पत्थर में कंर्कश, लोहे में गुरु, और रुई में लघु स्पर्श रहता है।

रूप ५, रस ५, गंध २, और स्पर्श ८ इस प्रकार सब मिल कर पुद्गल में २० गुण होते है।

११

आठ कर्म ।

कर्म उन्हें कहते हैं जो आत्मा का असली स्वभाव प्रगट न होने दें । जैसे बहुत सी धूल मिट्टी उड़ कर सूरज की रोशनी को ढक देती है, उसी प्रकार बहुत से पुद्गल परमाणु (छोटे छोटे टुकड़े) जो इस आकाश में सब जगह भरे हुए हैं, आत्मा में क्रोध आदि कषाय उत्पन्न होने से आत्मा के प्रदेशों के साथ मिलकर आत्मा का स्वभाव ढक देते हैं । कषाय के सम्बन्ध से उनमें सुख दुःख वगैरह देने की शक्ति भी हो जाती है, इस लिए उनको कर्म कहते हैं ।

कर्म आठ हैं—ज्ञानावरणी दर्शनावरणी, वेदनीय, मोहनीय आयु नाम, गोत्र और अन्तराय ।

ज्ञानावरणी कर्म उसे कहते हैं, जो आत्मा के ज्ञान गुण को प्रकट न होने दे । जैसे एक प्रतिमा पर परदा डाल दिया जाय । तब वह परदा प्रतिमा को ढके हुए है प्रगट नहीं होने देता । इसी प्रकार ज्ञानावरणीकर्म ज्ञान को ढक लेता है, प्रगट नहीं होने देता । जैसे मोहन अपना पाठ खूब याद करता है, परन्तु उसे याद नहीं होता । इसमें मोहन के ज्ञानावरणीकर्म का उदय समझना चाहिये ।

किसी के पढ़नेमें विघ्न डालना, किसी की पुस्तक फाड़ देना, छुपा देना, किसी को न बताना अपने गुरु अथवा और किसी विद्वान की निन्दा करना, अपने ज्ञान का गर्व करना, विद्या पढ़ने में आलस्य करना, झूठा उपदेश देना व-

गेरह कामों से ज्ञानावरणीकर्म बंधता है । अर्थात ज्ञान का प्रकाश नहीं होता, किंतु इनसे विपरीत करने से ज्ञान का प्रकाश होता है ।

दर्शनावरणी कर्म उसे कहते हैं, जो आत्मा के दर्शन गुण को प्रगट न होने दे । जैसे एक राजा का पहरेदार पहरे पर बैठा हुआ है । वह किसी को भी अंदर जाकर राजा के दर्शन नहीं करने देता, सब को बाहर से ही रोक देता है। इसी प्रकार दर्शनावरणी कर्म किसी को दर्शन नहीं होने देता । जैसे मोहन मुनिराजके दर्शन करनेको गया था, परन्तु दर्शन न हुआ । इससे समझना चाहिये कि मोहन के दर्शनावरणी कर्म का उदय है ।

किसी के देखने में विघ्न करना, स्वयं देखे हुये पदार्थों को प्रगट न करना, अपने पास की वस्तु दूसरों को न दिखाना अपनी दृष्टि का गर्व करना, दिनमें सोना, दूसरे की आँखें फोडना, मुनियों को देखकर ग्लानि करना, धर्मात्मा को दोष लगाना, ऐसे कामों से दर्शनावरणी कर्म बँधता है और इनके विपरीत करनेसे आत्मा का दर्शन गुण प्रगट होता है ।

वेदनीय कर्म उसे कहते हैं, जो आत्मा को सुख दुःख दे। इस कर्म के उदय से संसारी जीवों को ऐसी चीजों का मिलाप होता है, जिनके कारण वे सुख मालूम करते हैं । जैसे शहद लिपटी तलवार की धार चाटनेसे सुख दुःख दोनों होते हैं । अर्थात शहद मीठा लगता है, परंतु तलवार की धार से जीभ कट जाती है, इससे दुःख होता है । इसी प्रकार

वेदनीयकर्म सुख दुःख दोनों देता है। जैसे प्रकाशचन्द्रने लड्डू खाया, अच्छा लगा और पैर में काँटा गड गया दु ख हुआ। दोनों ही हालतों में वेदनीयकर्मका उदय समझना चाहिये। जिससे सुख होता है, उसे शातावेदनीय कहते हैं और जिसस दु ख होता है, उसे अशातावेदनीय कहते हैं।

दु ख करना शोक करना, पश्चाताप¹ करना, रोना, मारना पीटना ऐसे कामोंसे अशाता [दु ख देनेवाले] वेदनीयकर्म का बंध होता है।

सब जीवों पर दया करना, व्रत पालना, क्रोध नहीं करना, क्षमा धारण करना दान देना, ऐसे कामों से शाता [सुख देनेवाले] वेदनीय कर्म का बंध होता है।

= मोहनीय कर्म उसे कहते हैं, जिसके उदय से यह आत्मा अपने को भूल जाय और अपने से जुदी चीजों में लुभा जावे। जैसे शराब पीने वाला शराब पीकर अपने को भूल जाता है, उसे भले बुरे का कुछ ज्ञान नहीं रहता और न वह माई बहिन स्त्री पुत्रादिको पहिचान सकता है, इसी प्रकार मोहनीय कर्म इस जीव को भुला देता है। मोहनीय कर्म के उदय से इस जीव को अपने भले बुरे का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता और न वह बुरे काम करने से डरता है। काम, क्रोध, मान, माया लोभ आदि सब मोहनीय कर्म के उदय स होते हैं। सोहनने क्रोध में आकर मोहन को मार डाला, राम ने लोभ

१ परीक्षा में अथवा और किसी काम में सफलता न होने पर अथवा किसी स हार जाने पर पछताना।

में आकर गोविंद के माल को लूट लिया, इससे समझना चाहिये कि सोहन और राम के मोहनीय कर्म का उदय है।

सच्चे देव, शास्त्र, गुरु में दोष लगाने से, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा वगैरह करने से मोहनीय कर्म बँधता है।

आयु कर्म उसे कहते हैं, जो आत्मा को नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव के शरीरों में से किसी एक में रक्खे। इस कर्म के कारण जीव इस संसार में नाना प्रकार की योनियों में भ्रमण करता काल व्यतीत करता है।

जैसे एक मनुष्य का पैर काठ में (खोडे मे) फँसा हुआ है। अब वह काठ उस मनुष्य को उस स्थान पर रोके हुए है। जब तक उसका पैर काठ में फँसा रहेगा, तब तक वह मनुष्य दूसरी जगह नहीं जा सकता। इसी प्रकार आयु कर्म इस जीव को मनुष्य आदि के शरीर में रोके हुए है। जब तक वह आयु कर्म रहेगा तब तक यह जीव उसी शरीर में रहेगा। हमारा जीव इस मनुष्य आयु कर्म का उदय है और घोडे का जीव तिर्यंच शरीर में रुका हुआ है, उसके तिर्यंच आयु कर्म का उदय है।

बहुत हिंसा करनेसे, बहुत आरम्भ और परिग्रह रखने से नारक आयु बँधती है, अर्थात् ऐसा करने से यह जीव नरक में जाता है।

कपट छल करने से तिर्यंच होता है। थोडा आरम्भ और थोडा परिग्रह रखने से मनुष्य होता है।

व्रत उपवास वगैरह करने से, शान्तिपूर्वक भूख, प्यास गर्मी सर्दी की बाधा सहनेसे देव होता है।

नामकर्म उसे कहते हैं—जो आत्माको अनेक प्रकार परिण मावे, अर्थात जिसके उदय होने से तरह तरह के शरीर और उसके अंगोपांग बनें। जैसे चित्रकार (चितरा) अनेक प्रकार के चित्र बनाता है। कोई मनुष्यका, कोई हाथी का, कोई स्त्री का, कोई बैलका, किसी का हाथ लम्बा, किसी का छोटा, कोइ कुबड़ा, कोइ बौना, इसी प्रकार नाम कर्म इस जीव को कभी सुन्दर, कभी चपटी नाकवाला, कभी लम्बे दांतवाला, कभी कुबड़ा, कभी बौना, कभी काला कभी गोरा कभी सुरीली आवाजवाला, कभी मोटी आवाजवाला अनेक रूपसे परिणमाता है। हमारा शरीर और आंख नाक कान वगैरह सब नाम कर्म के उदय से बने हैं।

घमंड करना, आपस में लड़ना, झूठे देवों का मानना, चुगली खाना, किसी की नकल करना, किसीका बुरा सोचना वगैरह कामों से अशुभ नाम कर्म बंधता है।

आपस में मिलकर रहना, धर्मात्माको देखकर खुश होना न कभी किसी का बुरा सोचना, न बुरा करना मन वचन काय का सरल रखना, एसे कामों से शुभ नाम कर्म बंधता है

गोत्र कर्म उसे कहते है—जो इस जीव को ऊंचे अथवा नीच कुल में पैदा करे। जैसे कुम्हार छोटे बड़े सब तरह के बरतन बनाता है, उसी प्रकार गोत्र कर्म इस जीव को ऊँचा अथवा नीचा बना देता है। उच्च गोत्र के उदय से अच्छे चरित्र वाले लोकमान्य कुल में पैदा होता है और नीच गोत्र के उदयसे खोटे आचरणवाले लोकनिंद्य कुलमें पैदा होता है, जहाँ हिंसा झूठ चोरी वगैरह बुरे कर्म करता है।

दूसरे की निन्दा और अपनी प्रशंसा करने से, देव गुरु शास्त्र का अविनय करने से अपनी जाति, कुल, रूप, बल, विद्या का घमंड करने से नीच गोत्र बंधता है।

दूसरों की प्रशंसा करने, स्वयं विनीत भाव से रहने और अहंकार नहीं करने से ऊँच गोत्र बँधता है।

अन्तराय कर्म उसे कहते हैं—जिसके उदय से किसी कार्य में विघ्न आ जाय अथवा जो किसी कार्य में विघ्न डाले। जैसे किसी महाराजा ने किसी विद्यार्थी के लिये १०० रु० देने की आज्ञा दी, परतु खजानची साहब ने कुछ गडबड़ करके अथवा कुछ बहाना बना करके वह रुपया नहीं दिया। अर्थात् विद्यार्थी क १०० रु० मिलने में खजानची साहब विघ्नरूप होगये। इसी प्रकार अन्तराय कर्म कार्यों में विघ्न किया करता है। मोहन रोटी खा रहा था, अकस्मात् बंदर आकर हाथ से रोटी छीन ले गया तो मोहनके अन्तराय कर्म का उदय समझना चाहिये।

कोई को लाभ होता हो उसे न होने देना, बालकों को विद्या न पढ़ाना अपने आधीन नौकर चाकर को धर्म सेवन न करने देना, दान देते हुए को रोक देना, दूसरे की भोगने योग्य वस्तुओं को बिगाड देना, ऐसे कामों से अंतराय कर्म बंधता है।

२१

पर्याप्ति.

सचित पुद्गलोंको यथा योग्य परिणमन करनेकी एक शक्ति विशेषको पर्याप्ति कहते हैं। ये छः प्रकारकी होती है। (१)

आहार, [२) शरीर, (३) इन्द्रिय, [४] श्वासोच्छ्वास, [५] भाषा, और [६] मन]

१ आहारक वर्गणा ग्रहण कर उसका रस बनानेकी शक्तिको आहारपर्याप्ति कहते हैं।

२ रसका खून, मांस, मेद मज्जा, अस्थि और वीर्य ऐसे सात धातु बना शरीर बनानेवाली शक्तिको शरीरपर्याप्ति कहते हैं।

३ धातुसे स्पर्श, रसनादि द्रव्य-इन्द्रियाँ बनानेकी जो शक्ति विशेष उसे इन्द्रिय-पर्याप्ति कहते हैं।'

४ श्वासोच्छ्वास योग्य पुद्गल-वर्गणाओंको ग्रहण कर उन्हें श्वासोच्छ्वासके रूपमें बदलनेकी शक्तिको श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति कहते हैं।

५ भाषायोग्य पुद्गल-वर्गणाओंको ग्रहण कर उन्हें भाषाके रूपमें बदलनेकी शक्तिको भाषा पर्याप्ति कहते हैं।

६ मनयोग्य पुद्गल वर्गणाओंको ग्रहण कर उन्हें मनके रूपमें परिणमन करनेकी शक्तिको मन पर्याप्ति कहते हैं

१२
शरीर

देह ' को शरीर कहते है

शरीर पाँच होते हैं। (१) औदारिक, [२] वैक्रियक, ३] आहारक (४] तैजस और [५] कार्माण।

१ मनुष्यों और पशु पक्षि आदि जीवजन्तुओंके शरीर औदारिक शरीर कहलाता है।

२ जो शरीर छोटा और बडा हो सकता है; बदल सकता है; उसे वैक्रायिक शरीर कहते हैं। देवता और नारकियोंके वैक्रियक शरीर ही होते है।

३ मुनियोंको शंका होती है, तब उनके शरीरसे एक पुतला सर्वज्ञोंसे प्रश्न पूछनेको जानेके लिए निकलता है; वह आहारक शरीर कहलाता है।

४ आहारको पचानेवाला तैजस शरीर होता है।

५ कर्मपरमाणुओंका समुदाय—जिनका आत्माके साथ संबंध है—कार्माण शरीर कहलाता है।

१३

योग.

मन, वचन और शरीरकी क्रियाको याग कहते हैं।

योग पन्द्रह प्रकारके होते है। चार मनोयोग, चार वचन-योग और सात काययोग।

१ जैसा देखा जैसा सुना वैसाहि सच्चा सोंचना, सत्य मनयोग हैं।

२ देखा या सुना उससे उल्टा—मिथ्या सोंचना, असत्य मनोयोग है।

३ कुछ सच्चा और कुछ झूठा विचार करना मिश्र मनोयोग है.

४ सत्य भी नहीं और असत्य भी नहीं ऐसा गोलमोल विचार करना व्यवहार मनोयोग है।

५ जैसा देखा सुना या विचारा वैसाही बोलना, सत्य-वचन योग है ।

६ सत्यसे विपरीत-झूठ-बोलना असत्यवचन योग है ।

७ कुछ सत्य और कुछ झूठ बात कहना मिश्र वचनयोग है।

८ सत्य भी नहीं और झूठ भी नहीं-गोलमाल बात कहना व्यवहार वचनयोग है ।

९ मनुष्यों और तिर्यंचोंकी उत्पत्तिके समय औदारिक शरीर बनानेमें जो योग होता है, उसे औदारिक मिश्र काययोग कहते हैं ।

१० औदारिक शरीरसे जो योग होता है उसे औदारिक काय योग कहते हैं ।

११ देवताओं और नारकियोंकी उत्पत्तिके समय वैक्रिय शरीर बनानेमें जो योग होता है उसे वैक्रिय-मिश्र काययोग कहते हैं ।

१२ वैक्रिय शरीरसे जो योग होता है उसे वैक्रिय काय योग कहते हैं ।

१३ मुनियों को आहारक शरीर बनानेमें जो क्रिया करनी पड़ती है उसे आहारक-मिश्र काययोग कहते हैं ।

१४ आहारक शरीरसे जो क्रिया होती है उसे आहारक काय योग कहते हैं ।

१५ जिससे कर्म परमाणु आनेकी क्रिया होती है उसे कार्माण काययोग कहते हैं ।

१४

उपयोग ।

किसी चीजको जाननेके लिए आत्माकी जो क्रिया होती है उसे उपयोग कहते हैं ।

उपयोग बारह होते हैं। आठ ज्ञानोपयोग और चार दर्शनोपयोग ।

१ पाँच इन्द्रियोंमेंसे किसी एक इन्द्रीके द्वारा और मनके द्वारा जो बात जानी जाती है उसे मतिज्ञान कहते हैं ।

२ शास्त्रोंके पढनेसे, सुननेसे अथवा मनन करनेसे जो ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते है ।

३ अमुक सीमामें रहे हुए पौद्गलिक पदार्थोंका इन्द्रियोंकी सहायताके विना ज्ञान होना अवधिज्ञान कहलाता है ।

४ ढाई द्वीपके अंदरके मनुष्यों और तिर्यंचोंके मनकी बात विना इन्द्रियोंकी सहायताके जिस ज्ञानसे जानी जाती है; उसे मनःपर्यव ज्ञान कहते हैं ।

५ इन्द्रियोंकी सहायताके विना रूपी और अरूपी सब तरहके पदार्थोंका जिससे ज्ञान होता है, उसे केवलज्ञान कहते हैं ।

६ मिथ्यात्व सहित मतिज्ञानको–जिससे वस्तुस्वरूप ठीक ठीक नहीं विचारा जाता है–मतिअज्ञान कहते हैं ।

७ मिथ्यात्व सहित श्रुतज्ञानको–जिससे वस्तुका सत्य-स्वरूप नहीं जाना जाता है–श्रुत अज्ञान कहते हैं ।

८ मिथ्यात्व सहित अवधिज्ञानका-जिससे अमुक हदतकके पदार्थ आत्मासे जान जाते हैं, उस जाननेमें फरक हो जाता है-उसे विभंग-ज्ञान कहते हैं।

९ आँखसे देखना-आँखसे वस्तुका सामान्य ज्ञान होना-चक्षुदर्शन कहलाता है।

१० आँख बिना शेष चार इन्द्रियोंसे वस्तुका जो सामान्य ज्ञान होता है, उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं।

११ अमुक सीमाके अंदर रही हुई रूपी चीजोंका जो सामान्य ज्ञान होता है, उसे अवधिदर्शन कहते हैं।

१२ संसारके रूपी और अरूपी सब पदार्थोंको सामान्य रीतिसे जानना केवल दर्शन है।

२५

गुणस्थान

आचरण और भावोंके द्वारा जीवोंकी जो स्थिति होती है उसे गुण-स्थान कहते हैं।

गुणस्थान चौदह होते हैं। (१) मिथ्यात्व, (२) सास्वादन, (३) मिश्र, [४] अविरति सम्यग्दृष्टि, [५] देश विरति (६) प्रमत्त (७) अप्रमत्त, [८] निवृत्तिकरण, (९) अनिवृत्तिकरण, (१०) सूक्ष्म संपराय, (११) उपशांतमोह, (१२) क्षीणमोह, [१३] सयोगी केवली, और [१४] अयोगी केवली।

१ वस्तुके असली स्वरूपको न मानकर विपरीत (उल्टा)

माननेवालेको मिथ्यात्वी कहते हैं। उसकी स्थितिका नाम मिथ्यात्व गुणस्थान है।

२ सम्यक्त्वसे गिरनेपर बीचमें भावोंकी थोडे समयतक जो स्थिति होती है, उसे सास्वादान गुणस्थान कहते है।

३ सत्य और असत्य दोनोंको समान ही समझनेवालोंकी स्थिति जहाँ होती है, अर्थात् जहाँ वास्तविक तत्त्वसे स्नेह नहीं होता और मिथ्यात्वसे अप्रीति नहीं होती; ऐसी स्थितिको मिश्र गुणस्थान कहते है।

४ जिस स्थितिमें देव, गुरु और धर्मके ऊपर श्रद्धानतो होता है, परंतु व्रत प्रत्याख्यान–पच्चक्खाण–नहीं होता उसको सम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहते हैं।

५ जिस स्थितिमें थोडा–एक देश–त्याग होता है–व्रत होता है–उसको देशविरति गुणस्थान कहते है। इस गुणस्थानवाले-को अणुव्रती भी कहते हैं।

६ पाँच महाव्रतोंका जिस स्थितिमे सप्रमाद पालन किया जाता है उसको सर्व विरति या प्रमत्त गुणस्थान कहते है

७ विशेष उत्तम भाव जिस स्थितिमें होते हैं–प्रमाद रहित व्रतोंका जिसमें पालन किया जाता है–उसको अप्रमत्त गुण-स्थान कहते हैं।

८ जिस स्थितिमें अपूर्व (जो पहिले कभी नही आये हों ऐसे) निर्मल भाव आते हैं उसको अपूर्व करण या निवृत्ति-करण, गुणस्थान कहते हैं।

९ जिस स्थितिमें लोभके स्थूल–मोटे–विभाग (खंड टुकड़े) करके दाब दिये जाते हैं या नष्ट कर दिये जाते हैं उसको अनिवृत्तिकरण या बादर सम्पराय गुणस्थान कहते हैं।

१० जिस स्थितिमें लोभके सूक्ष्म (छोटे) विभाग करके दबा दिये जाते हैं या नष्ट कर दिये जाते हैं उसको सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान कहते हैं।

११ जिस स्थितिमें मोहनीय कर्म दबा हुआ [सत्तामें] रहता है परन्तु उदयमें नहीं आता उसको उपशान्तमोह गुणस्थान कहते हैं।

१२ जिस स्थितिमें मोहनीय कर्म सर्वथा नष्ट हो जाता है उसको क्षीण मोह गुणस्थान कहते हैं।

१३ तीर्थंकरों और अन्य सामान्य केवलियोंकी स्थितिको–जिसमें योग रहते हैं–सयोगी केवली गुणस्थान कहते हैं।

१४ मोक्ष जानेके कुछ काल पहिलेकी स्थितिको जिसमें योग सर्वथा रुक जाता है–अयोगी केवली गुणस्थान कहते हैं।

१६

आत्मा

आत्मा जीव–आठ प्रकारके होते हैं। [१] द्रव्यात्मा [२] कषायात्मा, [३] योगात्मा, (४) उपयोगात्मा, [५] ज्ञानात्मा, [६] दर्शनात्मा, (७) चारित्रात्मा और [८] वीर्यात्मा।

१ शरीर कुटुंब और धनादिको जो अपना मानता है उसे द्रव्यात्मा कहते हैं।

२ क्रोध, मान, माया, और लोभके अंदर रहनेवाले को कषायात्मा कहते हैं।

३ मन, वचन और कायासे क्रिया करनेवालेको योगात्मा कहते हैं।

४ बारह प्रकारके (८ प्रकारके ज्ञान और ४ प्रकारके दर्शन) उपयोगोंमें वर्ताव करनेवालेको उपयोगात्मा कहते हैं।

५ ज्ञानमें रमण करनेवालेको ज्ञानात्मा कहते हैं।

६ दर्शनमें रमण करनेवालेको दर्शनात्मा कहते हैं।

७ चारित्रमें रमण करनेवाले आत्माको चारित्रात्मा कहते हैं।

८ वीर्यमें—आत्मिक शक्ति विशेषमें—वर्ताव करनेवालेको वीर्यात्मा कहते हैं।

१७

लेश्या।

जीवके परिणामोंकी एक झाँई—परिछाया—विशेषको लेश्या कहते है। इसके छः भेद हैं। (१) कृष्ण [२] नील (३) कापोत (४) तेज [५] पद्म और [६] शुक्ल।

ये छहों लेश्याएँ निम्नलिखित उदाहरणसे भलीभाँति समझमें आ जायँगी।

जामुन खानेके लिये ६ आदमी वृक्षके नीचे आये। उनमेंसे एकने कहा:—" सारा वृक्ष ही जड़से काट दो।" दूसरा बोला:—" तना-धड रहने दो और सब काटलो।" तीसरेने कहा:—" जिन टहनियोंपर जामुन लग रहे हैं उन्हें काट लो।",

चौथा बोला —" टहनियाँ क्यों काटते हो ? जामुनके गुच्छे तोड़लो।" छठेने कहा—" पक हुए जामुन नीचे, पड़े हैं उन्हींको खालो। "इनमें जड़से उखाड़नेवालेकी कृष्ण लेश्या है; मोटी २ डालियाँ काटनेके भाववालेकी नील लेश्या है; टहनियाँ काटनेके भाववालेकी कापोत लेश्या है; गुच्छे तोड़नेके भाववालेकी तेजो लेश्या है; पके पके जामुन, तोड़लेनेके भाववालेकी पद्म लेश्या है और नीचे पड़े हुए खानेवालेकी शुक्ल लेश्या है।

१८

दृष्टि।

दृष्टि, श्रद्धान या विश्वासको कहते हैं। यह तीन तरहकी है। [१] मिथ्यादृष्टि, (२) मिश्रदृष्टि और [३] सम्यग्दृष्टि।

१ सच तत्त्वको झूठा और झूठेको सच्चा मानना मिथ्यादृष्टि है।

२ सच और झूठ दोनों तरहके तत्त्वोंको समान देखना मिश्र दृष्टि है। इसे सम्यग्मिथ्या दृष्टि भी कहते हैं।

३ सच तत्त्वको सच्चा और झूठको झूठा मानना सम्यग्दृष्टि है।

१९

राशि।

जगत्‌में राशि (समूह) दो हैं। (१) जीवराशि, [२] अजीव राशि।

१ जितने भी चेतन पदार्थ हैं वे जीव राशिमें हैं। जैसे मनुष्य, हाथी, घोडे आदि।

२ जितने भी अचेतन पदार्थ हैं वे अजीव राशिमें हैं। जैसे मकान, चार पाई, बिछौना आदि।

२०

निक्षेप.

पदार्थमें आरोपण करनेका नाम निक्षेप है। ये चार प्रकारकारका होता है। [१] नाम, [२] स्थापना, [द्रव्य और [४] भाव।

१ किसी पदार्थको उसके आकार गुण, जाति या क्रियाकी अपेक्षा विना अमुक संज्ञासे पहिचानना, नामनिक्षेप है।

२ उसी आकारके पदार्थमें या अन्य आकारके पदार्थमें वस्तुकी स्थापना करनेको स्थापना निक्षेप कहते हैं।

३ जिससे कार्य होता है, जिससे पर्याय बनती है उसे द्रव्य निक्षेप कहते हैं।

४ कार्य या पर्यायको भाव निक्षेप कहते हैं।

२१

अभक्ष्य।

जिन पदार्थोंके खानेसे त्रसजीवोंका घात होता हो, अथवा बहुत स्थावर जीवोंका घात होता हो। जो प्रमाद बढानेवाले हों, और जो अनिष्ट हों, तथा जो भले पुरुषोंके सेवन करने योग्य न हो, वे सब अभ्यच्च्य कहलाते हैं।

अभ्यक्ष्य—नहीं खाने योग्य—बाईस चीजें हैं। (१) बड़ का फल, (२) पीपलका फल [३] ऊँबरका फल, [४] पिपरीका फल, (५] कटुंबरका फल, [६] शहद, (७) मक्खन, [८] माँस [९] शराब (१० ओले, [११] विष (अफीम सोमल, संख्या आदि जहरी चीजें, [१२] सरदीकी ज्यादतीसे जमा हुआ बरफ, (१३) सब तरहकी कच्ची मिट्टी—नमक, [१४] रात्रि भोजन, [१५] बहुत बीजवाला फल, (१६] साधारण वनस्पति (कंद मूल आदि) (१७) आचार, [१८) विदल (कच्चे दही, दूध या छाछके साथ बसन, दाल आदि खाना], (१९) बैंगन, [२०] अजान फल, [२१] तुच्छ फल, (चनबेर आदि), और [२२] चलित रस (बासी भोजन आदि]

२२

अनुयोग।

अनुयोग चार तरहके हैं। [१] द्रव्यानुयोग, (२] गणितानुयोग, [३] चरणकरणानुयोग, और (४) धर्मकथानुयोग।

१ जिसमें छः द्रव्य, आठ कर्म नौ तत्त्व आदिका वर्णन हो उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं।

२ जिसमें द्वीप समुद्रादिके अन्दर आये हुए पर्वत, नदी, देश आदिकी लंबाई, चौड़ाई ऊँचाई, तथा संख्या आदिका वर्णन हो उसे गणितानुयोग कहते हैं।

३ जिसमें मुनियों और श्रावकोंके आचारका वर्णन हो उसे चरणकरणानुयोग कहते हैं।

४ जिसमें गत, उत्तम और धर्मात्मा स्त्री-पुरुषोंका वर्णन हो उसे धर्मकथानुयोग कहते हैं।

२३

समवाय।

समवाय [साथमें रहनेवाले कारण] पाँच हैं। [१] काल, (२) स्वभाव, (३) नियति, [४] कर्म, और [५] उद्यम।

१ जो जिसवक्त और जिस ऋतुमें होता हो वह उसी वक्त और उसी ऋतुमें हो उसे काल समवाय कहते हैं।

२ जिसका जैसा स्वभाव हो वह हमेशा वैसाही रहे, उसमें किसी तरहका परिवर्तन न हो उसे स्वभाव समवाय कहते हैं।

३ जो होनहार-भवितव्य-हो वही हो, उसे नियति समवाय कहते हैं।

४ सब कुछ पहिले किये हुए कर्मोंके अनुसार ही होना, कर्म समवाय है।

५ परिश्रम-उद्योग-करना उद्यम समवाय है।

२४

पाखंड।

जिसमें मिथ्या मार्ग-ठगीका मार्ग-हो उसे पाखंड कहते हैं। उसके मूल चार भेद हैं। (१) क्रियावाद, (२) अक्रियावाद, (३) विनयवाद और (४) अज्ञानवाद। इन्हीं-के तीन सौ तरेसठ भेद भी होते हैं।

(१) प्रत्यक्ष प्रमाण और [२] परोक्ष-प्रमाण ।

[१] मनसहित पाँचों इन्द्रियों द्वारा जो बात जानी जाती है वह प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाता है ।

[२] जो बातें-अनुमानसे, तर्कसे युक्तिसे या आगमसे [शास्त्राधारसे] जानी जाती हैं-उसका नाम परोक्ष प्रमाण है ।

२७

स्याद्वाद ।

" स्याद्वाद "—यह सिद्धान्त है-जो जैन शास्त्रोंका रहस्य समझनेकी असली कुंजी है । जिस पुरुषके हाथमें स्याद्वाद रूप हथियार है उसे कोइ पराजित नहीं करसकता । स्याद्वाद सिद्धान्त अकाट्य और अखण्ड है । जिसने न्यायशास्त्रमें गोता लगाया है, वही इसकी खूबीको समझ सकता है ।

अब " स्याद्वाद " क्या है ? सो बतलाते हैं ।

स्याद्वादका अर्थ है-वस्तुका भिन्न भिन्न दृष्टि-बिन्दुओंसे भिन्न २ करना देखना या कहना । एक ही वस्तुमें अमुक अमुक अपेक्षासे भिन्न भिन्न धर्मोंको स्वीकार करनेका नाम ' स्याद्वाद ' है । जैसे एक ही पुरुषमें पिता, पुत्र, चचा, मातृजा, मामा भानजा आदि व्यवहार माना जाता है वैसे ही एक ही वस्तुमें अनेक धर्म माने जाते हैं । एक ही वस्तुमें नित्यत्व और अनित्यत्व आदि विरुद्ध रूपसे दिखाई देते हुए धर्मोंका अपेक्षादृष्टिसे स्वीकार करनेका नाम ' स्याद्वाद दर्शन ' है ।

एक ही पुरुष अपने पिताकी अपेक्षा पुत्र, अपने पुत्रकी अपेक्षा पिता, अपने भतीजे और भानजेकी अपेक्षा चचा और

मामा एवं अपने चचा और मामाकी अपेक्षा भतीजा और भानजा होता है। प्रत्येक मनुष्य जानता है कि इस प्रकार परस्पर विरुद्ध दिखाई देनेवाली बातें भी भिन्न भिन्न अपेक्षाओंसे एक ही मनुष्यमें स्थित रहती हैं। इसी तरह नित्यत्व आदि परस्पर विरोधी धर्म भी एक ही घटमें भिन्न भिन्न अपेक्षाओंसे क्यों नहीं माने जा सकते हैं?

पहिले इस बातका विचार करना चाहिए कि 'घट' क्या पदार्थ है? हम देखते है कि एक ही मिट्टीमेंसे घडा, कूँडा, सिकोरा आदि पदार्थ बनते हैं। घडा फोड दो और उसी मिट्टीसे बने हुए कूडेको दिखाओ। कोई उसको घडा नहीं कहेगा। क्यों? क्यों मिट्टी तो वही है? कारण यह है कि उसकी सूरत बदल गई। अब वह घडा नहीं कहा जा सकता है। इससे सिद्ध होता है कि 'घडा' मिट्टीका एक आकार-विशेष है। मगर यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि-आकार-विशेष मिट्टीसे सर्वथा भिन्न नहीं होता है। आकारसे परिवर्तित मिट्टी ही जब 'घडा' 'कूँडा' आदि नामोंसे व्यवहृत होती है, तब यह कैसे माना जा सकता है कि घडेका आकार और मिट्टी सर्वथा भिन्न है? इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि घडेका आकार और मिट्टी, ये दोनों घडेके स्वरूप है। अब यह विचारना चाहिए कि उभय स्वरूपोंमें विनाशी स्वरूप कौनसा है और ध्रुव कौनसा? यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि घडेका आकार-स्वरूप' विनाशी है। क्योंकि घडा फूट जाता है। घडेका दूसरा स्वरूप जो मिट्टी है, वह अविनाशी

है। क्योंकि मिट्टीके कई पदार्थ बनते हैं, और टूट जाते हैं; परन्तु मिट्टी तो वह ही रहती है। ये बातें अनुभव सिद्ध हैं।

हम देख गये हैं कि घड़का एक स्वरूप विनाशी है और दूसरा ध्रुव। इससे सहजहीमें यह समझा जा सकता है कि विनाशी रूपसे घड़ा अनित्य है और ध्रुव रूपसे घड़ा नित्य है। इस तरह एक ही वस्तुमें नित्यता और अनित्यताकी मान्यता का रखनेवाले सिद्धान्तको 'स्याद्वाद' कहा गया है।

स्याद्वादका क्षेत्र उक्त नित्य और अनित्य इन दोही बातों में पर्याप्त नहीं होता है। सत्त्व और असत्त्व आदि[1] दूसरी, विरुद्धरूपमें दिखाई देनेवाली बातें भी स्याद्वादमें आ जाती हैं। घड़ा आँखोंसे प्रत्यक्ष दिखाई देता है, इससे यह तो अनायास ही सिद्ध हो जाता है कि वह 'सत्' है। मगर न्याय कहता है कि अमुक दृष्टिसे वह 'असत्' भी है।

यह बात खास विचारणीय है कि, प्रत्येक पदार्थ जो 'सत्' कहलाता है किस लिए? रूप, रस, आकार आदि अपने ही गुणोंसे-अपने ही धर्मोंसे-प्रत्येक पदार्थ सत् होता है। दूसरेके गुणोंसे कोई पदार्थ 'सत्' नहीं हो सकता है। जो बाप कहता है, वह अपने पुत्रसे, किसी दूसरेके पुत्रसे नहीं। यानी खास पुत्र ही पुरुषको बाप कहता है; दूसरेका पुत्र उस को बाप नहीं कह सकता। इस तरह जैसे-स्वपुत्रकी अपेक्षा जो पिता होता है वही पर पुत्रकी अपेक्षा अपिता होता है;

१—अस्तित्व और नास्तित्व।

वैसे ही अपने गुणोंसे—अपने धर्मोंसे—अपने स्वरूपसे जो पदार्थ ' सत् ' है, वही पदार्थ दूसरेके धर्मोंसे—दूसरोंमें रहे हुए गुणोंसे—दूसरोंके स्वरूपसे ' सत् ' नही हो सकता है। जब ' सत् ' नहीं हो सकता है, तब यह वात स्वतः सिद्ध हो जाती है कि वह ' असत् ' होता है।

इस तरह भिन्न भिन्न अपेक्षाओंसे ' सत् ' को ' असत् ' कहनेमें विचारशील विद्वानोंको कोई बाधा दिखाई नहीं देगी। ' सत् ' को भी ' सत् ' पनेका जो निषेध किया जाता है, वह ऊपर कहे अनुसार अपनेमें नहीं रही हुई विशेष धर्मकी सत्ताकी अपेक्षासे। जिसमें लेखनशक्ति या वक्तृत्वशक्ति नहीं है, वह कहता है कि— ' मैं लेखक नहीं हूँ। " या " मैं वक्ता नहीं हूँ। " इन शब्दप्रयोगोंमे ' मैं ' और साथ ही ' नहीं ' का उच्चारण किया गया है, वह ठीक है। कारण, हरेक समझ सकता है कि यद्यपि ' मैं ' स्वयं ' सत् ' हूँ, तथापि मुझमें लेखन या वक्तृत्वशक्ति नहीं है इसलिए उस शक्तिरूपसे " मैं नहीं हूँ "। इस तरह अनुसंधान करनेसे सर्वत्र एक ही व्यक्तिमें ' सत्त्व ' और ' असत्त्व ' का स्याद्वाद बराबर समझमें आ जाता है।

स्याद्वादके सिद्धान्तको हम और भी थोडा स्पष्ट करेंगे— सारे पदार्थ उत्पत्ति, स्थिति और विनाश, ऐसे तीन धर्म वाले हैं। उदाहरणार्थ—एक स्वर्णकी कंठी लो। उसको तोड़-

---

१—" उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत्। " तत्त्वार्थसूत्र, ' उमास्वाति ' वाचक।

कर डोरा बना डाला। इस बातको हरेक समझ सकता है कि कंठी नष्ट हुई और डोरा उत्पन्न हुआ। मगर यह नहीं कहा जा सकता है कि, कंठी सर्वथा नष्ट ही हो गई है और, डोरा बिलकुल ही नवीन उत्पन्न हुआ है। डोरेका बिलकुल ही नवीन उत्पन्न होना तो उस समय माना जा सकता है जब कि उसमें कंठीकी कोई चीज आई ही न हो। मगर जब कि कंठीका सारा स्वर्ण डोरेमें आ गया है; कंठीका आकार-मात्र ही बदला है; तब यह नहीं कहा जा सकता है कि डोरा बिलकुल नया उत्पन्न हुआ है। इसी तरह यह मानना होगा कि कंठी भी सर्वथा नष्ट नहीं हुई है। कंठीका सर्वथा नष्ट होना तबही माना जा सकता है जब कि कंठीकी कोई चीज बाकी न बची हो। परन्तु जब कि कंठीका सारा स्वर्ण ही डोरेमें आ गया है तब यह कैसे कहा जा सकता है कि कंठी सर्वथा नष्ट हो गई है। इससे यह स्पष्ट हो गया कि, कंठीका नाश उसके आकारका नाश मात्र है और डोरेकी उत्पत्ति उसके आकारकी उत्पत्ति मात्र है और कंठी और डोरेका स्वर्ण एक ही है। कंठी और डोरा एक ही स्वर्णके आकार-भेदके सिवा दूसरा कुछ नहीं है।

इस उदाहरणसे यह भली प्रकार समझमें आ गया कि कंठीको तोड़ कर डोरा बनानेमें-कंठीके आकारका नाश, डोरेके आकारकी उत्पत्ति और स्वर्णकी स्थिति इस प्रकार उत्पाद नाश और ध्रौव्य, (स्थिति) तीनों धर्म बराबर हैं इसी तरह घड़को फोड़कर ईंटा बनाये हुए उदाहरणको भी समझ लेना चाहिए। पर जब गिर जाता है तब जिन पदार्थोंसे

घर बना होता है वे चीजें कभी सर्वथा विलीन नहीं होती हैं। वे सब चीजें स्थूल रूपसे अथवा अन्ततः परमाणु रूपमें तो अवश्यमेव जगत्में रहती ही हैं। अतः तत्त्वदृष्टिसे यह कहना अघटित है कि घर सर्वथा नष्ट हो गया है। जब कोई स्थूल वस्तु नष्ट हो जाती है तब उसके परमाणु दूसरी वस्तुके साथ मिलकर नवीन परिवर्तन खडा करते हैं। संसारके पदार्थ संसारहीमें, इधर उधर, विचरण करते हैं; जिससे नवीन नवीन रूपोंका प्रादुर्भाव होता है। दीपक बुझ गया, इससे यह नहीं समझना चाहिए कि वह सर्वथा नष्ट हो गया है। दीपकका परमाणु-समूह वैसाका वैसा ही मौजूद है। जिस परमाणु संघातसे दीपक उत्पन्न हुआ था, वही परमाणु-संघात, दूसरा रूप पा जानेसे, दीपक-रूपमें न दीखकर, अंधकार-रूपमें दीखता है; अन्धकार रूपमें उसका अनुभव होता है। सूर्यकी किरणोंसे पानीको सूखा हुआ देखकर, यह नहीं समझ लेना चाहिए कि पानीका अत्यंत अभाव हो गया है। पानी, चाहे किसी रूपमें क्यों न हो, बराबर स्थित है। यह हो सकता है कि, किसी वस्तुका स्थूलरूप नष्ट हो जाने पर उसका सूक्ष्म रूप दिखाई न दे, मगर यह नहीं हो सकता कि उसका सर्वथा अभाव ही हो जाय। यह सिद्धान्त अटल है कि न कोई मूल वस्तु नवीन उत्पन्न होती है और न किसी मूल वस्तुका सर्वथा नाश ही होता है, दूधसे बना हुआ दही, नवीन उत्पन्न नहीं हुआ। यह दूधहीका परिणाम है। इस बातको सब जानते हैं कि दुग्धरूपसे नष्ट होकर दही रूपमें आनेवाला पदार्थ भी दुग्धहीकी तरह 'गोरस' कहलाता है। अत एव

गोरसका त्यागी दुग्ध और दही दोनों चीजें नहीं खा सकता है। इससे दूध और दहीमें जो साम्य है वह अच्छी तरह अनुभवमें आ सकता है।[1] इसी प्रकार सब जगह समझना चाहिए कि, मूलतत्त्व सदा स्थिर रहते हैं, और इसमें जो अनेक परिवर्तन होते रहते हैं; यानी पूर्वपरिणामका नाश और नवीन परिणामका प्रादुर्भाव होता रहता है वह विनाश और उत्पाद है। इससे सारे पदार्थ उत्पत्ति, विनाश और स्थिति (ध्रौव्य) स्वभाववाले प्रमाणित होते हैं। जिसका उत्पाद विनाश होता है उसको जैनशास्त्र 'पर्याय' कहते हैं। जो मूल वस्तु सदा स्थायी है, वह 'द्रव्य' के नामसे पुकारी जाती है। द्रव्यसे (मूल वस्तुरूपसे) प्रत्येक पदार्थ नित्य है, और पर्यायसे अनित्य है। इस तरह प्रत्येक पदार्थको न

१—" पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः ।
अगोरसव्रतो नोभे तस्माद् वस्तु त्रयात्मकम् " ॥

—शास्त्रवार्तासमुच्चय हरिभद्रसूरि

" उत्पन्नं दधिभावेन नष्टं दुग्धतया पयः ।
गोरसत्वात् स्थिरं जानन् स्याद्वादद्विड् जनोऽपि कः ? ॥

—अध्यात्मोपनिषद्, यशोविजयजी ।

२–विज्ञानशास्त्र भी कहता है कि, मूल प्रकृति ध्रुव स्थिर है और उससे उत्पन्न होनेवाले पदार्थ उसके रूपांतर–परिणामांतर हैं। इस तरह उत्पाद, विनाश और ध्रौव्यके जैन सिद्धान्तका, विज्ञान (Science) भी पूर्णतया समर्थन करता है।

एकान्त अनित्य बल्के नित्यानित्यरूपसे माननाही ' स्याद्वाद ' है।

इसके सिवा एक वस्तुके प्रति ' अस्ति ' , ' नास्ति ' ,का संबंध भी —जैसा कि उपर कहा गया है—ध्यानमें रखना चाहिये। घट (प्रत्येक पदार्थ) अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे ' सत् ' है और दूसरेके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे ' असत् ' है। जैसे- वर्षाऋतुमें, काशीमें जो मिट्टीका काला घडा बना है वह द्रव्यसे मिट्टी है—मृत्तिकारूप है, जलरूप नहीं है; क्षेत्रसे बनारसका है, दूसरे क्षेत्रोंका नही है; कालसे वर्षा—ऋतुका है दूसरी ऋतुओंका नहीं है और भावसे काले वर्णवाला है अन्य वर्णका नही है। संक्षेपमें यह है, कि प्रत्येक वस्तु अपने स्वरूपहीसे ' अस्ति ' कही जा सकती है, स्वरूपसे नही। जब वस्तु दूसरेके स्वरूपसे ' अस्ति ' नही कहलाती है तब उसके विपरीत कहलायगी। यानी ' नास्ति '।

स्याद्वादका एक उदाहरण और देंगे। वस्तुमात्रमें सामान्य और विशेष ऐसे दो धर्म होते है। सौ ' घडे ' होवें हैं उनमें ' घडा ' ' घडा , ऐसी एक प्रकारकी जो बुद्धि उत्पन्न होती है, वह यह बताती है कि तमाम घडोंमे सामान्यधर्म—एकरूपता है। मगर लोक उनमेंसे अपने भिन्न भिन्न घडे जब पहिचान कर उठा लेते है, तब यह मालूम होता है कि प्रत्येक घडेमें कुछ न कुछ पहिचानका चिन्ह है, यानी भिन्नता है। यह भिन्नता ही उनका विशेष—धर्म है। इस तरह सारे पदार्थोंमें सामान्य और विशेष धर्म हैं। ये दोनों धर्म सापेक्ष है; वस्तुसे अभिन्न हैं। अतः प्रत्येक वस्तुको सामान्य और विशेष धर्मवाली समझना ही स्याद्वाददर्शन है।

गोरसका त्यागी दुग्ध और दही दोनों चीजें नहीं खा सकता है। इससे दूध और दहीमें जो साम्य है वह अच्छी तरह अनुभवमें आ सकता है।' इसी प्रकार सब जगह समझना चाहिए कि, मूलतत्त्व सदा स्थिर रहते हैं, और इसमें जो अनेक परिवर्तन होते रहते हैं; यानी पूर्वपरिणामका नाश और नवीन परिणामका प्रादुर्भाव होता रहता है वह विनाश और उत्पाद है। इससे, सारे पदार्थ उत्पत्ति, विनाश और स्थिति (ध्रौव्य) स्वभाववाले प्रमाणित होते हैं। जिसका उत्पाद, विनाश होता है उसको जैनशास्त्र 'पर्याय' कहते हैं। जो मूल वस्तु सदा स्थायी है, वह 'द्रव्य' के नामसे पुकारी जाती है। द्रव्यसे (मूल वस्तुरूपसे) प्रत्येक पदार्थ नित्य है, और पर्यायसे अनित्य है। इस तरह प्रत्येक पदार्थको न

१—" पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः।
अगोरसव्रतो नोभे तस्माद् वस्तु त्रयात्मकम्" ॥

—शास्त्रवार्तासमुच्चय हरिभद्रसूरि

' उत्पन्नं दधिभावेन नष्टं दुग्धतया पयः।
गोरसत्वात् स्थिरं जानन् स्याद्वादद्विड् जनोऽपि कः ? ॥

—अध्यात्मोपनिषद्, यशोविजयजी।

२—विज्ञानशास्त्र भी कहता है कि, मूल प्रकृति ध्रुव स्थिर है और उससे उत्पन्न होनेवाले पदार्थ उसके रूपांतर-परिणामांतर हैं। इस तरह उत्पाद, विनाश और ध्रौव्यके जैन सिद्धान्तका, विज्ञान (Science) भी पूर्णतया समर्थन करता है।

एकान्त अनित्य वरके नित्यानित्यरूपसे माननाही 'स्याद्वाद' है।

इसके सिवा एक वस्तुके प्रति 'अस्ति', 'नास्ति', का संबंध भी—जैसा कि ऊपर कहा गया है—ध्यानमें रखना चाहिये। घट (प्रत्येक पदार्थ) अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे 'सत्' है और दूसरेके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे 'असत्' है। जैसे-वर्षाऋतुमें, काशीमें जो मिट्टीका काला घडा बना है वह द्रव्यसे मिट्टी है—मृत्तिकारूप है, जलरूप नहीं है; क्षेत्रसे बनारसका है, दूसरे क्षेत्रोंका नहीं है; कालसे वर्षा—ऋतुका है दूसरी ऋतुओंका नहीं है और भावसे काले वर्णवाला है अन्य वर्णका नहीं है। संक्षेपमें यह है, कि प्रत्येक वस्तु अपने स्वरूपहीसे 'अस्ति' कही जा सकती है, स्वरूपसे नहीं। जब वस्तु दूसरेके स्वरूपसे 'अस्ति' नहीं कहलाती है तब उसके विपरीत कहलायगी। यानी 'नास्ति'।

स्याद्वादका एक उदाहरण और देंगे। वस्तुमात्रमें सामान्य और विशेष ऐसे दो धर्म होते है। सौ 'घडे' होते हैं उनमें 'घडा' 'घडा', ऐसी एक प्रकारकी जो बुद्धि उत्पन्न होती है, वह यह बताती है कि तमाम घडोंमे सामान्यधर्म—एकरूपता है। मगर लोक उनमेंसे अपने भिन्न भिन्न घडे जब पहिचान कर उठा लेते हैं, तब यह मालूम होता है कि प्रत्येक घडेमें कुछ न कुछ पहिचानका चिन्ह है, यानी भिन्नता है। यह भिन्नता ही उनका विशेष—धर्म है। इस तरह सारे पदार्थोंमें सामान्य और विशेष धर्म हैं। ये दोनों धर्म सापेक्ष है; वस्तुसे अभिन्न हैं। अतः प्रत्येक वस्तुको सामान्य और विशेष धर्मवाली समझना ही स्याद्वाददर्शन है।

गोरसका त्यागी दुग्ध और दही दोनों चीजें नहीं खा सकता है। इससे दूध और दहीमें जो साम्य है वह अच्छी तरह अनुभवमें आ सकता है।' इसी प्रकार सब जगह समझना चाहिए कि, मूलतत्त्व सदा स्थिर रहते हैं, और इसमें जो अनेक परिवर्तन होते रहते हैं; यानी पूर्वपरिणामका नाश और नवीन परिणामका प्रादुर्भाव होता रहता है वह विनाश और उत्पाद है। इससे सारे पदार्थ उत्पत्ति, विनाश और स्थिति (ध्रौव्य) स्वभाववाले प्रमाणित होते हैं। जिसका उत्पाद, विनाश होता है उसको जैनशास्त्र 'पर्याय' कहते हैं। जो मूल वस्तु सदा स्थायी है, वह 'द्रव्य' के नामसे पुकारी जाती है। द्रव्यसे (मूल वस्तुरूपसे) प्रत्येक पदार्थ नित्य है, और पर्यायसे अनित्य है। इस तरह प्रत्येक पदार्थको न

१—"पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः ।
अगोरसव्रतो नोभे तस्माद् वस्तु त्रयात्मकम्" ॥

—शास्त्रवार्तासमुच्चय हारिभद्रसूरि

' उत्पन्नं दधिभावेन नष्टं दुग्धतया पयः ।
गोरसत्वात् स्थिरं जानन् स्याद्वादद्विड् जनोऽपि कः ? ॥

—अध्यात्मोपनिषद्, यशोविजयजी ।

२—विज्ञानशास्त्र भी कहता है कि, मूल प्रकृति ध्रुव स्थिर है और उससे उत्पन्न होनेवाले पदार्थ उसके रूपांतर—परिणामांतर है। इस तरह उत्पाद, विनाश और ध्रौव्यके जैन सिद्धान्तका, विज्ञान (Science) भी पूर्णतया समर्थन करता है।

जो संशयके स्वरूपको अच्छी तरह समझते हैं, वे स्याद्वादको संशयवाद कहनेका कभी साहस नहीं करते । कई वार रातमें, काली रस्सीको देखकर संदेह होता है कि–' यह सर्प है या रस्सी ?" दूसरे वृक्षके टूँठको देखकर संदेह होता है कि–'यह मनुष्य है या वृक्ष ?' ऐसी संशयकी अनेक बातें हैं, जिनका हम कईवार अनुभव करते हैं । इस संशयमें सर्प और रस्सी अथवा वृक्ष और मनुष्य दोनोंमेंसे एकभी वस्तु निश्चित नहीं होती है। पदार्थका ठीक तरहसे समझमें न आना ही संशय है । क्या कोई स्याद्वादमें इस तरहका संशय बता सकता है ? स्याद्वाद कहता है कि, एकही वस्तुको भिन्न भिन्न अपेक्षासे; अनेक तरहसे देखो । एक ही वस्तु अमुक अपेक्षासे 'अस्ति' है यह निश्चित बात है; और अमुक अपेक्षासे 'नास्ति' है यह भी बात निश्चित है । इसी तरह, एक वस्तु अमुक दृष्टिसे नित्य स्वरूपभी निश्चित है और अमुक दृष्टिसे अनित्यस्वरूप भी निश्चित है । इस तरह एक ही पदार्थको, परस्परमें विरुद्ध मालूम होनेवाले दो धर्मोंसहित होनेका जो निश्चय करना है, वही स्याद्वाद है । इस स्याद्वादको 'संशयवाद' कहना मानो प्रकाशको अंधकार बताना है ।

" स्याद् अस्त्येव घट " " स्याद् नास्त्येव घटः । "

" स्याद् नित्य एव घटः " " स्याद् अनित्य एव घटः "

स्याद्वादके 'एव' कार युक्त इन वाक्योंमें अमुक अपेक्षासे घट 'सत' ही है और अमुक अपेक्षासे घट 'असत' ही है ।

---

१ वास्तवमें विरुद्ध नहीं ।

२—'स्यात्' शब्दका अर्थ होता है—अमुक अपेक्षासे। { सत-

स्याद्वादके संबंधमें कुछ लोग कहते हैं कि, यह संशयवाद है निश्चयवाद नहीं। एक पदार्थको नित्य भी समझना और अनित्य भी, अथवा एक ही वस्तुको 'सत्' भी मानना और 'असत्' भी मानना संशयवाद नहीं है तो और क्या है? मगर विचारके लोगोंको यह कथन–यह प्रश्न अयुक्त जान पड़ता है।

१—स्याद्वादके विषयमें तार्किकोंकी तर्कणाएँ अतिप्रबल हैं। हरिभद्रसूरिने 'अनेकान्तजयपताका' में इस विषयका प्रौढ़ताके साथ विवेचन किया है।

२—गुजरातके प्रसिद्ध विद्वान् प्रो० आनंदशंकर ध्रुवने अपने एक व्याख्यानमें स्याद्वादके संबंधमें कहा था —स्याद्वादका सिद्धान्त अनेक सिद्धान्तोंको देखकर उनका समन्वय करनेके लिए प्रकट किया गया है। स्याद्वाद हमारे सामने एकीकरणका दृष्टिबिन्दु उपस्थित करता है। शंकराचार्यने स्याद्वाद के ऊपर जो आक्षेप किया है, उसका,–मूल रहस्यके साथ कोई संबंध नहीं है। यह निश्चय है कि विविध दृष्टि बिन्दुओं द्वारा निरीक्षण किये बिना किसी वस्तुका संपूर्ण स्वरूप समझमें नहीं आ सकता है। इसलिए स्याद्वाद उपयोगी और सार्थक है। महावीरके सिद्धान्तोंमें बताये गये स्याद्वादको कई संशयवाद बताते हैं। मगर मैं यह बात नहीं मानता। स्याद्वाद संशयवाद नहीं है। यह हमको एक मार्ग बताता है—यह हमें सिखाता है कि विश्वका अवलोकन किस तरह करना चाहिए।

काशीके स्वर्गीय महामहोपाध्याय राममिश्रशास्त्रीने स्याद्वादके लिए अपना जो उत्तम अभिप्राय दिया था उसके लिए उनका 'सुजन–सम्मेलन' शीर्षक व्याख्यान देखना चाहिए।

हिए । 'स्यात्' शब्दका अर्थ–'कदाचित्' 'शायद' या इसी

१—" इच्छन् प्रधानं सत्त्वाद्यैर्विरुद्धैर्गुम्फितं गुणैः ।
साख्य. सख्यावता मुख्यो नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् " ॥
—हेमचन्द्राचार्यकृत वीतरागस्तोत्र ।

२—" चित्रमेकमनेक च रूप प्रामाणिक वदन् ।
योगो वैशेषिको वापि नानेकान्त प्रतिक्षिपेत् " ॥
—हेमचन्द्राचार्यकृत वीतरागस्तोत्र ।

भावार्थ—नैयायिक और वैशेषिक एक चित्र रूप मानते हैं । जिसमें अनेक वर्ण होते है उसे चित्र रूप कहते हैं । इसको एकरूप और अनेकरूप कहना यह स्याद्वादकी सीमा है ।

३—" विज्ञानस्यैकमाकारं नानाऽऽकारकराम्बितम् ।
इच्छस्तथागत प्राज्ञो नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् " ॥
—हेमचन्द्राचार्यकृत वीतरागस्तोत्र ।

४—" जातिव्यक्त्यात्मक वस्तु वदन्ननुभवोचितम् ।
भट्टो वापि मुरारिर्वा नानेकान्त प्रतिक्षिपेत् " ॥
" अबद्ध परमार्थेन बद्ध च व्यवहारतः ।
ब्रुवाणो ब्रह्मवेदान्ती नानेकान्त प्रतिक्षिपेत् "
" ब्रुवाणा भिन्नभिन्नार्थान् नयभेदव्यपेक्षया ।
प्रतिक्षिपेयुर्नो वेदा स्याद्वाद सार्वतान्त्रिकम् " ॥
—यशोविजयजीकृत अध्यात्मोपनिषद् ।

भावार्थ—" जाति और व्यक्ति इन दो रूपोंसे वस्तुको बताने-

अमुक अपेक्षासे घट 'नित्य' ही है और अमुक अपेक्षासे घट 'अनित्य' ही है—इस प्रकार निश्चयात्मक अर्थ समझना चा

महीमें, आगे इसका विशेष विवेचन है] निष्पक्ष दृष्टिसे दर्शन शास्त्रोंका अवलोकन करनेवाले भली प्रकारसे समझ सकते हैं कि, प्रत्येक दर्शनकारको 'स्याद्वादसिद्धान्त' स्वीकारना पड़ा है। सत्व, रज, और तम, इन तीन परस्पर विरुद्ध गुणवाली प्रकृतिको माननेवाला सांख्य दर्शन; पृथ्वीको परमाणु रूपसे नित्य और स्थूलरूपसे अनित्य माननेवाला तथा द्रव्यत्व, पृथ्वीत्व आदि धर्मोंको सामान्य और विशेषरूपसे स्वीकार करनेवाला नैयायिक, वैशेषिक दर्शन; अनेक वर्णयुक्त वस्तुके अनेक वर्णाकारवाले एक चित्रज्ञानको, जिसमें अनेक विरुद्ध वर्ण प्रतिभासित होते हैं—माननेवाला बौद्ध दर्शन, प्रमाता, प्रमिति और प्रमेय आकारवाले एक ज्ञानको, जो इन तीन पदार्थोंका प्रतिभासरूप है, मंजूर करनेवाला मीमांसक दर्शन और अन्य प्रकारसे दूसरे भी स्याद्वादको अवश्य स्वीकार करते हैं। अन्तमें चार्वाकको भी स्याद्वादका आश्रयमें बंधना पड़ता है। जैसे—पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार तत्त्वोंके सिवा पाँचवा तत्त्व चार्वाक नहीं मानते। इस लिए चार तत्त्वोंमें उत्पन्न होनेवाले चैतन्यको चार्वाक चार तत्त्वोंसे अलग नहीं मान सकता है। चार्वाक यह भी मानता है कि, चैतन्यको पृथिव्यादिप्रत्येकतत्त्वरूप माना जाय तो घटादि पदार्थोंके चेतन बन जानेका दोष आ जाता है। अतएव चार्वाकका यह कथन है या चार्वाकको यह कहना चाहिए कि—चैतन्य, पृथिव्यादिअनेकतत्त्वरूप है। इस तरह एक चैतन्यको अनेकवस्तुरूप—अनेकतत्त्वात्मक मानना यह स्याद्वादहीकी मुद्रा है।

हिए। 'स्यात्' शब्दका अर्थ–'कदाचित्' 'शायद' या इसी

१—" इच्छन् प्रधानं सत्त्वाद्यैर्विरुद्धैर्गुम्फितं गुणैः।
सांख्य सख्यावता मुख्यो नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्" ॥

—हेमचन्द्राचार्यकृत वीतरागस्तोत्र।

२—" चित्रमेकमनेकं च रूपं प्रामाणिकं वदन्।
योगो वैशेषिको वापि नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्" ॥

—हेमचन्द्राचार्यकृत वीतरागस्तोत्र।

भावार्थ–नैयायिक और वैशेषिक एक चित्र रूप मानते है। जिसमें अनेक वर्ण होते है उसे चित्र रूप कहते हैं। इसको एकरूप और अनेकरूप कहना यह स्याद्वादकी सीमा है।

३—" विज्ञानस्यैकमाकारं नानाऽऽकारकरम्बितम्।
इच्छस्तथागत. प्राज्ञो नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्" ॥

—हेमचन्द्राचार्यकृत वीतरागस्तोत्र।

४—" जातिव्यक्त्यात्मकं वस्तु वदन्ननुभवोचितम्।
भट्टो वापि मुरारिर्वा नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्" ॥
" अबद्धं परमार्थेन बद्धं च व्यवहारतः।
ब्रुवाणो ब्रह्मवेदान्ती नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्"
" ब्रुवाणा भिन्नभिन्नार्थान् नयभेदव्यपेक्षया।
प्रतिक्षिपेयुर्नो वेदाः स्याद्वादं सार्वतान्त्रिकम्" ॥

—यशोविजयजीकृत अध्यात्मोपनिषद्।

भावार्थ—" जाति और व्यक्ति इन दो रूपोंसे वस्तुको बताने-

प्रकारके दूसरे संशयात्मक शब्दोंसे नहीं करना चाहिए। निश्चय शब्दमें संशयात्मक शब्दका क्या काम? घटको घटरूपसे समझना जितना यथार्थ है—निश्चयरूप है, उतनाही यथार्थ—निश्चयरूप, घटको अमुक अमुक दृष्टिसे अनित्य और नित्य दोनोंरूपसे, समझना है। इससे स्याद्वाद अव्यवस्थित या अस्थिर सिद्धान्त भी नहीं कहा जा सकता है।

अब वस्तुके प्रत्येक धर्ममें स्याद्वादकी विवेचना, जिसको 'सप्तभङ्गी' कहते हैं, की जाती है।

वाले भट्ट और मुरारि स्याद्वादकी उपेक्षा नहीं कर सकते हैं।" "आत्माको व्यवहारसे बद्ध और परमार्थसे अबद्ध माननेवाले ब्रह्मवादी स्याद्वादका तिरस्कार नहीं कर सकते हैं।" "भिन्न भिन्न नयोंकी विवक्षासे भिन्न भिन्न अर्थोंका प्रतिपादन करनेवाले वेद एवं तन्त्र सिद्ध स्याद्वादको धिक्कार नहीं दे सकते हैं।

५ यह ध्यानमें रखना चाहिए कि इस तरह माननेमें भी आत्मा की गरज पूरी नहीं होती है। और इस लिए आत्मादीपिके ग्रंथ देखने चाहिएँ। स्याद्वादके संबंधमें चार्वाककी सम्मति लेनी चाहिए या नहीं, इस विषयमें हेमचन्द्राचार्य वीतरागस्तोत्रमें लिखते हैं कि—

"सम्मतिर्विमतिर्वापि चार्वाकस्य न मृग्यते।
परलोकात्ममोक्षेषु यस्य मुह्यति शेमुषी" ॥

भावार्थ—स्याद्वादके संबंधमें चार्वाककी, जिसकी बुद्धि परलोक आत्मा और मोक्षके संबंधमें मूढ हो गई है, सम्मति या विमति [धर्मदर्शी या मार्गदर्शी] देखनेकी जरूरत नहीं है।

२८

सप्तभंगी.

ऊपर कहा जा चुका है कि 'स्याद्वाद' भिन्न भिन्न अपेक्षासे अस्तित्व-नास्तित्व, नित्यत्व-अनित्यत्व आदि अनेक धर्मोंका एकही वस्तुमें होना बताता है। इससे यह समझमें आता है कि वस्तुस्वरूप जिस प्रकारका हो, उसी रीतिसे उसकी विवेचना करनी चाहिये। वस्तुस्वरूपकी जिज्ञासावाले किसीने पूछा कि—"घडा क्या अनित्य है" उत्तरदाता यदि इसका यह उत्तर दे कि घडा अनित्य ही, है तो उसका यह उत्तर या तो अधूरा है या अयथार्थ है। यदि यह उत्तर अमुक दृष्टिबिन्दुसे कहा गया है तो वह अधूरा है। क्यों कि उसमें ऐसा कोई शब्द नहीं है जिससे यह समझमें आवे कि यह कथन अमुक अपेक्षासे कहा गया है। अतः वह उत्तर पूर्ण होनेके लिए किसी अन्य शब्दकी अपेक्षा रखता है। अगर वह संपूर्ण दृष्टिबिन्दुओंके विचारका परिणाम है तो अयथार्थ है। क्योंकि घडा (प्रत्येक पदार्थ) संपूर्ण दृष्टिबिन्दुओंसे विचार करनेपर अनित्यके साथही नित्य भी प्रमाणित होता है। इससे विचारशील समझ सकते हैं कि—वस्तुका कोई धर्म बताना हो तब इस तरह बताना चाहिए कि जिससे उसका प्रतिपक्षी धर्मका उसमेंसे लोप न हो जाय। अर्थात् किसी भी वस्तुको नित्य बताते समय, उस कथनमें कोई ऐसा शब्द भी जरूर आना चाहिए कि जिससे उस वस्तुके अंदर रहे हुए अनित्यत्व धर्मका अभाव मालूम न हो। इसी तरह किसी वस्तुको अनित्य बतानेमें भी

ऐसा शब्द अंदर रखना चाहिए कि जिससे उस वस्तुगत नित्यत्वका अभाव सूचित न हो'। संस्कृत भाषामें ऐसा शब्द 'स्यात्' है। 'स्यात्' शब्दका अर्थ होता है 'अमुक अपेक्षासे।' "'स्यात्' शब्द अथवा इसीका अर्थवाची 'कथंचित् शब्द' या अमुक अपेक्षासे' वाक्य जोडकर 'स्याद् नित्य एव घट'—" घट अमुक अपेक्षासे अनित्य ही है, इस तरह विवेचन करनेसे घटमें अमुक अन्य अपेक्षासे जा नित्यत्वधर्म रहा हुआ है, उसमें बाधा नहीं पहुँचती है। इससे यह समझमें आ जाता है कि वस्तुस्वरूपके अनुसार शब्दोंका प्रयोग कैसे करना चाहिए जैन शास्त्रकार कहते हैं कि वस्तुके प्रत्येक धर्मके विधान और निषेधसे संबंध रखनेवाले शब्दप्रयोग सात प्रकारके हैं। उदाहरणार्थ हम 'घट' को लेकर इसके अनित्यधर्मका विचार करेंगे।

प्रथम शब्द प्रयोग—'यह निश्चित है कि घट अनित्य है। मगर यह अमुक अपेक्षासे। इस वाक्यसे अमुक दृष्टिसे घटमें मुख्यतया अनित्य धर्मका विधान होता है।

दूसरा शब्दप्रयोग—' यह निश्चित है कि घट अनित्य धर्मरहित है मगर अमुक अपेक्षासे।" इस वाक्यद्वारा घटमें अमुक अपेक्षासे अनित्य धर्मका मुख्यतया निषेध किया गया है।

तीसरा शब्द प्रयोग—किसीने पूछा कि—'घट क्या अनित्य

---

१ इसी तरह 'अस्तित्व' आदि धर्मोंमें भी समझ लेना चाहिए।

२—'स्यात् शब्द या उसीका अर्थवाची दूसरा शब्द जोड़े बिनाभी व्यवहार होता है; मगर व्युत्पन्न पुरुषको सर्वत्र अभिप्राय-दृष्टिका अनुसंधान रहा करता है।

और नित्य दोनों धर्मवाला है ?" उसके उत्तरमें कहना कि-"हाँ, घट अमुक अपेक्षासे, अवश्यमेव नित्य और अनित्य है।" यह तीसरा वचन-प्रकार है। इस वाक्यसे मुख्यतया अनित्य धर्मका विधान और उसका निषेध, क्रमशः किया जाता है।

चतुर्थ शब्द प्रयोग-" घट किसी अपेक्षासे अवक्तव्य है।" घट अनित्य और नित्य दोनों तरहसे क्रमशः बताया जा सकता है, जैसा कि तीसरे शब्दप्रयोगमें कहा गया है। मगर यदि क्रम बिना-युगपत् (एक ही साथ) घटको अनित्य और नित्य बताना हो तो, उसके लिए जैनशास्त्रकारोंने, 'अनित्य' 'नित्य' या दूसरा कोई शब्द उपयोगमें नहीं आ सकता इसलिए 'अवक्तव्य' शब्दका व्यवहार किया है। यह है भी ठीक। घट जैसे अनित्य रूपसे अनुभवमें आता है। उसी तरह नित्य रूपसे भी अनुभवमें आता है। इससे घट जैसे केवल अनित्य रूपमें नहीं ठहरता वैसे ही केवल नित्य रूपमें भी घटित नहीं होता है। बल्के वह नित्यानित्यरूप विलक्षणजातिवाला ठहरता है। ऐसी हालतमें घटको यदि यथार्थ रूपमें नित्य और अनित्य दोनों तरहसे-क्रमशः नहीं किन्तु एक ही साथ-बताना हो तो शास्त्रकार कहते हैं कि इस तरह बतानेके लिए कोई शब्द नहीं है। अतः घट अवक्तव्य है।

---

१ शब्द एक भी ऐसा नहीं है कि जो नित्य और अनित्य दोनों धर्मोंको एक ही साथमें, मुख्यतया प्रतिपादन कर सके। इस प्रकारसे प्रतिपादन करनेकी शब्दोंमें शक्ति नहीं है। 'नित्यानित्य'

चार वचन-प्रकार बताए गये। उनमें मूल तो प्रारंभके दो ही हैं। पिछले दो वचन-प्रकार प्रारंभके दो वचनप्रकारके संयोगसे उत्पन्न हुए हैं। " कथंचित्–अमुक अपेक्षासे घट अनित्य ही है। ' " कथंचित्–अमुक अपेक्षासे घट नित्य ही है ' ये प्रारंभके दो वाक्य, जो अर्थ बताते हैं वही अर्थ तीसरा वचन प्रकार क्रमशः बताता है; और उसी अर्थको

यह समास-वाक्य भी क्रमहीसे नित्य और अनित्य धर्मोंका प्रतिपादन करता है। एक साथ नहीं। " सकृदुच्चरितः शब्दः सकृदर्थं गमयति " अर्थात् " एकं पदमेकदैकधर्मावच्छिन्नमेवार्थं बोधयति "। इस न्यायसे, " एक शब्द, एकबार एक ही धर्मको एक ही धर्ममे युक्त अर्थको प्रकट करता है " ऐसा अर्थ निकलता है। और इससे यह समझना चाहिए कि–सूर्य और चाँद इन दोनोंका वाचक पुष्पदन्त शब्द (ऐसे ही अनेक अर्थवाले दूसरे शब्द भी) सूर्य और चन्द्रको क्रमशः बोधन करता है, एक साथ नहीं। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यदि अनित्य नित्य धर्मोंको एक साथ बतलानेके लिए कोई नवीन सांकेतिक शब्द घड़ा जायगा तो उससे भी काम नहीं चलेगा।

यहाँ यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि एक ही साथमें, मुख्यतासे नहीं कहे जा सकें ऐसे अनित्यत्व–नित्यत्व धर्मोंका 'अवक्तव्य' रूपसे भी कथन नहीं हो सकता है किन्तु, वे धर्म मुख्यतया एक ही साथ नहीं कहे जा सकते हैं, इसलिए वस्तुमें 'अवक्तव्य' नामका धर्म प्राप्त होता है कि जो 'अवक्तव्य' धर्म 'अवक्तव्य' शब्दसे कहा जाता है।

चौथा वाक्य युगपत्–एक साथ बताता है। इस चौथे वाक्य पर विचार करनेसे यह समझमें आ सकता है कि, घट किसी अपेक्षासे अवक्तव्य भी है। अर्थात् किसी अपेक्षासे घटमें 'अवक्तव्य' धर्म भी है; परन्तु घटको कभी एकान्त अवक्तव्य नहीं मानना चाहिए। यदि ऐसा मानेंगे तो घट जो अमुक अपेक्षासे अनित्य और अमुक अपेक्षासे नित्य रूपमें अनुभवमें आता है, उसमें बाधा आ जायगी। अतएव ऊपरके चारों वचनप्रयोगोंको 'स्यात्' शब्दसे युक्त, अर्थात कथंचित्–अमुक अपेक्षासे, समझना चाहिए।

इन चार वचन प्रकारोंसे अन्य तीन वचन-प्रयोग भी उत्पन्न किये जा सकते हैं।

पाँचवाँ वचन-प्रकार–"अमुक अपेक्षासे घट अनित्य होनेके साथ ही अवक्तव्य भी है।"

छठा वचन प्रकार–"अमुक अपेक्षासे घट नित्य होनेके साथ ही अवक्तव्य भी है।"

सातवाँ वचन-प्रकार–"अमुक अपेक्षासे घट नित्य-अनित्य होनेके साथ ही अवक्तव्य भी है।"

सामान्यतया, घटका तीन तरहसे–नित्य, अनित्य और अवक्तव्यरूपसे–विचार किया जा चुका है। इन तीन वचन प्रकारोंके उक्त चार वचन-प्रकारोंको साथ मिला देनेसे सात वचनप्रकार होते हैं। इन सात वचन-प्रकारोंको जैन 'सप्तभंगी' कहते हैं। 'सप्त' यानी सात, और 'भंग' यानी वचनप्रकार। अर्थात् सात वचन-प्रकारके समूहको सप्तभंगी

कहते हैं । इन सातों वचन प्रयोगोंको भिन्न-भिन्न अपेक्षासे भिन्न भिन्न दृष्टिसे समझना चाहिए । किसीभी वचनप्रकारको एकान्त दृष्टिसे नहीं मानना चाहिए । यह बात तो सरलतासे समझमें आ सकती है कि, यदि एक वचन-प्रकारको एकान्त दृष्टिसे मानेंगे, तो दूसरे वचनप्रकार असत्य हो जायँगे[1] ।

यह सप्तभङ्गी (सात वचनप्रयोग) दो भागोंमें विभक्त की जाती है । एकको कहते हैं 'सकलादेश' और दूसरेको 'विकला

---

१ " सर्वत्राऽयं ध्वनिर्विधिप्रतिषेधाभ्यां स्वार्थमभिदधानः सप्तभङ्गीमनुगच्छति ।"

" एकत्र वस्तुनि एकैकधर्मपर्यनुयोगवशाद् अविरोधेन व्यस्तयोः समस्तयोश्च विधिनिषेधयोः कल्पनया स्यात्काराङ्किता सप्तधा वाक्प्रयोगः सप्तभङ्गी ।"

स्यादस्त्येव सर्वम् इति विधिकल्पनया प्रथमो भङ्गः ।"

" स्याद् नास्त्येव सर्वम्, इति निषेधकल्पनया द्वितीयः ।"

" स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव, इति क्रमतो विधिनिषेधकल्पनया तृतीयः ।"

" स्यादवक्तव्यमेव, इति युगपद्विधिनिषेधकल्पनया चतुर्थः ।"

" स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेव इति विधिकल्पनया युगपद् विधिनिषेधकल्पनया च पञ्चमः ।"

" स्याद् नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव इति निषेधकल्पनया युगपद् विधिनिषेधकल्पनया च षष्ठः ।"

" स्यादस्त्येव स्याद् नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव, इति क्रमतो विधिनिषेधकल्पनया युगपद्विधिनिषेधकल्पनया च सप्तमः ।"

—प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार ।

देश'। "अमुक अपेक्षासे घट अनित्यही है।" इस वाक्यसे अनित्य धर्मके साथ रहते हुए घटके दूसरे धर्मोंको बोधनकराने का कार्य 'सकलादेश' करता है। 'सकल' यानी तमाम धर्मोंको 'आदेश, यानी कहनेवाला। यह 'प्रमाणवाक्य भी कहा जाता है। क्योंकि प्रमाण वस्तुके तमाम धर्मोंको विषय करनेवाला माना जाता है। 'अमुक अपेक्षासे घट अनित्य ही है।" इस वाक्यसे घटके केवल 'अनित्य' धर्मको बतानेका कार्य 'विकलादेश' का है। 'विकल' यानी अपूर्ण। अर्थात् अमुक वस्तुधर्मको 'आदेश' यानी कहनेवाला 'विकलादेश' है। विकलादेश 'नय'-वाक्य माना गया है। 'नय' प्रमाणका अंश है। प्रमाण सम्पूर्ण वस्तुको ग्रहण करता है; और नय उसके अंशको।

इस बातको तो हरेक समझता है कि, शब्द या वाक्यका कार्य अर्थबोध करनेका होता है। वस्तुके सम्पूर्ण ज्ञानको 'प्रमाण' कहते हैं और उस ज्ञानको प्रकाशित करनेवाला वाक्य 'प्रमाणवाक्य' कहलाता है। वस्तुके अमुक अंशके ज्ञान को 'नय' कहते हैं और उस अमुक अंशके ज्ञानको प्रकाशित करनेवाला वाक्य 'नयवाक्य कहलाता है। इन प्रमाणवाक्यों और नयवाक्योंको सात विभागमें बाँटनेहीका नाम 'सप्तभंगी' है।[1]

१—यह विषय अत्यंत गहन है, विस्तृत है। **सप्तभंगीतरंगिणी** नामा जैन तर्कसंग्रहमें इस विषयका प्रतिपादन किया गया है। '**संमतिप्रकरण**' आदि जैन न्यायशास्त्रोंमें इस विषयका बहुत गंभीरतासे विचार किया गया है।

- अब नयका, थोडासा वर्णन, किया जायगा।

२९

नय।

एक ही वस्तुके विषयमें भिन्न भिन्न दृष्टिबिन्दुओंसे, उत्पन्न होनेवाले भिन्न भिन्न यथार्थ अभिलापाओंको ' नय' कहते हैं। एक ही मनुष्य भिन्न भिन्न अपेक्षाओंसे काका, मामा, भतीजा, भानजा, भाई, पुत्र, पिता, श्वसुर, और जमाई समझा जाता है, सो यह ' नय ' के सिवा और कुछ नहीं है। हम यह बता चुके हैं, कि वस्तुमें एकही धर्म नहीं है। अनेक धर्म वाली वस्तुमें अमुक धर्मसे संबंध रखनेवाला जो अभिप्राय बँधता है उसको जैनशास्त्रोंने ' नय ' संज्ञा दी है। वस्तुमें जितने धर्म है उनसे संबंध रखनेवाले जितने अभिप्राय है वे सब ' नय ' कहलाते हैं।

एक ही घट वस्तु मूल द्रव्य-मिट्टीकी अपेक्षा विनाशी नहीं है; नित्य है। परन्तु घटके आकाररूप परिणामकी दृष्टि से विनाशी है। इस तरह भिन्न भिन्न दृष्टि बिन्दुसे घटको नित्य और विनाशी माननेवाली दोनों मान्यतायें ' नय ' हैं।

इस बातको सब मानते हैं कि आत्मा नित्य है। और यह बात है भी ठीक; क्योंकि उसका नाश नहीं होता है। मगर इस बातका सबको अनुभव हो सकता है, कि उसका परिवर्तन विचित्र तरहसे होता है। कारण, आत्मा किसी समय पशु अवस्थामें होता है, किसी समय मनुष्य स्थिति प्राप्त करता

हैं; कभी देवगतिका भोक्ता बनता है और कभी नरकादि दुर्गतियोंमें जाकर गिरता है। यह कितना परिवर्तन है? एक ही आत्माकी यह कैसी विलक्षण अवस्था है? यह क्या बताती है? आत्माकी परिवर्तनशीलता। एक शरीरके परिवर्तनसे भी, यह समझमें आ सकता है कि, आत्मा परिवर्तनकी घट मालमें फिरता रहता है ऐसी स्थितिमें यह नहीं माना जा सकता है कि, आत्मा सर्वथा—एकान्तत नित्य है। अतएव यह माना जा सकता है कि आत्मा न एकान्ततः नित्य है; न एकान्ततः अनित्य है; बल्के नित्यानित्य है। इस दशामें आत्मा जिस दृष्टिसे नित्य है वह, और जिस दृष्टिसे अनित्य है वह, दोनों ही दृष्टियाँ 'नय' कहलाती हैं।

यह बात सुस्पष्ट और निस्सन्देह है कि, आत्मा शरीरसे जुदा है। तो भी यह ध्यानमें रखना चाहिए कि, आत्मा शरीरमें ऐसे ही व्याप्त हो रहा है जैसे कि मक्खनमे घृत। इसीसे शरीरके किसी भी भागमें जब चोट पहुँचती है, तब तत्काल ही आत्माको वेदना होने लगती है। शरीर और आत्माके ऐसे प्रगाढ संबंधको लेकर जैनशास्त्रकार कहते हैं कि यद्यपि आत्मा शरीरसे वस्तुतः भिन्न है, तथापि सर्वथा नहीं। यदि सर्वथा भिन्न मानेंगे तो आत्माको, शरीर पर आघात लगनेसे, कुछ कष्ट नहीं होगा, जैसे कि एक आदमी को आघात पहुँचानेसे दूसरे आदमीको कष्ट नहीं होता है; परन्तु आबाल-वृद्धका यह अनुभव है कि, शरीर पर आघात होनेसे आत्माको उसकी वेदना होती है। इसलिए किसी अंशमें आत्मा और शरीरका अभेद भी मानना चाहिए। अर्थात्

शरीर और आत्मा भिन्न होनेके साथही कथंचित् अभिन्न भी हैं। इस स्थितिमें जिस दृष्टिसे आत्मा और शरीर अभिन्न हैं वह, दोनों दृष्टियाँ 'नय' कहलाती हैं।

जो अभिप्राय, ज्ञानसे मोक्ष होना बताता है, वह 'ज्ञान नय' है और जो अभिप्राय क्रियासे मोक्षसिद्धि बताता है वह 'क्रियानय' है। ये दोनों अभिप्राय नय हैं।

जो दृष्टि, वस्तुकी तात्त्विकस्थितिको अर्थात् वस्तुके मूलस्वरूपको स्पर्श करनेवाली है, वह 'निश्चयनय' है और जो दृष्टि वस्तुकी बाह्य अवस्थाकी ओर लक्ष खींचती है वह 'व्यवहारनय' है। निश्चयनय बताता है कि आत्मा (संसारी जीव) शुद्ध बुद्ध-निरंजन-सच्चिदानंदमय है और व्यवहार नय बताता है कि आत्मा, कर्मबद्ध अवस्थामें मोहवान्-अविद्यावान् है। इस तरहसे निश्चय और व्यवहारके अनेक उदाहरण हैं।

अभिप्राय बतलानेवाले शब्द, वाक्य, शास्त्र या सिद्धान्त सब 'नय' कहलाते हैं। उक्त नय अपनी मर्यादामें माननीय हैं। परन्तु यदि वे एक दूसरेको असत्य ठहरानेके लिए तत्पर हैं तो अमान्य हो जाते हैं। जैसे—ज्ञानसे मुक्ति बतानेवाला सिद्धान्त और क्रियासे मुक्ति बतानेवाला सिद्धान्त—ये दोनों सिद्धान्त, स्वपक्षका मण्डन करते हुए यदि वे एक दूसरेका खण्डन करने लगें तो तिरस्कारके पात्र हैं। इस तरह घटको अनित्य और नित्य बतलानेवाले सिद्धान्त, तथा आत्मा और शरीरका भेद और अभेद बतानेवाले सिद्धान्त यदि एक दूसरेपर आक्षेप करनेको उतारू हों, तो वे अमान्य ठहरते हैं।

यह समझ रखना चाहिए कि नय आंशिक सत्य है। आंशिक सत्य संपूर्ण सत्य नहीं माना जा सकता है। आत्माको अनित्य या घटको नित्य मानना सर्वांशमें सत्य नहीं हो सकता है। जो सत्य जितने अंशोंमें हो उसको उतने ही अंशोंमें मानना युक्त है।

इसकी गिनती नहीं हो सकती है कि वस्तुतः नय कितने हैं। अभिप्राय या वचनप्रयोग जब गणनासे बाहिर हैं तब नय —जो उनसे जुदा नहीं है—कैसे गणनाके अंदर हो सकते हैं। यानी नयोंकीभी गिनती नहीं हो सकती है १। ऐसा होनेपर भी नयोंके मुख्यतया दो भेद बताये गये हैं—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। मूल पदार्थको ' द्रव्य ' कहते हैं। जैसे—घडेकी मिट्टी। मूल द्रव्यके परिणामको ' पर्याय ' कहते हैं। मिट्टी अथवा अन्य किसी द्रव्यमें जो परिवर्तन होता है वह सब पर्याय है। द्रव्यार्थिक का मतलब है, मूल पदार्थोंपर लक्ष्य देनेवाला अभिप्राय; और ' पर्यायार्थिक नय ' का मतलब है पर्यायोंको लक्ष्य करनेवाला अभिप्राय। द्रव्यार्थिक नय सब पदार्थोंको नित्य मानता है। जैसे—घडा मूलद्रव्य—मृत्तिका रूपसे नित्य है। पर्यायार्थिक नय सब पदार्थोंको नित्य मानता है। जैसे—स्वर्ण, माला, जंजीर, कडे, अंगूठी आदि पदार्थोंमें परिवर्तन होता रहता है। इस, अनित्यत्वको परिवर्तन

---

१ " जावइया वयणपहा तावइया चेव हुंति नयवाया। "

—' सम्मतिसूत्र ' ' सिद्धसेनदिवाकर '

होने मिलनाही समझना चाहिए; क्यों कि सर्वथा-नाश या सर्वथा अपूर्व उत्पाद किसी वस्तुका कभी नहीं होता है।

प्रकारान्तरसे नयके सात भेद बताये गये हैं। नैगम, संग्रह व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत।

नैगम—'निगम' का अर्थ है संकल्प—कल्पना। इस कल्पनासे जो वस्तुव्यवहार होता है,—'भूतनैगम' 'भविष्यत् नैगम' और 'वर्तमान नैगम'। जो वस्तु हो चुकी है उसका वर्तमानरूपमें व्यवहार करना 'भूत नैगम' है[1]। जैसे आज—वही दीवालीका दिन है कि जिस दिन महावीरस्वामी मोक्षमें गये थे। यह भूतकालका वर्तमानमें उपचार है। महावीरके निर्वाणका दिन आज (आज दीवालीका दिन) मान लिया जाता है। इस तरह भूतकालके वर्तमानमें उपचारके अनेक उदाहरण हैं। होनेवाली वस्तुको हुई कहना 'भविष्यद्नैगम' है। जैसे चावल पूरे पके न हों; पक जानेमें थोड़ी ही देर रही हो उस समय कहा जाता है कि 'चावल पक गये हैं'। ऐसा वाक्यव्यवहार प्रचलित है। अथवा—अर्हन् देवको मुक्त होनेके पहिले ही कहा जाता है कि मुक्त हो गये। यह नैगमनय है। इंधन, पानी आदि चावल पकानेका सामान इकट्ठा करते हुए मनुष्यको कोई पूछे कि क्या करते हो? वह उत्तर दे कि मैं चावल पकाता हूँ।' यह उत्तर 'वर्तमान नैगमनय' है।

---

१ अतीतस्य वर्तमानवत् कथनं यत्र स भूतनैगमः। यथा—'अद्य दीपोत्सवपर्व यस्मिन् वर्द्धमानस्वामी मोक्षं गतवान्।'

—नयप्रदीप, यशोविजयजी।

क्यों कि चावल पकानेकी क्रिया यद्यपि वर्तमानमें प्रारंभ नहीं हुई है तोभी वह वर्तमान रूपमें बताई गई है ।

संग्रह—सामान्यतया वस्तुओंका समुच्चय करके कथन करना 'संग्रह' नय है । जैसे—'सारे शरीरोंका आत्मा एक है ।' इस कथनसे वस्तुतः सब शरीरोंमें एक आत्मा सिद्ध नहीं होता है । प्रत्येक शरीरमें आत्मा भिन्न भिन्न ही है; तथापि सब आत्माओंमें रही हुई समानजातिकी अपेक्षासे कहा जाता है कि—"सब शरीरोंमें आत्मा एक है । "

व्यवहार—यह नय वस्तुओंमें रही हुई समानताकी उपेक्षा करके, विशेषताकी ओर लक्ष खींचता है । इस नयकी प्रवृत्ति लोकव्यवहारकी तरफ है । पाँच वर्णवाले भँवरेको 'काला भँवर' बताना इस नयकी पद्धति है । रस्ता आता है, कूँडा झरता है इन सब उपचारोंका इस नयमें समावेश हो जाता है ।

ऋजुसूत्र—वस्तुमें होते हुए नवीन नवीन रूपांतरोंकी ओर यह नय लक्ष्य आकर्षित करता है । स्वर्णके मुकुट, कुंडल आदि जो पर्यायें हैं उन पर्यायोंको यह नय देखता है । पर्यायोंके अलावा स्थायी द्रव्यकी ओर यह नय दृग्पात नहीं करता है । इसीलिए—पर्यायें विनश्वर होनेसे सदास्थायी द्रव्य इस नयकी दृष्टिमें कोई चीज नहीं है ।

शब्द—इस नयका कार्य है—अनेक पर्यायशब्दोंका एक अर्थ मानना । यह नय बताता है कि, कि 'कपडा' 'वस्त्र'

---

१ इसके सिवा अन्य प्रकारसे बहुतसे भेद-प्रभेदोंकी व्याख्या इस नयमें आती है ।

'वसन' आदि शब्दोंका अर्थ एकही है।"

समभिरूढ़—इस नयकी पद्धति है-पर्याय शब्दोंके भेदसे अर्थका भेद मानना। यह कहता है, कि कुम्भ कलश घट आदि शब्द यदि भिन्न अर्थवाले हैं; क्योंकि कुम्भ, कलश, घट आदि शब्द यदि भिन्न अर्थवाले न हो तो घट, पट अश्व आदि शब्द भी भिन्न अर्थवाले न होने चाहिएँ; इसलिए शब्द के भेदसे अर्थका भेद है।

एवंभूत—इस नयकी दृष्टिसे शब्द, अपने अर्थका वाचक (कहनेवाला) उस समय होता है, जिस समय वह अर्थ-पदार्थ उस शब्दकी व्युत्पत्तिमेंसे क्रियाका जो भाव निकलता हो, उस क्रियामें प्रवर्ती हुआ हो। जैसे-'गो' शब्दकी व्युत्पत्ति है-'गच्छतीति गौः' अर्थात् जो गमन करता है उसे गौ कहते हैं। मगर वह 'गो' शब्द—इस नयके अभिप्रायसे-प्रत्येक गऊका वाचक नहीं हो सकता है; किन्तु केवल गमन क्रियामें प्रवृत्त-चलती हुई-गायका ही वाचक हो सकता है। इस नयका कथन है कि, शब्दकी व्युत्पत्तिके अनुसार ही यदि उसका अर्थ होता है तो उस अर्थको वह शब्द कह सकता है।

यह बात भली प्रकारसे समझाकर कही जा चुकी है कि ये सातों नय एक प्रकारके दृष्टिबिन्दु हैं। अपनी अपनी मर्यादा में स्थित रहकर, अन्य दृष्टिबिन्दुओंका खंडन न करनेहीमें नयोंकी साधुता है। मध्यस्थ पुरुष सब नयोंको भिन्न भिन्न

दृष्टिमें मान देकर तत्त्वक्षेत्रकी विशाल सीमाका अवलोकन करते हैं। इसीलिए वे, रागद्वेषकी बाधा न होनेसे, आत्माकी निर्मल दशा प्राप्त कर सकते हैं।

[प्रा. बो. जै. ध. पं. श्री. और जै. द. से]

इति।

---

१ 'नय'-का विषय गंभीर हैं। इसके अंदर भिन्न भिन्न अनेक व्याख्याएँ समाविष्ट हैं। उमास्वाती महाराजकृत तत्वार्थसूत्र और यशो विजयजी उपाध्यायकृत नयप्रदीप, नयोपदेश, नयरहस्य आदि तथा अन्य अनेक ग्रन्थोंसे यह विषय विशेष रूपसे—स्पष्टतया सम-झमें आ सकता हैं।

पांच सम्यक्त्व.

सम्यक्त्व किसको कहना ? 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' तत्त्वोंका श्रद्धान करनेको (विश्वास रखनेको) सम्यक्त्व कहते हैं। यथा सच्चे देव सच्चे गुरु, और सच्चा दयामयी धर्म पर सच्चे दिलसे विश्वास रखना, उसीका नाम 'सम्यक्त्व' है।

यह सम्यक्त्व ५ प्रकारका है —१ सास्वादान सम्यक्त्व, २ उपशम सम्यक्त्व, ३ वेदक सम्यक्त्व, ४ क्षयोपशम सम्यक्त्व ५ क्षायिक सम्यक्त्व ॥

पाँचों सम्यक्त्वकी स्थिति।

१ सास्वादान सम्यक्त्वकी स्थिति जघन्य १ समयकी, उत्कृष्टी ६ आवलिकाकी है। २ उपशम सम्यक्त्वकी स्थिति जघन्य और उत्कृष्टी अन्तर्मुहूर्तकी है। ३ वेदक सम्यक्त्वकी स्थिति जघन्य उत्कृष्टी एक समयकी है। ४ क्षयोपशम सम्यक्त्वकी स्थिति जघन्य एक समयकी, उत्कृष्टी ६६ सागरसे कुछ अधिक है। ५ क्षायिक सम्यक्त्वकी स्थिति नहीं होती है।

एक भवमें कौनसी सम्यक्त्व, कितनी वार आती है ?

१–२ शाश्वादान और उपशम सम्यक्त्व एक भवमें (एक जन्ममें) जघन्य एकवार [दफह] आती है और उत्कृष्टी पांच वार आती है । ३ वेदक सम्यक्त्व, एक भवमें जघन्य उत्कृष्टी एकवार आती है । ४ क्षयोपशम सम्यक्त्व एक भवमें जघन्य एकवार आती है और उत्कृष्टी असंख्यातवार आती है ५ क्षायिक सम्यक्त्व आनेबाद फिर नहीं जाती । आखिरतक रहती है ।

सम्यक्त्वके भेद ।

उपशम सम्यक्त्वके ७ भेदः—१ अनंतानुबंधी क्रोध; २ मान, ३ माया, ४ लोभ, ५ मिथ्यात्व मोहनीय, ६ मिश्र मोहनीय, और ७ सम्यक्त्व मोहनीय, इन सातों प्रकृतियोंको उपशमानेसे (ढाँकनेसे) उपशम सम्यक्त्व कहलाता है इन सातोंमेंसे किसीको उपशमाने, और किसीको खपानेसे (क्षय करनेसे) "क्षयोपशम" सम्यक्त्व कहलाता है ।

क्षयोपशम सम्यक्त्वके चार भेदः—१ उपरोक्त चार प्रकृतियोंको क्षय करनेसे तथा उपशमानेसे क्षयोपशम सम्यक्त्व कहलाता है । २ तथा पांच प्रकृतियोंको क्षय करने, और दो प्रकृतियोंको उपशमानेसे क्षयोपशम सम्यक्त्व कहलाता है । ३ तथा छह प्रकृतियोंको क्षय करने एकको उपशमानेसे क्षयोपशम सम्यक्त्व कहलाता है । ४ तथा चार प्रकृतियोंको क्षय

करने, दोका उपशमाने, और एकको वेदनेसे 'क्षयोपशम वेदक सम्यक्त्व कहलाता है ।

क्षय वेदक सम्यक्त्वके ३ भेद —१ चार प्रकृतियोंके क्षय करने, और तीनके वेदनेका नाम 'क्षय वेदक सम्यक्त्व' है । २ तथा पांच प्रकृतियोंके क्षय करने दोको वेदनेका नाम क्षय वेदक सम्यक्त्व है । ३ तथा छह प्रकृतियोंको क्षय करने और एकको वेदनेका नाम क्षयवेदक सम्यक्त्व है । ४ सातों प्रकृतियोंको क्षय करनेको 'क्षायिक सम्यक्त्व' कहते हैं ।

औरभी सम्यक्त्व नव प्रकारका है ।

१ द्रव्य सम्यक्त्व, २ भाव सम्यक्त्व, ३ निश्चय सम्यक्त्व ४ व्यवहार सम्यक्त्व, ५ निःसर्ग सम्यक्त्व, ६ उपदेश सम्यक्त्व, ७ कारक सम्यक्त्व, ८ रुचक सम्यक्त्व ९ दीपक सम्यक्त्व ॥

१ द्रव्य सम्यक्त्व किसको कहना ?–जो केवली तीर्थंकरोंके वचनोंको तो यथातथ्य मानता हो, परंतु उनके वचनोंके रहस्यको न समझता हो उनके भेदानुभेदको न जानता हो। और जो केवल गुरुसे लियाहुआ सम्यक्त्व पकड रक्खा हो, वह द्रव्य सम्यक्त्व है ।

२ भाव सम्यक्त्व किसको कहना ?—जो तीर्थंकरोंके वचनोंका रहस्य समझता हो, जो भेदानुभेद जानता हो, वह भाव सम्यक्त्व है, इस ऊपर काँचका दृष्टान्त–जैसे काँचमें जैसा रूप होता है वैसाही दीख आता है–तद्वत्–भाव सम्यक्त्व वाला भी जैसा तत्व रहस्य होता है–वैसाही देखता जानता है ।

३ निश्चय सम्यक्त्व किसको कहना ?–ज्ञान, दर्शन, चारित्रमे शुभभावोंमे रमण करनेको निश्चय सम्यक्त्व कहते हैं.

४ व्यवहार सम्यक्त्व किसको कहना ?–जो बाह्य लक्षणोंसे [याने–साधु, श्रावकका आचार पालने और सामायिक पौषध प्रतिक्रमण त्याग–प्रत्याख्यान आदि करनेसे] जाना जाय। उसे-व्यवहार सम्यक्त्व कहते हैं।

५ निःसर्ग सम्यक्त्व किसको कहना ?–जो गुरुके उपदेश विनाही जाति स्मरणादि ज्ञानके योगसे सत्य तत्वोंको जानलेता है, विश्वास करलेता है, वह निःसर्ग सम्यक्त्व है। जैसे –मृगापुत्रके मुआफिक।

६ उपदेश सम्यक्त्व किसको कहना ?—गुरुके उपदेशसे देवगुरु, धर्मको पहचानकर उनपर विश्वास रखनेको 'उपदेश सम्यक्त्व' कहते हैं।

७ कारक सम्यक्त्व किसको कहना ? शास्त्रोंमे जैसा कहा कहा है–वैसाही आचार, पालने, क्रिया करनेको कारक सम्यक्त्व कहते हैं।

८ रोचक सम्यक्त्व किसको कहना ? –जो शास्त्र और गुरुके वचनोंपर रुचि रखता हो,–वैसा करने, और चलनेका इरादा करता हो, परन्तु वह कर-या चल नहीं सकता, उसको 'रोचक सम्यक्त्व' कहते हैं।

९ दीपक सम्यक्त्व किसको कहना ?–जो दूसरे लोगोंको तो सदुपदेश दे–सन्मार्ग बतावें, पर, आप, उस अनुसार न

चलें, जैसे दीपक औरोंके लिए तो प्रकाश करता है परन्तु वह अपने नीचे अन्धेरा ही रखता है—इस दीपक सम्यक्त्व कहते हैं।

अब व्यवहार सम्यक्त्वके ६७ भेद कहते हैं।

१ सम्यक्त्वकी चार श्रद्धना —१ तत्वज्ञानका अभ्यास करें २ तत्वज्ञानियों और बहुश्रुति आचार्य महाराजों आदिकी सेवा करें। ३ कुदेव, कुगुरु कुधर्मका परिचय (संगति) छोड़े ४ कुदेव, कुगुरु, कुधर्मपर प्रेम न रक्खें।

२ सम्यक्त्वके तीन लिंग—१ स्त्रीलिंग, २ पुरुषलिंग ३ नपुंसकलिंग *

३ दश प्रकारका विनय —१सम्यक्त्वी अरिहंतका विनय करें २ सिद्धका विनय करें, ३ ज्ञानवानका विनय करें ४ सत्यसिद्धान्तका विनय करें ५ धर्मवान्–धर्मात्माओंका विनय करें ६ साधुका विनय करें ७ श्रमणोपासकका विनय करें

---

* कोई सम्यक्त्वके तीन लिंग ये बताते हैं —

१—जैसे कोई कामी, युवान पुरुष मनइच्छित काम भोग मिलने पर तृप्त होता है। वैसे सम्यक्त्वी आत्मा वीतरागकी वाणि सुनकर तृप्त होता है।

२—जैसे कोई भूखा आदमी भोजन पाकर तृप्त होता है। वैसे सम्यक्त्वी आत्मा वीतरागकी वाणी श्रवणकर तृप्त होता है।

३ जैसे कोई विद्याभिलाषी पुरुष विद्या पढ़ानेवाले आचार्य, अध्यापक आदिका योग पाकर तृप्त होता है वैसे सम्यक्त्वी (सम्यग्दृष्टि) आत्मा वीतरागकी वाणी सुनकर तृप्त होता है

८ उपाध्यायका विनय करें, ९ प्रवचनका विनय करें, १० सम्यगृदृष्टिका विनय करे.

४ सम्यक्त्वकी तीन शुद्धता:-१ मन शुद्धता, २ वचन शुद्धता, ३ काय शुद्धता.

[१ मनसे अरिहतोंका ध्यान करनेको मनशुद्धि कहते है, २ वचनसे अरिहंतोंके गुणग्राम करनेको वचन शुद्धि कहते हैं, ३ काय [शरीर] से अरिहंतोंको नमन करनेको–काय शुद्धि कहते है]

४ सम्यक्त्वके पांच लक्षण:-१शम, २ सम्वेग, ३ निर्वेद, ४ अनुकम्पा, और ५ आस्था ॥*

(१ क्रोध, मान, माया, लोभके घटानेको शम कहते है, २ इन्द्रिय जनित–पौद्गालिक सुखोंको झूठे समझकर, आत्म-सुखमें तल्लीन होनेको संवेग कहते है। ३ प्रत्येक वस्तुको उदासीन भावोंसे भोगनेको निर्वेद कहते है, ४ दुःखी जीवों-पर परोपकारकरने, उनपर दया लाने और उनके उद्धारका मार्ग सोचने, वगैरह वगैरहको अनुकम्पा कहते है, ५ भगवत् वचन पर विश्वास रखनेको आस्था कहते हैं.)

५ सम्यक्त्वकी आठ प्रभावना [याने धर्मदीपने धर्मोन्नति होनेके आठ रास्ते) १ समाजमें आचार्य, गुरु आदि धर्मशास्त्रोंके ज्ञाता होतो धर्मोन्नति हो, २ धर्मोपदेशक अच्छे हो तो धर्मोन्नति हो, ३ न्यायशास्त्रके जान हो तो धर्मोन्नति

* शम संवेग निर्वेदानुकंपास्तिक्य लक्षणै ॥ लक्षणैः पचभि सम्यक् सम्यक्त्व मुपलक्ष्यते ॥ १ ॥

हो, ४ अवसरके [समयके) ज्ञान हो तो धर्मोन्नति हो ५ तपस्वी हो तो धर्मोन्नति हो, ६ अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता-विद्वान् हो तो धर्मोन्नति हो, ७ मिष्टभाषी हो तो धर्मोन्नति हो, ८ काव्य शास्त्रके ज्ञाता-कवि वगैरह हो तो धर्मोन्नति हो *

---

* हमारे आजकलके कतिपय साधु श्रावकोंको सम्यक्त्वकी आठ प्रभावनाओं पर अवश्य ध्यान देना चाहिए । इन आठ प्रभावनाओंमें इतना गूढ तत्त्व ठूस २ कर भरा है कि इनपर जितना ऊहापोह किया जाय, उतना थोडा है, धन्य है हमारे उन पूर्वाचार्योंको, कोटिश धन्य है कि— उन्होंने किस खूबीसे हमें उन्नतिके आठ रास्ते बतलाये ।

यदि—हमारे विचारशील पाठक इसपर खूब विचार करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि—इन आठोंमें प्राचीन और अर्वाचीन उन्नति पथ सब समागये है । हमारे आचार्योंने कोई बात इनमेंबाकी न रक्खी जो इनमें न हो । सभी प्रकारकी सुधारना इनमें आचुकी है । इनके शब्दोंमें इतना अपूर्व चातुर्य है कि-मेरीही लेखिनी-क्या बडे२ विद्वानोंकी लेखिनी मैं मानताहूं इनकी प्रशंसा लिखनेको असमर्थ होंगी । इन आठोंको जिधर लेजाओ उधरही ये काम करते काम दे सकते है । हमारे आजके कई भाई, खासकर साधु–आ धर्मोन्नति या समाजोन्नति की वर्तमान प्रणालीके विरोधी है उनको इस मिष्ट पाठमें आने वाले आठ मार्गोसे कुछ शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए । आशा है कि-उनकी इससे अवश्य आंखें खुलेंगी ।

मुनिपरमानन्द जैन,

ता० १६–१२–२२

(६) सम्यक्त्यके पांच अतिचारः-शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मिथ्यात्वी की प्रशंसा और मिथ्यात्वी का परिचय ।

१-धर्ममें या केवली के वचनोंमें संशय लानेको शंका कहते हैं ।

२-अन्य धर्मकी वांछा करने को ' कांक्षा कहते हैं ।

३-धर्मके फलमें या करनी के फलमें सन्देह करने (जो मैं करनी करता हूं इसका फल मुझे लगेगा या नहीं) को विचित्सा कहते हैं ।

४-मिथ्यादृष्टि याने अन्यमत मतान्तरों की प्रशंसा करनेको, मिथ्यात्वी [पर पाखण्डी] की प्रशंसा कहते हैं ।

५-मिथ्यादृष्टिका परिचय याने संगति करने को " मिथ्यात्वी परिचय " कहते हैं ।

(जो इन ५ बातोंको स्वीकार करता है, वह शुद्ध सम्यक्त्वी नहीं कहाता, इनका स्वीकार करनेसे सम्यक्त्वी की सम्यक्त्व दूषित होती हैं ।)

सम्यक्त्यके पांच भूषणः-१-धर्ममें विचक्षण होना, २-चतुर्विध संघकी सेवाकरना, ३-गुणवान् की भक्ति करना, ४-धर्ममें दृढ रहना, ५-न्याय युक्तियों से मिथ्यात्वियों की बातोंका उत्तर देना । मिथ्यादृष्टियोंको अपने धर्मके तत्त्व समझाना ।

ये सम्यक्त्व के पांच भूषण हैं । ये गुण सम्यक्त्वी में होने से धर्मकी शोभा बढती है ।

(८) सम्यक्त्वके ६ आगारः-१-राजका, २-पंचोंका,

३–अपनेसे अधिक बलवानका, ४–देवयोगका, ५ माता पिता का, ६–दुष्कालादिका ।–

[अगर सम्यक्त्वीका, राजाके कहनेसे, पंचोंके कहनेसे, अपनेसे अधिक बलवान्‌की आज्ञासे, माता पिताके हुकमसे, देवयोगसे, दुष्काल आदिके पडनेसे, मिथ्यात्वियोंको दानादि देना पडे, तथा कोई धर्म विरुद्ध या वीतरागकी आज्ञा विरुद्ध प्रकार कार्य करना पडे तो उसकी सम्यक्त्वमें बट्टा (दोष) नहीं लग सकता । इसलिए सम्यक्त्व लेती वक्त ये ६ आगार (छूट) रक्खे जाते हैं ।

(७) सम्यक्त्व के छः दोष –१–पर पाखण्डीके पास न जावे २–पर पाखण्डीसे संभाषण न करे, ३ पर पाखण्डीको दान [मोक्षका कारण समझकर] न दे (अनुकम्पा बुद्धिसे देनेका आगार है), ४–पर पाखण्डीकी स्तुति न करे, ५–पर पाखण्डीका आदर सत्कार न करे, ६–पर पाखण्डीको धर्म जानकर नमस्कार न करे–[लौकिक व्यवहार रखनेके लिए करना पडे तो आगार है ।]

सम्यक्त्वी, इन छः दोषों को टाले तो पूरा सम्यक्त्वी कहलाता है ।

सम्यक्त्वीकी छः भावना –१–सम्यक्त्वी जीव ऐसा विचारक रे कि मेरे महान् पुण्यके उदयसे यह सम्यक्त्वरूप पवित्र रत्न हाथ आया है इसलिये इसको खूब सँभालकर रखना चाहिए और इसे किंचित् मात्रभी मैला न करना चाहिए । २ सम्यक्त्वी जीव ऐसा विचार करे कि–संसारमें इबते हुए जीव का एक सम्यक्त्वही आधार–भूत है । जैसे–

नगर निवासी जनोंको गढकोट खाई वगैरह का आधार है वैसेही ज्ञान और चारित्र को सम्यक्त्व का आधार है। ३-सम्यक्त्वी जीव ऐसा विचारें कि-जिस तरह पृथ्वी सब जीवोंको आधारभूत है उसी तरह सम्यक्त्वभी ज्ञान और चारित्रका आधारभूत है। क्योंकि सम्यक्त्व न होगा तो न ज्ञान स्थिर रहसकेगा और न चारित्रही स्थिर रहसकेगा। ४-सम्यक्त्वी जीव ऐसा विचारें कि-सर्वज्ञ कथित धर्मका भाजन [पात्र-स्थान, याने सम्यक्त्व के रहनेकी जगह] एक सम्यक्त्व ही है। ६-सम्यक्त्वी फिर ऐसा विचारें कि-जिसप्रकार चक्रवर्तिके रत्नोंका भाजन निधान है वैसेही सर्व विरति, या देश विरति का भाजन सम्यक्त्व है।

सम्यक्त्वके छह स्थानकः—१-सम्यक्त्व, धर्मरूप वृक्षका पेड है। २-सम्यक्त्व, धर्मरूप नगरका दुर्ग [कोट] है। ३-सम्यक्त्व, धर्मरूप मकानकी नीव है। ४-सम्यक्त्व, धर्मरूप भोजनका थाल (पात्र) है। ५-सम्यक्त्व, धर्मरूप किराणेकी दुकान है।*

ये व्यवहार सम्यक्त्वके ६७ भेद हुए।

पांच सम्यक्त्वका स्वरूप पूरा हुआ।

---

* कहीं पर छह भावना इस प्रकार लिखी है — १-सम्यग्दृष्टि पुरुष अपनी आत्माको असंख्यात प्रदेशी जाने, २-व्यवहारनयसे आत्माको कर्मोंका कर्त्ता समझे, ३-व्यवहारनयसे आत्माको कर्मोंका भोक्ता समझे, ४-अपनी आत्माको सिद्धोंके समान जाने, ५-अपनी आत्माको मोक्षगतिमें जाने-वाला, जाने। ६-ज्ञान दर्शन चारित्र और तप, इन चार कारणोंको मोक्षगति में लेजानेवाले समझे।

नरकका विस्तार.

श्री पन्नवणा सूत्रके दूसरे पदके अनुसार नरक (नारकी) का विस्तार कहते है।

नारकीके २१ द्वार।

१–नामद्वार।

* सात नारकियोंके नाम –१–घमा, २ वंशा, ३ सीला, ४ अंजना, ५ रीठा, ६ मघा, ७ माघवई।

२–गौत्र द्वार।

सात नारकियोंके गोत्र – १ रत्नप्रभा २ शर्कराप्रभा, ३ वालुप्रभा ४ पंकप्रभा, ५ धूमप्रभा ६ तमप्रभा, ७ तमा तमाप्रभा।

३–अर्थद्वार।

१ 'रत्नप्रभा' यह नाम क्यों रक्खा गया? उस नरकमें काले रत्नोंमें मृत्तिका पिंड है और उसकी काले रत्नोंकीही पीठिका है इससे उसका नाम रत्नप्रभा रक्खा गया है।

२ 'शर्कराप्रभा' नाम क्यों रक्खा? उस नरकका मृत्तिका पिण्ड तीक्ष्णकंकरों जैसा है और तीक्ष्णकंकरों जैसीही उसकी पीठिका है। इसलिए उसका नाम 'शर्कराप्रभा' है।

---

* नरकमें रहनेवाले जीवोंको 'नारकी' या 'नेरिया' कहते हैं।

३ 'वालुप्रभा' नाम क्यों रक्खा ? इस नरकका मृत्तिका पिण्ड गरमगरम रेती जैसा है और गरम गरम रेती जैसीही इसकी पीठीका है इसलिए इसका नाम 'वालुप्रभा' है।

४ 'पंकप्रभा' यह नाम क्यों रक्खा ? इसका मृत्तिका पिण्ड कीचड जैसा है और कीचड जैसीही इसकी पीठिका है इससे इसका नाम 'पंकप्रभा' है।

५ 'धूमप्रभा' यह नाम क्यों रक्खा? उसका धुएँ जैसा मृत्तिपिण्ड है और धुंएँ जैसीही पीठिका है इससे उसे 'धूमप्रभा' कहते हैं।

६ 'तमप्रभा' यह नाम क्यों रक्खा ? इसका अन्धकारमय मृत्तिका पिण्ड है और अन्धकारमय ही उसकी पीठिका है इससे उसका नाम 'तमप्रभा' है।

७ 'तमातमाप्रभा' यह नाम क्यों रक्खा ? इसका तमप्रभासेभी विशेष अन्धकारमय मृत्तिका पिण्ड है और विशेष अन्धकारमय ही उसकी पीठिका है इससे यह 'तमातमाप्रभा' कही जाती है।

४–५ पिण्डद्वार और पोलार[१] द्वार।

पहली नारकीका १८०००० हजार योजनका मृत्तिका पिण्ड है। उसमेंसे एक हजार योजन ऊपर और एक हजार योजन नीचे छोड देनेपर, बीचमें १७८०००, योजनकी पोलार है। दूसरी नारकीका १३२०००० हजार योजन का

१–जिस वस्तुके अन्दर जो 'पोल' होती है उसे 'पोलार' कहते है।

मृत्तिकापिण्ड है। उसमेंसे एक हजार योजन ऊपर और एकहजार योजन नीचे छोड देने पर, बीचमें १३०००० हजार योजनकी पोलार है। तीसरी नारकीका १२८००० हजार योजनका मृत्तिका पिण्ड है। उसमेंसे एक हजार योजन ऊपर और एक हजार योजन नीचे छोड देनेपर, बीचमें १२६००० हजार योजनकी पोलार है। चौथी नारकीका १२०००० हजार योजनका मृत्तिका पिण्ड है। उसमेंसे एक हजार योजन ऊपर और एक हजार योजन नीचे छोड देन पर बीचमें ११८००० हजार योजनकी पोलार है। पांचवी नारकीका ११८००० हजार योजनका मृत्तिका पिण्ड है। उसमेंसे एक हजार योजन ऊपर और एक हजार योजन नीचे छोड देनेपर बीचमें ११६००० योजनकी पोलार है। छट्ठीनारकीका ११६००० योजनका मृत्तिका पिण्ड है। उसमेंसे एक हजार योजन ऊपर और एक हजार योजन नीचे छोड देनेपर बीचमें, ११४००० हजार योजनकी पोलार है। सातवी नारकीका १०८००० हजार योजनका मृत्तिका पिण्ड है। उसमेंसे ५२५०० हजार योजन ऊपर और ५२५०० योजन नीचे छोड देनेपर, बीचमें ३००० हजार योजनकी पोलार है।

६—नरका वासा द्वार।

पहली नारकीमें ३० लाख नरक वासा है। दूसरीमें २५

१—नरककी पृथ्वीका जो मोटापन यानी दल है, उसे पिण्ड कहते है। २ जिसमें नरकके जीव (नेरिये) रहते है उसे 'नरका वासा' कहते हैं। जैसा-कि-गाथ ।

लाख, तीसरीमें १५ लाख, चौथीमे १० लाख, पांचवीमें ३ लाख, छट्ठीमें १ लाख, सातवीमें ५ नरकवासा है।

७—पाथडा[1] द्वार।

पहली नारकीमें १३ पाथडे है। दूसरीमें ११, तीसरीमें ९, चौथीमें ७, पांचवींमें ५, छट्टीमें ३, सातवीमें १ पाथडा है।

८—अलोक द्वार।

पहली नारकीसे १२ योजन तिरछा (टेढा) जाने वाद अलोक आता है। दूसरीसे १२$\frac{२}{३}$ योजन जाने वाद, तीसरीसे १२- योजन जाने वाद, चौथीसे १४ योजन जाने वाद, पांचवीसे १४$\frac{२}{३}$ जाने वाद, छट्ठीसे १५$\frac{१}{२}$ जाने वाद, सातवीसे १६ योजन जाने वाद अलोक आता है।

९—आधार द्वार।

सातोंनारकी घनोदधि, घन, और तण, वायुके, आधारसे ठहरी हुई है।

विशेष स्पष्टीकरणः सातों नारकियोंके नीचे असंख्यात योजनका लम्बा, चौडा और जाडा, घनोदधि [पानी] घन, और तन वायु है। वह इस क्रमसे है। सबके पहिले घनोदधि है और उसके नीचे घनवायु है और उसके नीचे तनवायु है। इसतरह से सातों नारकियोंके नीचे घनोदधि और घन वाय तन वाय [वायु] है। उनके ऊपर सातों नारकी ठहरी हुई है। घनोदधि, घनवाय और तनवाय अलोकके (उनके नीचे फिर

१—जिसमें नरकके नेरिये रहते हैं—उसे 'पाथडा' कहते हैं। जैसा-कि मकान,

भलेकाही आता है, और कुछ नहीं) आधारसें रहे हुए हैं। ये तीनों घनोदधि घनवाय, और तनवाय, इतने सख्त (कठिन) है कि अगर इनपर घनोंकी मार पड़े, तोभी ये रत्ती मात्र टूटफूट नहीं सकते।

१०—आन्तरा द्वार।

पहली नारकीमें १२ 'आन्तरें' है। वे प्रत्येक आन्तरें ११-५८३½ योजन के लम्बे और चौड़े हैं। दूसरीमें-१० आन्तरें हैं। वे प्रत्येक ९७०० योजनके लम्बे और चौड़े हैं। तीसरीमें = आन्तरें हैं। वे प्रत्येक १२३७५ योजनके लम्बे और चौड़े हैं। चौथीमें छह आन्तरें हैं। वे प्रत्येक १५१६६⅔ योजनके लम्बे और चौड़े हैं। पांचवीमें—चार आन्तरें हैं। वे प्रत्येक २५२५० योजनके लम्बे और चौड़े हैं। छट्ठीमें-दो आन्तरें हैं। वे प्रत्येक-५२५०० योजनके लम्बे-चौड़े हैं। सातवीमें एकभी 'आन्तरा नहीं है।

११ खुले और पंक्तिबन्ध नरकावासा द्वार

पहली नरकमें २९९५६७ खुला नरकावासा हैं और ४४३२ पंक्तिबन्ध नरकवासा है। दूसरी नारकीमें२४९७२०५ खुला नरकवास हैं और २६९५, पंक्तिबन्ध नरकवासा है

१—जिसमें भवन पतियें रहते हैं उसे 'आन्तरा' कहते हैं।

२—जो फुटकर नरका वासे हैं (यानें एक यहां तो एक वहां ऐसे) उन्हें खुले नरका वासा कहते हैं और जो लगा तार [एक-के आगे एक] नरकावास है उन्हें पंक्तिबन्ध नरकावासा कहते हैं।

तीसरी नारकीमें:-१४९५५१५, खुल्ला नरकावासा है। और १४८५ पंक्तिबन्ध नरकावासा है। चौथी नारकीमें-९९९२९३, खुल्ला नरकवासा है और ७०२ पंक्तिबन्ध नरका वासा है। पांचवी नारकीमें-२-९९७३५, खुल्ला नरका वासा है और २६५, पंक्तिबन्ध नरका वासा है। छट्ठी नारकीमें-९९९३२ खुल्ला नरका वासा है। और ६३ पंक्तिबन्ध नरका वासा है। सातवी नारकीमें-खुल्ला नरकावासा एक भी नहीं है और पांच पंक्तिबन्ध ' नरका वासा ' है।

१२-अन्धकार द्वार।

प्रत्येक नारकीमें जो अन्धकार है वह महा अशुभ पुद्गलमय है।

१३-उत्पन्न द्वार।

नरकमें पैदा होनेके जो स्थान हैं (गर्भस्थान) उनमें कोई तो कुंभके आकार है, कोई घटके आकार है, कोई पेटी के आकार है, कोइ कूंडा के आकार है। इस प्रकार नाना तरहके आकारके नारकीके जीवों के जन्मस्थान हैं। उनको [जन्मस्थानको] ' कुंभियाँ ' कहते है।

१४-क्षेत्रवेदना द्वार।

प्रत्येक नरकमें क्षेत्र वेदना दश प्रकारकी है:-अनन्तक्षुधा अनन्त तृषा, अनन्त शीत, अनन्त उष्ण अनन्त दाह, अनन्त ज्वर, अनन्त भय; अनन्त शोक, अनन्त खाज, अनन्त-परवशता। यह दश प्रकारकी क्षेत्र वेदना नारकीके जीवोंके पीछे हमेशा लगी हुई है। यह क्षेत्र वेदना नारकीके जीवोंको पलभरभी पीडा नहीं छोडती है।

पहली नारकीसे दूसरी नारकीमें अनन्त गुणी क्षेत्र वेदना है। दूसरीसे भी तीसरीमें-अनन्त गुणी है। यों उत्तरोत्तर छट्ठीसे सातवीं में भी अनन्त गुणी है। तथा नारकियोंके नामानुसारभी यहाँ भूमिस्पर्श की भी वेदना अनन्त गुणी है। जैसे-रत्नप्रभाकी भूमिका स्पर्श खरदरा है। शर्करा प्रभाकी भूमिका स्पर्श तरवारकी धार-जैसा है। बालु प्रभाकी भूमिका स्पर्श जलती हुई अग्निके समान है। पङ्कप्रभाकी भूमि केवल रक्त पीप मय और कीचड़ मय है। धूमप्रभामें सोमल, निम्ब आक जैसा धुआँ है। तमप्रभामें अन्धकार है। तमातमा प्रभा में गाढ अंधकार है। यह स्पर्श वेदन भी नारकीके जीवोंको अनन्त गुणी है

१५-परमाधामी द्वार ।

नरकमें नारकीके जीवोंको दुःख देनके लिए १५ जातिके परमाधामी देव रहते हैं। उनके नामतत्त्व तत्त्वमें बतलाये हैं वहांसे जानलेने चाहिए।

(देवकृत वेदना द्वार

पहिली, दूसरी, तीसरी नरकमें परमाधामी देवता ऊपरसे मार मारते हैं, और कहते हैं कि-तूने अमुक जन्ममें अमुक पाप किया था उसका यह फल है।

चोथी पांचवी नरकमें-उपरसे परमाधामि देवताओंकी मार तो नहीं है परन्तु अगर किसी वैमानिक देवका नारकीके नरिचय साथ पूर्व भाव होता है, तो वह आकर दुःख (वेदना) देते हैं। छट्ठी, सातवी नरक नेरिये, परस्परही लड़ते झगड़ते

और कटतें मरते है। देवकृत वेदनासे परस्परकी नरक वेदना वहाँ असंख्यातं गुणी अधिक है।

१६—वैक्रियक द्वार।

नारकीके जीवोका वैक्रय खभाव होता है। वह ऐसा कि—वैक्रियसे वे शस्त्रादि बनाते है और उनके द्वारा परस्पर लडते मरते है। या वज्रमुखी कीडे का रूप बनाते है, और दूसरे नारकीके शरीरमें प्रवेश कर जाते है और फिर वहां बडा रूप धारण कर उसके शरीरके टुकडे टुकडे कर देते है ऐसा नारकीके जीवोंका वैक्रिय है।

१७—राज द्वार।

पहिली नारकी एक राजकी लम्बी चौडी है। दूसरी नारकी ढाई राजकी, तीसरी नारकी चारराजकी, चौथी पांचराजकी, पांचवी छहराजकी, छठी—साढा छहराजकी, सातवी—सातराजकी है। परन्तु सातवीं नारकीके नेरिये एकही राजमें रहते है। इन्हें 'त्रसनाली' भी कहते हैं।

१८—काण्ड द्वार।

पहली नारकीमें तीन काण्ड हैः—पहिला, सोलह हजार योजनका, सोलह जातिके रत्नोंमय खरकाण्ड है। दूसरा पानी मय, आठहजार योजनका 'आयुल बहुल काण्ड है। तीसरा—८४ हजार योजनका, पंकमय (कीचडमें) पंकबहुल काण्ड है।

१९ (संघयण द्वार).

नारकीके जीवोंमे संघयण नही है। परंतु पहली और दूसरीमें छहोंही संघयण पाले जाते है। तीसरीमें प्रथमके (छह

संघयणोंमेंसे) पांच संघयण वाले आते हैं। चौथीमें-प्रथमके चार संघयणवाले आते हैं। पांचवींमें प्रथमके तीन संघयण वाले आते हैं। छट्ठीमें-दो संघयणवाले आते हैं। सातवींमें-केवल वज्र ऋषभनाराच संघयणवाले आते हैं।

२० [जीवद्वार

कौन जीव कौनसी नरकमें आते हैं?

संज्ञी मनुष्य और संज्ञी, असंज्ञी तिर्यंच मरकर पहली नरकमें जाते हैं। भुजपर तिर्यंच मरकर दूसरी नरक तक जाता है (आगे नहीं जा सकता)। खेचर [नभचर] तिर्यंच मरकर तीसरीतक जाता है थलचर तिर्यंच मरकर चौथी नरकतक जाता है। उरपर तिर्यंच, पांचवी नरकतक जाता है। स्त्री छट्ठी नरकतक जाती है। सातवींमें सन्नी मनुष्य और जलचर तिर्यंच ही जाता है।

२१ [वर्ण, गंध, रस, स्पर्श द्वार]

नारकियोंमें-अशुभवर्ण, अशुभगन्ध, अशुभरस और अशुभस्पर्श ही होते हैं। उनका आहार वगैरह सब अशुभ पुद्गलोंका ही होता है।

इति

मारवाडी, हिन्दी, उर्दू, गुजराती, मराठी आदि भाषाओंके स्तवन, पद, स्तोत्र आदिकोंका

संग्रह.

१—चौवीस जिनस्तवन.

('एक दिवस लंकापति' इस चालमें.)

ऋषभ अजित संभव स्वामी, अभिनंदनजी अंतरजामी, अंतर जामी, कर्म खपाय मुगति गयाए ॥ सुमति पद्म जिनेश्वरू सुपार्श्वजी परमेश्वरू, परमेश्वरू, चंद्राप्रभु स्वामी सुख लयाए ॥ १ ॥ सुविधि नाथ शीतल ध्याऊं, श्रेयांस तणा गुण मुख गाऊं, गुण मुख गाऊं, वासु पूज्य वंदूं सहीए ॥ विमल, नाथ अनंत ज्ञानी, धर्म नाथ शुकलध्यानी, शुकलध्यानी, शांति नाथ शाता लहीए ॥ २ ॥ कुंथुनाथ, अरनाथ, नमूं, मल्लिनाथ दुख सर्व गमूं, दुख सर्व गमूं, कीरति मुनिसुव्रत तणीए ॥ नमि नाथ, नेमीश्वरू, पार्श्वजी परमेश्वरू, परमेश्वरू, महावीर शासन धणीए ॥ ३ ॥ एचौवीसों जिनराया, ए चौवीसों शिव सुख पाया, शिव सुख पाया, कर्म खपाय सुगति गयाए ॥ ए चार वीस जिनवर जपसी, तो अष्टकर्म तेहना खपसी, तेहना खपसी, दुर्लभ नरभव पाइयाए ॥ ४ ॥ पूज्यश्री दौलतरामजी, ऋष लालचंद तसु नामजी, तसु नामजी

राम पुर गुण गाविया ए ॥ राम पुर गुण गाविया, थारा दरश-
ने मन भाविया, मन माविया, पूज्जीर परसादे ए ॥ ५ ॥

---

२ (नाथ कैसे गजका फंद छुड़ायो, इस चालमें,)

श्रीजिन भुवन पार उतारा, प्रभु मैं थाकर चरणांरा ॥टेर॥
ऋषभ अजित संभव अभिनंदन, तार्या जीव अपारो ॥ सुमति
पद्म सुपार्श्व चन्द्राप्रभु, मेट्या विषय विकारा ॥ श्रीजि० ॥१॥
सुविधि शीतल श्रेयांस वासुपूज्य, सुगति तणा दातारो ॥
विमल अनन्त धर्म शांति नाथजी, छाता करी संसारो॥श्री० २॥
कुंथु अर, मल्लिमुनिसुव्रतजी, करगया खेवो पारो ॥
नमिनेमि पार्श्व, महावीरजी शासनरा सिरदारो ॥श्रीजि० ॥३॥
ग्यारह गणधर बीस विहरमान, सर्व साधूजी अणगारा ॥
अनंत चौबीसीने नित २ वंदू, करगया खेवा पारा ॥ श्रीजि०॥
दान शील तप भावना भावो, ए अगमें ततसारा ॥
ऋष लालचंदकी यही विनती, म्हारा करो निस्तारो। श्रीजि०॥५

३–(तुम तरण तारण भव निवारण, इस चालमें,)

श्री आदिनाथ अजित संभव, सुमरू श्रीअभिनंदना ॥ १
चरण जिनवरीके नाम घरघर करूं जी, पलपल वन्दना॥ १ ॥
श्री सुमति नाथ पद्म प्रभु जग, तिरण तारण सुपासजी ॥
श्रीचन्दा प्रभुजीके चरण वदत, मिटत भव भय त्रासजी ॥ २॥
श्री सुविधि नाथ, सुदत शीतल श्रेयांस अशरण शरणजी ॥
वासु पूज्यजीरा चरण निशदिन, रहो मेरो समिजी, ॥ ३ ॥

विमल नाथ, अनन्त, धर्मजीरो,- ध्यान निज उरमें धरो ॥
श्री शांतिनाथजीके पाय स्पर्शत फिर न चौरासी फिरो ॥ ४ ॥
श्री कुंथुनाथ अरनाथ स्वामी, मल्लि अशरण शरण है ॥
श्री मुनिसुव्रतजीके पढत पावों, हरत जन्म रु मरण है ॥ ५ ॥
श्री नमिनाथ, अरिष्ट नेमि, पार्श्व पारस ध्याइए ॥
श्रीमहावीरजीके चरण वंदत, निर्भय शिवसुख पाइए ॥ ६ ॥
छोड सकल मिथ्यात्वको, गुरु धर्मकी परीक्षा करो ॥
देव अरिहत नाम जप जप, मोक्ष मारग पग धरो ॥ ७ ॥
सदा मंगल होय जपतां, ए चौवीसीरा नाम है ॥
कहत ऋषिजी, लाभ निश्चय, महा सुखरी खान है ॥ ८ ॥

४–विहरमान जिनस्तवन.

(एक दिवस लकापति, इस चालमें)

प्रणमूं श्रीमंदिर स्वामी, युगमंदिर अंतर्यामी, शिरनामी, बाहू, सुबाहू, वंदियेए ॥ पांचमा सुजात ए, स्वयं प्रभु विख्यात ए, दिनरात ए, प्रणमी पाप निकंदिये ए ॥ १ ॥ ऋषभानन्दन सातमा, अनंत वीर्य परमात्मा, शुद्धातमा; सुरप्रभु नमवा नमूं ए; दशमा श्रीविशाल ए, वज्रधर सुरसाल ए, गुणसाल ए, चन्द्रानन पद चित्त रमूं ए ॥ २ ॥ चन्द्र बाहु चित्त ध्याइए, भुजंगेश्वर गुण गाइए, शिरनाइए, नेमिप्रभ चरणांचिपेए ॥ श्री वीरसेन महाभद्र ए,-देवजस अक्षुद्रए, समुद्र ए,–अजीत वीर्य गुण कुण लिखे ए ॥ ३ ॥ धनुष पांचसौ परिमाणू, अवगाहन सहुनी जानू, त्रिभुवन भानू, सहस आठ लक्षण धणी ए ॥

पूर्व, चौरासी लाख ए, आयु सहुना लाख ए, अभिलाख ए। मोसन जिन दर्शन सर्णी ए ॥ ४ ॥ द्वीप अढाई में राज, बाणी अमृत ध्वनि गाजे, संशय भाजः भव्यजीवाना मन लुभाए ॥ चौतीस अतिशय जिनराया, इन्द्र चौसठ पूज पाया; गुण गाया, न रहे फिर कोई मणा ए ॥ ५ ॥ साजिये राता ए रीम ए मज्रिय जिनवर बीस ए, अहनिश ए धर्मध्यान भविजन करा ए ॥ दया धर्म जिनवर तणा, जिनही जीवने मति घणा, सहु सुणाः तर भवसागर मिथ्या हरो ए ॥ ६ ॥ चार तीन नव एक ए (१९-३४), माघ मास सुविशेष ए, सुदि पक्ष ए; आठ करी उमगाई ए ॥ जिणवरजीमें गुण बहु, मदमति मैं, किम कहु, श्रावक सहु, गावो निशदिन रगाई ए ॥ ७ ॥ पूज्य श्री रेखराजजी, तास्य शिष्य अडावजी, सुखसालजी, महिमण्डल यश छाविया ए ॥ त गुरुन सुपसाय जी, हरिपुर-पुरसाय जी, सुखदायजी, 'नथमल' जिन गुण गाइया ए ॥ ८ ॥

५-(वर्द् सोलह जिन सोवन वरणा, इस चालमें)

श्री विहर मान वर्दू बीसो ॥ टेर ॥

श्रीमंदिर युगमंदिर स्वामी, बाहु, सुबाहुजी शिवगामी ॥ सुजात सर्वी स्वयंप्रभ ईशा ॥ श्री विह० ॥ १ ॥ ऋषभानन्दन अनंत वीर माना, श्रीसुरप्रभजीराला आटा, विशालमणी नमाऊं सीसा ॥ श्री विह० ॥ २ ॥ वज्रधरन चन्द्रानन्दा, चंद्र बाहु भांघा द्वारे आनन्दा; भुजंग जीत्या राग न रीसो ॥ श्री विह० ॥ ३ ॥ इश्वर मम प्रभुन प्यारो श्रीनेमिप्रभजीरा गुण भाषा, महाभद्र नमूं निशदीसा ॥ श्रीविह ॥ ४ ॥ देवजस अजित पीरा, मड

विदेह क्षेत्र विचरे धीरो, ज्यारो नाम लियाँ हिवडो हींसो ॥ श्री विह० ॥ ५ ॥ पांचसौ धनुषांरी देही सहु स्वामी लाख चौरासी पूर्व आयु, अतिशय जिनजीरा चौतीसो ॥ श्री विह० ॥ ६ ॥ जगन्य साधुजी थांरे सौ कोडी, दश लाख जघन्य केवली जोडी, वाणीरा गुण कह्या पैतीसो ॥ श्री विह० ॥ ७॥ चार चार तीर्थंकर एकण मेरू लारो, ज्यांरो साध साधवींनो परिवारो, मुगत जासी आठूं कर्म पीसो ॥ श्री विह० ॥ ८ ॥ ए विहरमान विसोंही जाणी, जांरो भजन करो उत्तमप्राणी, ज्यूं पूरे मनडारी जगीसो ॥ श्री विह० ॥ ९ ॥ शहर मेडते शुभ ठामो, ऋष जयमलजी किया गुण ग्रामो; संवत अठारे चौवीसो ॥ श्री विह० ॥ १० ॥

---

६ गणधर स्तवन.

(वीर जिनेसर केरो शिष्य, इस चालमे)

वंदूं इग्यारे गणधार ॥ टेर ॥

इन्द्र भूतिजीरोलीजे नाम, तो मन वंछित सीझे काम ॥ मोटा लब्धि तणा भंडार ॥ वंदू० ॥ १ ॥ अग्निभूति गौतमजीरा भाई, वीरजीने दीठां समता आई, ऋद्धि त्याग लियो संयम भार ॥ वदू०॥२॥ वायुभूति मोटा मुनिराय, ए तीनोंही सगा भाय, पांच पांचसौ निकल्यालार ॥ वदू० ॥३ ॥ विगत स्वामिजी चौथा जाण, भजन किया जाय अमर विमाण, देवलोकां सुखराझणकार ॥ वदू० ॥ ४ ॥ स्वामी सुधर्मा वीरजीरे पाट, जन्म मरण सेवकराकाट, भुझने आपतणो आधार ॥ वंदू० ॥

॥ ५ ॥ मही पुत्र ने मोरी पूत, मुगत आवसरा दीपा वर्त, त्रिविधे त्यास्या पाप अठार ॥ वंद०॥ ६ ॥ आर्कीपवने अवक्ष प्रता, धीरजी रे वचन रखा रखा चौथ पूरवना मेवार ॥ वंद० ॥ ७ ॥ मतारवने श्रीप्रमास, मुगत नगरमे करविवा वास, जपतांहोय जयजयकार॥ वंद ॥ ८ ॥ एश्यारे प्राम्ब्रव आव, धमार्ईसौ निकस्या साथ, क्यों करदियो खेवा पार ॥ वद० ॥ ९ ॥ इण नामे सब आशा फले, दोखी दुसमन दूरे टले अरदि बृद्धि पामे सुखसार ॥ वंद०॥ १० ॥ इण नासें सब नाझे पाप निवरा अपिए मवियण आप चित चौख्ने दिरदामें धार ॥ वदृ० ॥ ११ ॥ सवत अठार तेयालीस आण, पूज्य जयमलजीरो अमृत वाण, चौमासो स्त्वन किया पीपाड ॥ वदृ० ॥ १२ ॥ आषाढ शुदि सातमेर दिन, गणधरजीन गावा एक मन, भण आशकरणजी अणगार ॥ वदृ० ॥ १३ ॥

---

७ सोलह सतीस्तवन

(ऊपरकी चालमें)

शीतल जिनवर करूं प्रणाम, सोले सतियांरा लेखू नाम ॥ ब्राह्मी चन्दना राजेमति द्रौपदी कौशल्या मृगावती ॥ १ ॥ सुलसा सीता सुभद्रा नाम, शिवा कुन्ता शील गुण धाम ॥ नल-घरणी दमयंती सती, चलना प्रभावती पद्मावती ॥ २ ॥ प्रात गुणे सुहावे सिरी, अपम दमनी पिया सुंदरी, ए सोले सतियां प्रात गुण भरी, भवियण सुमरो भावेकरी ॥ ३ ॥ इण नामें सब सफल ग्ल, मन चिंतित मनारथ फले ॥ इण नामें राव सीझे काज लीजे मुक्तपुरीनो राज ॥ ४ ॥ मूल-मंत

इण नामे टले, ऋद्धि वृद्धि घर आई मिले ॥ इण नामें सुख होय जगीस, ए सातियां सुमरो निशदीस ॥ ५ ॥

---

८ नवकार मंत्र स्तवन.

(वदू सोले जिन सोवन धरणा, इस ढालमें.)

श्रीनवकार मंत्रजीरो ध्यान धरो ॥ टेर ॥

पहिले पद अरिहंत देवा, ज्यांरी चौसठ इन्द्र करे सेवा; मारग ज्यारो शुद्ध खरो ॥ श्री नव० ॥ १ ॥ चौतीस अतिशय पैतीस वाणी, प्रभु सगलांरा मनरी जाणी, कर जोडी जासूं विनती करो ॥ श्री नव० ॥ २ ॥ भवजीवाने भगवंत तारे, पिछे आप सुगत मांहे पधारे, सकल तीर्थंकरनो एकसरो ॥ श्री नव० ॥ ॥ ३ ॥ पनरे भेद सिद्धसिद्धा, ज्यां अष्टकर्मने क्षय किधा, शिव रमणीने वेग वरो ॥ श्री नव० ॥ ४ ॥ चौदेही राजरे ऊपरसही, जठे जन्मजराने मरण नही, ज्यांरो भजन कियां भव सायर तिरो ॥ श्री नव० ॥ ५ ॥ तीजे पद आचारजजाणी, जांरी वह्ल भलारो अमृतवाणी, तन मनसूं ज्यांरी सेव करो ॥ श्री नव० ॥ ६ ॥ संघ मांहे सोहे स्वामी, जिके मोक्ष तणा होय रह्या कामी ॥ ज्यांने पूज्यां म्हारो पाप झरो ॥ श्री नव० ॥ ७ ॥ उपाध्यायजीरी बुद्धि भारी, ज्यां प्रतिबोध्या बहु नरनारी, सूत्र अर्थ ज करे सखरो ॥ श्री नव० ॥ ८ ॥ गुण पचवीसों करी दीपे, ज्यांसूं पाखंडी कोई नही जीपे, दूर कियो जिण पाप परो ॥ श्री नव० ॥ ९ ॥ पांचम पद साधुजी पूजो, यां सरीखा नजर न आवे दूजो, मिटाय देवे ते जन्म जरो ॥ श्री

नव० ॥ १० ॥ जो आत्मारा दुःखदाया, ता पाँच पदाँआरा गुण गावो, कराड मर्चारा कमे हरा ॥ श्री नव० ॥ ११ ॥ पूज जयमलजीरे प्रसादे जोडी, मुणसी सुटे कर्मोरी कोडी; जीव छ कायारा जतन करो ॥ श्री नव ॥ १२ ॥ शहर बिकानेर चौमासे ऋषि रायचंदजी इम भाष, मुक्ति चाहो तो धर्म करो ॥ श्री नव० ॥ १३ ॥

९—(उपजे आनन्द आठों चिन जपतां, इस चालमें)

श्रीनवकार जपो मन रंगे, चौदे पूरव सारर प्राणी, सर्व मंगल मांहे पहला मंगल, जपतां जयजयकारर प्राणी ॥ श्री नव० ॥ १ ॥ पहिल पद त्रिभुवन जन पूजत, प्रणमूं श्रीअरिहतरे प्राणी; अष्ट करम वरजत बीजे पद, ध्याऊ सिद्ध अनंत र प्राणी ॥ श्री नव० ॥ २ ॥ आचारजताजे पद प्रणमूं, गुण छत्तीस भंडार र प्राणी; चौथे पद उपाध्याय नमीजे,सूत्र सिद्धांत नाधार र प्राणी ॥ श्री नव० ॥ ३ ॥ सर्व साधुजी पचम पद प्रणमूं, पंच महाव्रत धारर प्राणी; नवपद, अष्ट पदनी संपदा, अडसठ वरण विचारर प्राणी ॥ श्री० ॥ ४ ॥ मय उपद्रव करिता वान्या, परथा एह प्रसिद्धर प्राणी; चंड पिंगलन चारज हुडक, पामी सुग्नी अद्दरे प्राणी ॥ ५ ॥ सायन पोरसाइण भव मीघा, ग्रिन कुमर शुभध्यानतरे, प्राणी ॥ ६ ॥ सप मिट-धइ पुप्पनी माळा, 'मिरिमति' प्रधानरे प्राणी ॥ ६ ॥ सठ सुदर्शन इमदीज करतां, उपनो श्रीनवकारर प्राणी; शूली मिट सिंहासन हुवा, इन्द्र कर जयजयकारर प्राणी ॥ श्री नव०॥७॥

अहसठ अक्षर एहना कहिए, एक अक्षरनो उच्चाररे प्राणी ॥
सात मागग्ना पातिक जावे, शास्त्र मांहे अधिकाररे प्राणी ॥
॥ श्री० ॥ ८ ॥

१०–श्रीमहावीर जिनस्तवन.

(छप्पयकी चालमें)

श्रीमहावीर शासन धणी, जिन त्रिभुवन स्वामी ॥
चरण कमल नित चित्त धरूं, प्रणमूं शिर नामी ॥
सुरथिति नगरी पिता मात, लंछन अवगाहना ॥
वर्ण आऊखो कुमरपदे तपस्या परिमाणा ॥
चारित्र तप प्रभु गुण भणूं ए, छद्मस्थ केवल नाण ॥
तीर्थ, गणधर केवली, जिन शासन परिमाण ॥ १ ॥
देवलोक दशमें–वीस सागर पूरण स्थिति पाया,
कुण्डन पुरी नगर चली श्री जिनवर आया ॥
पिता सिद्धार्थ पुत्र मात त्रसलादे नंदा ॥
ज्यांरी कूंखे अवतऱ्या श्री वीर जिनन्दा ॥
ज्यांरे चरणां लांछन सिंहनो ए, अवगाहना करमात[1] ॥
तन कंचन सम शोभता,–ते प्रणमूं जगनाथ ॥ २ ॥
बहत्तर वर्षनो आऊखो पाया सुखकारी ॥
तीस वरष प्रभु कुमरपदे, रह्या अभिग्रह धारी ॥
सुमेरू गिरिपर इन्द्र चौसठमिल महोत्सव करियो ॥
अनन्त वली अरिहत जान, नाम श्री वीर प्रभु धरियो ॥

---

१ सात हाथ

ज्यांरी मात पिता सुरगति लई ए, पछे लीना संयमभार ॥
तपस्या कीनी निरमली, प्रभु साढी बार बरष मझार ॥ ३ ॥
नव चौमासा तप किया प्रभु एक किया छ मासा ॥
पांच दिन ऊणा अभिग्रह-एक छे मास विमासी ॥
एक एक मासा तप किया प्रभु द्वादश विरिया ॥
बहत्तर पख और दो दो मास छ विरिया करेया ॥
दोय अढाई और तीन दोय ए, इम डेढ मासी दोय ॥
भद्रमहाभद्र, शिवभद्र, तप तप्या इम सोलह दिन होय ॥ ४ ॥
भिक्षुनी पडिमा बाए भगवती द्वादश कीनी ॥
दोयसौन गुणतीस छठमें तप गिणती ठानी ॥
इग्यार वरष छे मास, पचीस दिन तपस्या केरा ॥
इग्यार मास उगणीस दिवस पारणा भलेरा ॥ इण विधि
स्वामीजी तप तपिया ए, पछे लीना केवल नाण ॥
तीस वरष ऊणा विचरिया, ते प्रणमूं वधमान ॥ ५ ॥
प्रथम अस्थि दूजो चंपा, पिष्ठ चंपा दोय कहिए, ॥
वाणिया विशाला ग्राम बिहु मिलि द्वादश कहिए ॥
चतुर्दश नालंदे पाड, छे मिथला भाषिए ॥
भद्दल पुरी दोय मध मिली अठतीसम गणिए ॥
एक आलभिया, एक श्रावस्तीए, एक अनारज आय, ॥
चरम चौमासा पावापुरी, जठे प्रभु पहुंता निर्वाण ॥ ६ ॥
मुनिवर चौदे सहस, सहस छत्तीस अरजका ॥
एक लख गुण सठ सहस श्रावक, तीन लाख श्राविका ॥
अधिक अठार सहस, इग्यारे गणधरनी माळा ॥

---

१ देवगति २ पक्ष, ३ बैरा

गौतम स्वामी शिष्य बडे, सती चन्दनबाला ॥
जारं केवल ज्ञानी सातसौ ए, प्रभु पहुँता निर्वाण ॥
शासन वरते श्री वीरनो, इकवीस सहस्र वर्ष प्रमाण ॥ ७ ॥
पूर्व तीनसौ धार, तेरहसौ अवधिज्ञानी ॥
मनःपर्यव पांचसौ जान, सातसौ केवल ज्ञानी ॥
वैक्रय लब्धिनाधार, सातसौ मुनिवर कहिए ।
वादी चारसौजान, भिन्न भिन्न चर्चा लहिए ॥
एका एक चारित्र लियोए, प्रभु एका एक निर्वाण ॥
चौष्ठ वरष लग चालियो, दर्शन केवल नाण ॥ ८ ॥
बारह नरबल वृषभ, वृषभ दश एक जिम हयवर ॥
बारह हयवर महिष, महिष पांचसौ एक गयवर ॥
पांचसौ गज हरी[1] एक सहस्र दोय हरी अष्टापद ॥
दशलाख बलदेव-दोय वासुदेव और दोय चक्रीपद ॥
क्रोड चक्री इक सुरकह्योए, क्रोड सुरां एक इन्द ॥
इन्द्र अनन्तासूं नहीं नमें, चिटी अंगुली अग्र जिनन्द ॥ ९ ॥
आपतणा प्रभु गुण अनन्त कोई पार न पावे ॥
लब्धि प्रभावे, क्रोड काय, कोई शिर क्रोड वणावे ॥
शिर शिर क्रोडा क्रोड वदन, क्रोडा क्रोड सुवाणी ॥
जिभ्या जिभ्या सूं क्रोड क्रोड गुण करे सुज्ञानी ॥
केई क्रोडाक्रोड सागर लग ए, करे ज्ञान गुण सार ।
तो पिण पार पावे नहीं, प्रभु गुण अनत अपार ॥ १० ॥
चौदेही राजूलोक भरिया, वालूना कणिया ॥
सर्व जीवनी रोमराय नहीं जावे गिणिया ॥

१—सिंह.

एक एक साळ्ह गुणकरी प्रभु अनन्त अनंता ॥
पूज्य प्रसाद रूप लालचंद कह, नहीं आवे अन्ता ॥
संवत अठारे बासठ ए, मास मृगसिर छन्द ॥
राम पुर गुण गाविया, धन्य धन्य वीर जिनन्द ॥ ११ ॥

१०—दान, शील, तप, भावपर स्तवन

सांभल जीवडारे ! दानज दीजिये, दान शिवसुख मेवा कीजिए। कीजिए संचो मुक्ति सुखनो दान अयांम दियो, धन्न सेठ कुमर सुबाहु प्रमुख, शालिभद्र प्रसिद्ध थयो ॥ दान ए मूलराज पामा मेठ घम मद्दिलही, गोपाल ब्राह्मण खीरदाने, रत्न वरषा घर थई ॥ रेवती औषधिदान दिया, चन्दनबाला सुख लह्या इम जाणी जीवडा दान दीजे दुरगदास गणि इम कह्यो ॥ १ ॥ सांभलो जीवडा शील भलो भणू , आपद खण्डण संपतिकारणू ॥ संपतिकारण शील गिरुआ, नेमनाथे पालियो, जम्बू स्वामी धम कारण, तजी आठों नारियां ॥ सेठ सुदर्शन शील बलकर शूली सिंहासन थया ॥ स्थूल भद्रजीको शील अविचल अमर स्वामी यह रह्यां ॥ द्रोपदी, सीता अने सुलसा, पद्मावती जग जाणिए ॥ इम जाण जीवडा शील पालो दुर्गदास वखाणिए ॥ २ ॥ सांभलो जीवडारे, तप तपिये भला, द्वादश भेदे रे जग मही निर्मले ॥ निर्मला द्वादश भेद तपिये, वरस दिवस प्रथम जिन ॥ छ मास तप बल ज्ञान पायो वीर जिनवर तत्सर्व ॥ बलदेव तपबल सुजस पाम्यो धन्नो साधु वखाणिए ॥ हर कुशी मुर पूज्य हुआ तप प्रभावे जाणिए ॥ काली सुकाली

आदि सतियां राज शिव पुरनो लह्यो ॥ दुर्गदास गणि एम भाखे, तपे वारज सिद्ध वायो ॥ ३ ॥ सांभल जीवडा भावना भाविए, भावनथी सुख शाश्वता पाइए ॥ पाइए शाश्वता सुख उत्तम भरत केवल पामियो ॥ इला सुत चन्द रुद्राचारज, आदिदे शिवगामियो ॥ भवदेव, जीरण शेठ, मृगलो, दृढप्रहारी मुनीश्वरो ॥ मुनि अर्हनक, कुमर ढढण, गज सुकुमाल यतीश्वरो मरुदेवी, राजमति, मृगावती, वली केवल ज्ञान प्रकाशियो ॥ इम शुद्ध भावना भावो भवियण, दुर्गदास गणिभाषियो ॥ ४ ॥

११—हितोपदेश.

भव जीवा, करणी हो कीजो चित्त निर्मली ॥ टेर ॥

भविजीवा, आदि जिनेश्वर विनवूं, सतगुरु लागूं पाय ॥ भविजीवा, मन, वच, काया वश करो, छोडो चार कषाय, ॥ भवि० ॥ १ ॥ भविजीवा; मनुष जनम दुर्लभ लह्यो, सूतर सुणवो सार ॥ भविजीवा, साची सरधा दोहिली, उत्तम कुल अवतार ॥ भवि० ॥ २ ॥ भविजीवा, सिकियो इण संसारमें, ज्यूं भडभुंजानीभाड ॥ भविजीवा, निर्ग्रंथ गुरु हेला देवे, अन्तो आंख उघाड ॥ भवि० ॥ ३ ॥ भविजीवा, मोहमिथ्यातरी नींदमें, सूतोकाल अनाद, ॥ भविजीवा, जनम मरण जग पूरियो, ज्ञान विना नहीं याद ॥ भविजीवा० ॥ ४ ॥ भविजीवा नरकतणा दुःख दोहिला, सुणतां थर हरे काय ॥ भविजीवा, पापकर्म इकट्टा किया, मार अनंती खाय ॥ भवि० ॥ ५ ॥ भविजीवा, चंद्र सूरजनो मुख नहीं, दसे घोर अंधार ॥ भविजीवा, न्हासणनें

सरी नहीं, जिहां बाप तिहां मार ॥ ६ ॥ मविजीवा, स्वर्ग
धामी देवता, ज्यांरी पतरा मात ॥ मविजीवा मार वेदे मध्ये
जीवरे, कर अनती घात ॥ ७ ॥ मविजीवा, वैतरणी नदी के
किनरा तीखो नीर ॥ मविजीवा, अल फरसावे जीवने, भिन्न
भिन्न होय शरीर ॥ ८ ॥ मविजीवा, ताता तरवा मल भरी,
नदी वैतरणी घोर ॥ मविजीवा, तिणमांही डवकापिला, केई
न लागे जोर ॥ ९ ॥ मविजीवा, मवमांहि छविया रखा, पिवत
अणगल नीर ॥ मविजीवा ताता शीशा मावतां उठ पुकार
पीड ॥ १० ॥ मविजीवा, दयादवीसे विणसतो मन दंनमें और
॥ मविजीवा कीधा पसारा पापरा, छूटे करकर आर ॥ ११ ॥
मविजीवा, चोरी करतां पारकी, म्होसी लया माल ॥ मविजीवा
नरमर्मे अथायुगा, त्यां होवे हालवहाल ॥ १२ ॥ मविजीवा,
काढ २ कर काढवो, वेदन बहुली थाय ॥ मविजीवा, सुमतो
जीवेजा घरहर तथा किसीपर आय ॥ १३ ॥ मविजीवा, पापी
परानीपरे, ताके ने मिलजाय ॥ मविजीवा, आवानी पर
बालम, ता पिण मरण न थाय ॥ १४ ॥ मविजीवा, आपसमें
लड़तां थका, कलतारास अपार ॥ मविजीवा, पुरखोर पडे,
फिर पाछा मिलजाय ॥ १५ ॥ मविजीवा, मांघो मोजनरातरो,
करतां डरता नाय ॥ मविजीवा, कोमर, विष्ठ वहने पाले, सूवर
मांय ॥ १६ ॥ मविजीवा, अर्थ अनर्थ पाप करण, होस्या
सुख विन ज्ञान ॥ मविजीवा, राघलाईम्ं वैतरणीमें करावे नित्य
स्नान ॥ १७ ॥ मविजीवा, घघामें छूता रक्षा, छूता मरने मार
॥ मविजीवा, भगत वप रूप जांवन्या, धरती पुके अगार
॥ १८ मविजीवा, डोकाम्ं मारता सदा, न आण्या तिथिवार ॥

भविजीवा, प्रसन फूल फल छेदिया, दया न आणी लिगार ॥ १९ ॥ भविजीवा, वृक्ष तिहां कूंड सावली, जिणरी बैसारे छांय ॥ भविजीवा, पानपडे तरवार ज्यूं, टूक टूक हो जाय ॥ ॥ २० ॥ भविजीवा, लोहतणी करे पूतली, फरसावे ते अंग ॥ भविजीवा, रंगराता माता फिरे परत्रियाके संग ॥ २१ ॥ भविजीवा थांभोदेखी थारहन्यो, कंपण लागी देह ॥ भविजीवा, हा हा, मुझवालो मती ! ! फेर न करसूं नेह ॥ २२ ॥ भविजीवा, हाथ पांव छेदन करे, नांखे अंग मरोर ॥ भविजीवा, कहो किण ओले उबरे नहीं किणरोही जोर ॥ २३ ॥ भविजीवा, पापकर्म किया घणा, कर २ मनमें हूंस ॥ भविजीवा, बोले परमाधामी देवता, नहीं हमारो दोष ॥ २४ ॥ भविजीवा, क्षिणजीतव सुखकारणे, पल सागरसहेमार ॥ भविजीवा, विण भूगत्यां छूटे नहीं, छेदन भेदन मार ॥ २५ ॥ भविजीवा, सतगुरुनी वाणी सुणो, जीतो क्रोधने मान ॥ भविजीवा, कुगुरु, कुदेव धर्म तजी, जिन वचने रुचि आण ॥ २६ ॥ भविजीवा, सतगुरुनी सेवा करो, पाखंड मत परो निवार ॥ भविजीवा, शुद्ध समकित हियडे धरो, ज्यू पामो भवपार ॥ २७ ॥ भविजीवा, पंचमहाव्रत निर्मला, तपस्या बारह भेद ॥ भविजीवा, संयम सतरा भेदनो, करो कर्मासूं खेद ॥ २८ ॥ भविजीवा, सूधो संयम एक दिन तणो, पाल्यां, पामेभवपार ॥ भविजीवा, स्वर्गमें सांसो नहीं, तिणमें फेर न सार ॥ २९ ॥

१२—चक्रवर्ति भर्त्त महाराजकी ऋद्धि वर्णन

प्रथम समरीए ऋषभजिनन्दए, नाभिराजा मरुदेवीनानन्द
ए ॥ त्यां प्रभुजीके एकसो पुत्र थया, भर्त महाराज सघलोमें
शिरे कह्या ॥ १ ॥ पदवी चक्रवर्ति छ खण्डना धणी, देश
प्रदेशोमें आण फैली घणी ॥ खण्ड किया सब अपने अधिकार
ए साधतां लागा वर्ष साठ हजार ए ॥ २ ॥ सितंतर लख
पूर्व कुमर पद रह्या, वर्ष हजार मण्डलीक राजा थया ॥ छे
लाख पूर्व सहस्र घाट ए, भोगव्यो राज चक्रवर्ति घाट ए
॥ ३ ॥ पूर्वपुण्य भरतेश्वर कीधए, वैसी ज्यां पामी छे सामिलो
ऋद्ध ए ॥ चौदे रतन नवनिधान ए, चौसठ हजार सेवे पति
गजान ए ॥ ४ ॥ सहस्र बत्रीस कह्या वलि देश ए ॥ सहस्र
छासे सुरसेवे हमेश ए ॥ चौसठ सहस्र अंतेवरनार ए, दोदा
बारमना एकस्य लार ए ॥ ५ ॥ नाटकना पचरसा अधकार ए,
कामर्थी एक लाख ने बाणवे हजार ए ॥ एतला रूप वैक्रय
करे हरी, मर्द बिना काई महल खाली नहीं ॥ ६ ॥ सोले
हजार सेवा करता सिरदार ए, सहस्र बहोंतर नगर अधार ए
॥ मण्डप सहस्र चोवीस अधिकारी, सहस्र अडतालीस रतन
पाटण कही ॥ ७ ॥ चोवीस हजार केंबरना ठाम ए, मर्दन
क्रोड छिन्नू कह्या गाम ए ॥ ८ ॥ चौरासी लाख रथ, हयवर
धार ए, पायदल चालिया छिनवें क्रोड ए ॥ तीन सो लाख
आयुध शाला जाण ए, लाख चौरासी ज्यारे कह्या निशान ए
॥ ९ ॥ दश सो क्रोड कही ध्वजा पताक ए, दीवीकरा कह्या
पांच सो लाख ए ॥ बहत्तर भोजन लगे सीर सो माप ए,

तीन तो क्रोड, गोकल कह्या गाय ए ॥ १० ॥ एक तो क्रोड वली हलज भाख ए, भोजन करा कह्या तीन लाख ए ॥ सैन्या तणा घर छत्तीस हजार ए, तीन तो क्रोड मूथा वली यार ए ॥ ११ ॥ चौऱ्यासी लाख कह्या कोटवाल ए, चतुर सैन्या करे सार संभाल ए ॥ चोर लुच्चा तणी नही पडे फेट ए, तीनतो क्रोड कह्या भर्तने सेठ ए ॥ १२ ॥ भरतने जोवतां नजरधापे नहीं, सहस्र छत्तीस तो राजधानी कही ॥ तीन तो क्रोड वाजा नित नही खंडे, चौद हजार तो वली मेला मंडे ॥ १३ ॥ रसोईदार कह्या तीनसो साठ ए, लाख सवा तो दिवी नहीं घाट ए ॥ तीन तो क्रोड वेदां तणी जात ए, हाजर ते खडा दिनने रात ए ॥ १४ ॥ लश्कर कोश अडतालीसमें पडे, चार क्रोड रसोडे अन्नसरे ॥ केतो सूत्र केतो परंपरा भाख ए, रसोडे लूंण लागे मण दश लाख ए ॥ १५ ॥ शूर ने वीर बलवंत जो मिया, वड २ ऑण नमावें छे भोमिया ॥ दया करुणा तणा ईश भंडार ए, शालनो रूंख शालनो परिचार ए ॥ १६ ॥ बाप आदीश्वर त्रिभुवनराधणी, माय सुमंगला कीर्ति अतिघणी ॥ हाथीरे होदे दादी गई मोक्ष ए, नाभिराजा तो गया देव लोक ए ॥ १७ ॥ दोनों बहना दीक्षा लीनी दै घर दया, भाई निन्नाणूंही साथे मुगते गया ॥ बेटो 'मरिची' पाम्यो भवतीर ए, चौवीसमा जिनहुवा महावीर ए ॥ १८ ॥ भर्त क्षेत्र सोहे पूनम चंद ए, शोभ रह्या घणा भरत नरेंद्र ए ॥ केहवीयों ऋद्धि पामी अभिराम ए, किण विधि सारीया आतम काम ए ॥ १९ ॥ भवनमें मूंदडी पड़त वैरागिया, हाथी घोडा रथ पायदल त्यागिया ॥ केवल उपजावियो भर्त नरेश ए, राजेन्द्र श्री

दिया उपदश ए ॥ २० ॥ मातपिता सहु कुटुंब परिवार ए, कारमों कुटुम सहु अथिर संसार ए ॥ चहरवाडीनी मायां ही लाग ए, इम जाणी मन आंण्यो बैराग ए ॥ २१ ॥ मिथ -लाम कथा तिणवार ए, बैराग पायो राजा दश हजार ए ॥ छाडदिया हय गय ऋद्धि परिवार ए॥ भरत लारे लियो संयम भार ए ॥ २२ ॥ भरतजी, पूर्व भव पुण्य संचय कियो, पांचसो माधुने पारणो आणी दियो ॥ तिणरई लाधी पदवी खास ए, कर्म खपाय किया वास सिद्ध ए ॥ २३ ॥ लाख पूर्व तोई चारित्र पालिया, आतम दोष अतिचार सहुटालिया ॥ उपकार किया तान्या बहु लोक ए, मास संथार बिराजिया मोक्ष ए ॥ २४ ॥ इसका पुरुषों सोभा पुण्यवत जोय ए, धर्म कीजा चित्त हर्षित होय ए ॥ संवत् अठार पैंतीसमें प्रकाश ए का र्तिक मासन तिथरी चोमास ए ॥ २५ ॥ प्रसाद पूज्य कथा जयमल्लजी तणा, स्वामी रायचदजी उपकार कियो घणा ॥ ऋषि आसकरण कहै ग्रथमें आव ए, भरत वंदना वे कर जोड़ ए ॥ २६ ॥

१३—तपका महात्म्य

तप बडा र ससार में ॥ ऌर ॥

तप बडार संसार में, जीव उज्वल थाय र ॥ कर्म रूप इंधन बल, शिव नगरी सिधाय र ॥ तप० ॥ १ ॥ तपस्याई रूप पाय घणों सुर नर अपछरारे ॥ ऋद्धि वृद्धि सुख सम्पदा, पामे

लब्धि श्रीकारोरे ॥ तप० ॥ २ ॥ तपस्यासूं रोग दूरे टले विघन सहु भाग जावेरे ॥ तपस्यासूं देव सहाय करे, घर लक्ष्मी चल आवे रे ॥ तप० ॥ ३ ॥ राजा पिण आदर देवे घणो, चावे ज्यूं तीर नीरोरे ॥ लोक भाषा इणपर कहे, इणरो तपस्याभे सीरोरे ॥ तप० ॥ ४ ॥ करतां एक नवकारसी, सो वर्ष नरकरा टूटेरे ॥ दश पच्चक्खाणमें नफो घणो, आवागमनसूं छूटे रे ॥ तप० ॥ ५ ॥ अज्ञानीपण तपस्या करे, तोही निरफल न जावे रे ॥ ग्यान सहित तपस्या करे, गर्भावास न आवे रे ॥ तप० ॥ ६ ॥ पोते जो तप पूरो हुवे, तेज नहीं पडे मंदो रे ॥ सेवक आँण माने घणो, सदा वरते आनन्दोरे ॥ तप० ॥ ॥ ७ ॥ खरो खजानो तप मालनो कोई पुण्यवंत संचे रे ॥ चाल्यां तो जाय वैकुंठमें, जातां कोई न पाले रे ॥ तप० ॥८॥ तपस्या तो कीधी महावीरजी, कर्म कठिण सब भागा रे ॥ धन्नो मुनीश्वर तप तप्या, सर्वार्थ सिद्ध जाय लागारे ॥ तप०॥ ॥ ९ ॥ बेले तो बेले कीनो पारणो, गणधर गौतम स्वामीरे ॥ खंधक मुनी तप तप्या हुवा मुक्तरा गामीरे ॥ तप० ॥ १० ॥ अर्जुन माली उर धारिया मुनिवर मेघकुमारो रे ॥ राय प्रदेशी तप तप्या, जासी मुक्ति मझारो रे ॥ तप० ॥ ११ ॥ आठ राणी श्रीकृष्ण की, ब्राह्मी सुन्दरी चन्दन बाला रे ॥ तेवीस श्रेणिकरी सुन्दरी, तोड्या कर्मरा जाला रे ॥ १३ ॥ इत्यादिक मुनि तप तप्या, कहूं कितांरा नामो रे ॥ कर्म कठिन दल जीतने, ध्यायो उज्वल ध्यानो रे ॥ १४ ॥ शक्ति सारू तपस्या करो, निश्चय सुख अपारोरे ॥ ऋषि आशकरणजी इम भणे, जोधाणा शहर मझारो रे ॥ तप० ॥ १६ ॥

१४–पूज्यगुणाष्टक

पूज्यश्री रामजीरो जाप करो, दुःख दोहग सागर दूर टरो ॥ धनधान्य सम्पा भंडार भरो, घर ध्यान हिये अभिध्यान धरो ॥ १ ॥ यक्ष राक्षस भूत अलग जावे, डाकिनी शाकिनी नहीं संतावे ॥ ताव तेजरा नहीं आवे, पूज्य नाम लियां साता पावे ॥ २ ॥ राजकाजमें जाप रुपे, दिल ध्यान धर्यां अरि हाथ दपे ॥ सजे करी सपनें तद रुपे, जो पूज्य तणो मन जाप जपे ॥ ३ ॥ लक्ष्मी विणज बहु लाभ लहे, दारिद्र पातकनो मूल दहे ॥ रस रंग सदा सुख रहे, बैठां गृहमांही गंग बहे ॥ ४ ॥ गमण दुस्मन अरि दूर टले, गज गैवर हयी तुरत गले ॥ चार चुगल बलि नाहीं छले, पूज्य नामें मनोरथ माल फले ॥ ५ ॥ कपटी चुगल कपट करे, पग छल छिद्र घांकेर फिर ॥ उण विरिया याद करे हिवडे रंग भरी न सके पलमांही डर ॥ ६ ॥ अन्य मंत्र मुधा कहो कुण आराधे, सदनाम पूज्यना के साधे ॥ सीलयुत पुत्र कलत्र लाधे, बहुधा बलमान पणो वाधे ॥ ७ ॥ गच्छ नायक गुणगण स्तवन गुणा, कालु बन चित्त लगाय सुणा ॥ दुरित घट पुण्य पाथ घणा, 'नयमलक' निश्चो पूज्य नाम तणा ॥ ८ ॥

१५–दूसरा पूज्यगुणाष्टक

पूज्य कानिरामजीरा जापकरा ॥ टेर ॥

पूज्य नाम मंगल महिमा भारी, नित ध्यानधरो तुम नरनारी

मती रक्खे, फिरतो अलख जगाया रे ॥ सुणियो० ॥ १२ ॥ जा, जा, कही शीख तवदीनी, किनको नही सुनावो ॥ आय सदन धन सब चूंचायो, बावो कर गयो बावो रे ॥ सुनि० ॥ ॥ १३ ॥ मुल्ला फकीर ज्योतिषी जिन्दा, भाव भेरूका गावे ॥ अक्कमंद सबहीको धोके, फिर दारिद्र जोग नहीं जावे रे ॥ सुनियो० ॥ १४ ॥ इन भव एह फजीती होवे, परभवमें दुःख पावे ॥ तो पिण भोले नर नहीं समझे, अन्दर ज्ञान न आवे रे ॥ सुणियो० ॥ १५ ॥ साल बयाल उगणीसौ काती, चौदश चौमासी चारू ॥ नया नगर हलुकर्मी हितकों, वदी ढाल ए बारू रे ॥ सुनि० ॥ १६ ॥ रेखराज कहे, सदा सुख चावौ, तो इण ते छिटकावो ॥ लाभ हानि कर्मा अनुसारे, धर्म ध्यान लय लावो रे ॥ १७ ॥

१७—श्रावकोंको हितशिक्षा.

(वदू सोले जिन सोवन वरणा, इस चालमें)

दोहा—" श्रावक नाम धरायके, एवो करे अकाज ॥
तिणनें समझं श्रद्धता, मनमें आवे लाज " ॥

ते श्रावक किम उतरे पारो ॥ टेर ॥

ऐंडा मारे ने घडियां उडावे, सुदरी वद करने दिखावे ॥ त्यागे नहीं पारकीनारो ॥ ते श्राव० ॥ १ ॥ परनारीने रहे तकता, जिम ग्रहणमांही मगता फिरता ॥ वचन वदे अति

य न घाटका, दपे छ, सतगुरु घाटका, मस पीवो आहरबर घाटका, ख्याल बना है बाग़का ॥ मुनियो० ॥ टेर ॥ आतम ध्यान रहे निश मनमें धर्म ध्यान नहीं सूझ ॥ जो कोई मिले आलियो गलियोंमें, प्रथम मावकी बूझर ॥मुनि॥१॥ अबक मैय्या! हमी मारी, सुण खीच होय गया राजी, घरमें आय कहे सुनो प्यारी करो रसोई सावीरे ॥ मुनियो० ॥ २ ॥ कंचनमय करादूं बाजू करदूं पीली जर्द ॥ भूषण सर्व मांतका भारी, तो बालीजो मर्द र ॥ मुनि० ॥ ३ ॥ मांगा घोटे तार जमावे बाजारां बिकवावे ॥ इतराईमें मही हाठी, छाने इसलथा लावे जी ॥ मुनियो०॥ ४ ॥ देखे कामिनी बाल कृंवा दीसे वदन उदासी ॥ बोल्यो सटक खोलदे गहणाँ, नहीं तो खाऊं फांसी रे ॥ मुनि० ॥५॥ वाली त्रिया पहली में मरज्या, चंगा नहीं अइ चाला ॥ गहणा सब सावरू हाथका, इणकी बाट न न्हालो रे ॥ मुनियो० ॥६॥ नैन लालकर बोल्या झटकी, खोले छे के नाहीं ॥ थारा बापके नहीं छे गहणो, दूंबा कठाए लायरे ॥ मुनियो० ॥ ७ ॥ जो मुझसे तू करे जिदगी, तो तुझे परआऊं ॥ होय जोड़कर बोल्यो प्यारी, बेगोएइ छुगाऊं रे ॥ मुनि० ॥ ८ ॥ ज्यों त्यों इली चालियो छाने, अब बोरापे आवे ॥ दूणों द्रव्य ध्यान अरु दूमो कानें लार लगावे रे ॥ मुनियो० ॥ ९ ॥ इसे मुनियो वन आयो अवधू नैन पलक नहीं खोले, फक अक उनसे नहीं छाना, आ वज्रवचन न बोले रे ॥ मुनि० ॥ १० ॥ लम्बा करकर करे दण्डवतां, जो कुछ माय खावे ॥ आवे बाजार चंडाले आवे गांजा चरस पिलावे रे ॥ मुनियो० ॥ ११ ॥ पलक खोल कहे सुनरे बच्चा ॥ माई-खक्ति हुकम फरमाया ॥ इतना पकं घरक

मती रक्खे, फिरतो अलख जगाया रे ॥ सुणियो० ॥ १२ ॥ जा, जा, कही शीख तबदीनी, किनको नही सुनावो ॥ आय सदन धन सब चूंचायो, बावो कर गयो वावो रे ॥ सुनि० ॥ ॥ १३ ॥ मुल्ला फकीर ज्योतिषी जिन्दा, भाव भेरूका गावे ॥ अक्लमंद सबहीको धोके, फिर दारिद्र जोग नहीं जावे रे ॥ सुनियो० ॥ १४ ॥ इन भव एह फजीती होवे, परभवमें दुःख पावे ॥ तो पिण भोले नर नहीं समझे, अन्दर ज्ञान न आवे रे ॥ सुणियो० ॥ १५ ॥ साल बयाल उगणीसो कावी, चौदश चौमासी चारू ॥ नया नगर हलुकर्मी हितकों, वदी ढाल ए चारू रे ॥ सुनि० ॥ १६ ॥ रेखराज कहे, सदा सुख चावो, तो इण ने छिटकावो ॥ लाभ हानि कर्मा अनुसारे, धर्म ध्यान लय लावो रे ॥ १७ ॥

१७–श्रावकोंको हितशिक्षा.

(वदू सोले जिन सोवन वरणा, इस चालमें)

दोहा–" श्रावक नाम धरायके, एवो करे अकाज ॥
तिणनें समझूं श्रद्धता, मनमें आवे लाज " ॥

ते श्रावक किम उतरे पारो ॥ टेर ॥

एंडा मारे ने घडियाँ उडावे, सुदरी वद करने दिखावे ॥ त्यागे नहीं पारकीनारो ॥ ते श्राव० ॥ १ ॥ परनारीने रहे तकता, जिम ग्रहणमांही मगता फिरता ॥ वचन वदे अति

विकारो ॥ २ ॥ सूंक खाय ने पेट भरे, दिसीस देईने वांत करे ॥ लाज धर्म नींदे सेसारो ॥ ते श्रावक ॥ ३ ॥ नीर अछाण्यांमांही घले, भैंसा जिम पर्यांने रोल करे ॥ वले पीवण रो नहीं परिहारो ॥ ते० ॥ ४ ॥ कंदमूल भखे ने तक मूला, बहुबीजा रांध कर कोलो ॥ वले बोरं भखे लट इहारा ॥ ते श्रावक० ॥ ५ ॥ अछती कलियां मांही मिले, कोई सांटे पैवार चले ॥ जो उपगरा नहीं सांचारो ॥ ते श्राव० ॥ होकव पीवे ने मंद्यमांस भखे, रात्रि भोजन निशि दिवसे चके खातां २ पहावाले अंधारो ॥ ते० ॥ ७ ॥ हुलनी कंदि हुंगे तापे, वले ख्याल, गुल यक सम कर आवे ॥ जिम मदक किया रहे नर मारो ॥ ८ ॥ श्रावक मिलियां सरसरी आखे, छलवल कर निसरी न्हासे ॥ पूरा हैस करे ॥ वेइ अपरपारो ॥ ते० ॥ ९ ॥ कर्मादान करे पनरे, वले, पत्थर फोडावने विल करे ॥ वले ऊंट बलदरो लेवे मारो ॥ ते श्रावक० ॥ १० ॥ खुमली साथ कहे अर्छती; परघरे बैठो नहीं सांधरती, जाणे धर्मी ठग बुगलाकारो ॥ ते श्रावक० ॥ ११ ॥ बैठन आडंबरे कर अभ्रो बोया बादल जिम गाजतो; लोकनी लाज नहीं लिगारो ॥ ते श्रावक० ॥ १२ ॥ पर दोष न देखे तिल भिसरो, वले आप ताही आल देवे निवरो, परनिंदारो नहीं पारो ॥ ते श्राव ॥ १२ ॥ नहीं संजम पचखाणरती, तप सूल करे नहीं शक्ति मती ॥ सूर पखो लोपण लोरो ॥ ते० ॥ १३ ॥ देव गुरु धर्म नहीं लासिया वले श्रावकांमें वाजे सुखिया, जिम अंतरपटे मांहीं अधारो ॥ ते० ॥ १४ ॥ तत्त्व वर्णोन करे निरखो, विष अम्रतो मांव भेल्यो सरणो ॥ किम उतरे भवजल पारो ॥ ते०

श्रावक० ॥ १६ ॥ नितरा देव देवी पूजे, अंतर घटमें नहीं सूझे कैसे हुवे उणरो निस्तारो ॥ ते श्रावक० ॥ १७ ॥ इम सुणने ममता मेटो, एक देव निरंजन शुद्ध भेटो, 'रत्न' कहे सुणो नरनारो ॥ ते श्रावक० ॥ १८ ॥

१८—हितोपदेश.

(मन मोह्योरे तुगियापुर नगर सुहामणो, इस चालमें)

प्राणी! थारो, आऊखो तूंटाने सांधो को नहीं रे ॥ टेर ॥ आऊखो तूटाने सांधो को नहीं रे, इम जाणी मत करजो प्रमाद रे ॥ जरा आयाने शरणो को नहीं रे, हिंसादिक छोड्यां हुवे समाध रे ॥ प्राणी० ॥ १ ॥ ऊंचा चणाया मंदिर मालिया रे, दे दे धरतीमें ऊंडी नींव रे, एक दिन ऊभा छोडी जावसी रे, आगे दुःख सहसी आपरो जीव रे ॥ प्राणी० ॥ २ ॥ माता पितादि नारी कारणें रे, जे कोई संचे जाडा पाप रे ॥ ते चोर तणी परे झूरसी घणा रे, परभवमें सहसी घणो संताप रे ॥ प्राणी० ॥ ३ ॥ युगल्यांरो तीन पल्योपम आऊखो रे, लांबी जोरी तीन कोशनी काय रे ॥ कल्पवृक्ष पूरे दश प्रकारना रे, वादल जेम गया विलाय रे ॥ ४ ॥ चक्रवर्ति ने हलधर केशवा रे, वले इन्द्र कहिए सुरांरा राय रे, ॥ ऊगी ऊगीने ते पिणं आयम्या रे, जो जो या अचरज वाली वातरे ॥ प्राणी० ॥ ५॥ अथिर संसार जाणी तज निसऱ्यारे, करता नवकल्पी उग्र विहार रे ॥ भारंड पंखीनी त्यांने ओपमा रे, नधरे मुनिममता, मोह लिगार रे ॥ प्राणी० ॥ ६ ॥ ते आचार पाले छे सूधी रीतसूं रे,

आपरा छदा सघलो सधरे ॥ त युगतमें जासीबग सघावई रे॥ त्यारी निर्मल लेश्या, रूडी शुध रे ॥ प्राणी० ॥ ७ ॥ जे आवन धयमें धर्म करे नहीं रे, त्यांसु पछे पिण करणी आवे नाय रे ॥ ते मरण अवसर घणा पिछतावसी रे, सोच विचार करा अंतरग मांय रे ॥ प्राणी० ॥ ८ ॥ जे जीव पडिया विषय प्रमादमें रे, त्यांसु धर्म करणी नावे अंतकाल रे ॥ प्रासणी ज्यों दुखिया हासी घणा रे, पडिया वासुमंसो सूरत संभाल रे ॥ प्राणी० ॥९ शब्द रूप गन्ध रसने स्पर्श छे रे, पणगमता ऊपर मत आणो द्वेष रे ॥ राग मत आणों मन ममता ऊपरें रे, अरिहंत वचना सांमो देख रे ॥ प्राणी० ॥ १० ॥ क्रोधादिक चारों अलमा करो रे, च्यारुंही दुरगतिना दातार रे ॥ लोक पालंडी छे अतिघणा रे, ज्यांने दूर वर्ज्यां हावे खेवा पार रे ॥ प्राणी० ॥ ११ ॥ वृक्ष तणा जिम पाका पानडा रे, ज्यांने पडतां न लागे कांई वार रे ॥ ज्यों टूटे आऊखो, मरतों मनुष्यन रे कोई न दीसे राखण हार रे ॥ प्राणी० ॥१२ ॥ मात पितादिक ऊभा मेलने रे, परभवमें जासी एकलो आप रे ॥ बिछावियां पछे मिलस्यो दाहिलोरे, पुण्य गया आसी बेटा बाप रे ॥ प्राणी० ॥ १३ ॥ जीवडा बन्धन रमा माया विषे रे, मातपितादिक सौ माय रे, ताणा बंधा त्यारे लागा रह रे, आशामें लुब्धा चल्या जाय रे ॥ प्राणी० ॥ १४ ॥ जीवडो काय छोडे तिण अवसरे रे, मन माँही चिन्तव अनेक संभाल रे ॥ मैथुन सेवन छाडो तियो नहीं रे, भ्रम विलु करतो करजाय काल रे ॥ १५ ॥ जीव ता आये कई दिन थिर रहे रे पिण मरण आये नहीं म्हाले जोर रे ॥ जन्म मरण सगला जगतमें रे, मुद ता पढीज मोटी खोड रे

॥ प्राणी० ॥ १६ ॥ धन गडियों घरमें, वली लेणो लोकमें रे, जाणे पुत्रादिकने देऊँ सर्व बताय रे ॥ पिण जीभ थाकी नहीं आवे बोलणी रे, सगली रहगई मनके माय रे ॥ १७ ॥ काया माया छ सबही कारमी रे, कारमों छे सबही परिवार रे ॥ मिल २बिलजावे बादलनी परे रे, एवो छे सबही अथिर संसार रे ॥ १८ ॥ कांई घीयोने कांई करणो अछे रे, घर हाटादिक ब्याह व्यापार रे ॥ मायो मेलूं२करतो फिरे रे, पिण काल अचित्यो नांखे मार रे ॥ प्राणी० ॥ १९ ॥ घरग कारज पूरा कर नहीं सक्या रे, अधबीच छोड चल्यो सहु कोयरे ॥ जे घर बंधे खूंता रहे सदा रे, ते गया नर भव खोयरे ॥ प्राणी० ॥ २० ॥ मनुष्य तणो भव छे अति दोहिलो रे, उत्कृष्टो पांमे अनंतो कालरे ॥ अल्प सुखांरे कारण बापड़ा रे, हारे मानव भव मूरख बाल रे ॥ प्राणी० ॥ २१ ॥ एवो आऊखो अथिर जाणनेरे, करजो जिनेश्वर भाख्यो धर्म रे ॥ सिद्धिगति जावारी हुवे चावना रे, तो दिन२ पतला पाडो कर्म रे ॥ २२ ॥ इमकही कहीने वली कितरो कहूं रे, सगलोही जाणो अथिर संसार रे॥ ज्ञान दर्शनने चारित्र बिना रे, सार मत जाणो मूल लिगा रें ॥ प्राणी० ॥ २३ ॥

१९—धन्ना मुनि स्तवन.

(ख्यालकी चालमें)

काकन्दी नगरी भलीस रे, जितशत्रु तिहांराय ॥ बाग बात्र-

ही भाविया सरे, सुन्दर शोभा काय ॥ देखतां मन हुलस सरे नैन रह्या लुभायर ॥ १ ॥

'तू सुण म्हारी जननी, आज्ञा देवे तो संयम आदरूं'

भगवत आप समोसर्‍यासरे, घणा मुनि परिवार ॥ खबर हुई सब शहरमेंसरे, वन्दन चल्या नरनार ॥ धमाजी पण आवियासरे, कर बैठा नमस्कार रे ॥ तू सुण० ॥ २ ॥ भगवत देवे देशनासरे, सर्व जीवां हितकार ॥ सांभली सुण वैरागियासरे, जाण्यो अथिर संसार ॥ हाथ जोड़ने इम कहे सरे लेसूं संयम भार रे ॥ तू सुण० ॥ ३ ॥ जिम सुख होवे तिम करोसरे, भगवंत दियो फरमाय ॥ घर आई धन्नो कहे सरे आज्ञा दो मोरी माय ॥ वचन सुणी पुत्र तणा सरे माता गई मूरछाय ॥ तू सुण० ॥ ४ ॥ चेतलेय माता कहे सरे सुण पुत्र मोरी वाम ॥ एकाएकी नानड्यो सरे, छोडीने मत जाय ॥ नैने झूरणा झूर रह्या सरे, रोवती बोली माय रे ॥ ५ ॥

'तू सुण नानडिया! दीक्षा मत लीजे म्हाने छोडने (टेर)

कोमल काया सुहामणी सरे, दुक्करो करणो लोच ॥ पांव उभराणा चालणा सरे, जो म्हने घणो आलोच ॥ शीतकालमें सीपड़ सरे जो म्हने घणोज सोच रे ॥ तू सुण० ॥ ६ ॥ बावीस परिषह जीतणा सरे, करणो उग्र विहार ॥ घर घर करणी गोचरी सरे, लेणो निर्दूषण आहार ॥ दोष बयालीस टालणो सरे सहणा दुःख अपार रे ॥ तू सुण० ॥ ७ ॥ क्रोड़ बत्तीस सोनैया सरे भरिया छे भंडार ॥ सुन्दर रूप सुहावणी सरे साते

सोवे बत्तीसों नार ॥ हाथ जोडने इम कहे सरे, मत मेलो निराधार जी ॥ ८ ॥

" थे सुणो प्रीतमजी दीक्षा मत लीजो
ह्मांने छोडने (टेर) " ॥

महेलां ऊभी कामण्यॉस रे, उभी करे पुकार ॥ थे मत छोडो साहिबा सरे, मैं छां अबलानार ॥ संयम छे अति दोहिलो सरे, चलणो खॉडाधार हो, ॥ थे सुणो० ॥ ९ ॥ घर आई धन्नो कहै सरे, आज्ञा दो मोरी माय ॥ जन्मे सो जीवे नहीं सरे, इम भाख्यो जिनराय ॥ अज्ञा दो मोरी मातजी सरे, क्षिण लाखिणी जाय रे ॥ तू सुण० ॥ १० ॥ सियाले सी सेवणो सरे, उन्हालेलू ताप ॥ चौमासे तपस्या करे सरे, तूं छे अति सुकुमाल रे ॥ तू सुण० ॥ ११ ॥ वार वार समझावियासरे, एक न मानी वात ॥ हाथ जोडने इम कहे सरे, अनुमतिदो मोरी मात जी ॥ तूं सुण० ॥ १२ ॥ आज्ञा दीनी मातजी सरे, कर मोटे मण्डाण ॥ जाय सूंप्या भगवंतने सरे तारो श्रीभगवान ॥ ओ पुत्र वल्लभ घणो सरे लीजे श्री वर्धमान हो ॥ १३ ॥

" थे सुणो जिनवरजी ! दीक्षा अब
दीजो म्हारा लालने [टेर] ॥ "

माला मोती खोलिया सरे, खोल्या सहु शृंगार ॥ पंच मुष्टि लुंचन कियो सरे, माता झेल्या खोला मझार ॥ धन्नाजी संयम आदऱ्यो सरे, छोड्यो सहु परिवार हो ॥ थे सुणो० ॥ १४ ॥ बैले बैले पारणो सरे, जाव जीवलगधार ॥ अंतर तो पडेनहीं

सरे बेबिल खसो आहार ॥ नव महीना संयम पालियो सरे, करगया खेवो पार हो ॥ ये सुणो० ॥ १५ ॥ गीतार्थ, श्रीगुरु मला सरे रत्न चंदजी महाराज ॥ जवाहिर लाल, हमनके सरे तुम छो तारण महाराज, ढाल जोडी धुमा गमी सरे, उगणीसै बत्तीस मांस हो ॥ १६ ॥

"ये धन्य धन्नाजी! भलोजी दिपायो मारग जैनको ॥"

२०—स्याद्वाद स्वरूप

(आदर जीव क्षमा गुण आदर, इस चालमें).

स्याद्वाद मत श्रीजिनवरनो (टेर)

स्याद्वाद मत श्री जिनवरनो, त किम कहिए एकान्तजी ॥ मत एकान्त कहे मिथ्यात्वी, साखी सकल सिद्धान्तजी ॥ स्याद्वाद० ॥ १ ॥ क्रिया रूप सिद्ध न रह मुनिवर, साखमें उत्तराध्यन विचारजी ॥ साधु साध्वी वसे इकठा भीठाणो धांग पांच प्रकारजी ॥ स्याद्वा० ॥ २ ॥ जीव असंख्य कया

---

१ श्रीजिनेन्द्र भगवानका मार्ग एकान्तवादी नहीं है। अनेक कान्त वादी है। याने अपक्ष स्पद—समावमय मार्ग है। किसी वस्तुको कोई जगह ग्रहण करना चाहिये और वह। वस्तु किसी जगह छोडनी चाहिये। आजकल जो साधु श्रावक, अपनी अज्ञानताके एकान्त पक्षमा पकड़े हैं वह मिथ्यात्वी है।

जल दवके, पन्नवणा सूत्र जिनराजजी ॥ आचारांग मांहे लंघे नदीने, मुनिवर विहरण काजजी ॥ स्या० ॥ ३ ॥ पंचम अंगे न करे श्रावक, पनरे कर्मादानजी ॥ हल निर्वाह तणा पिण दीसे-सप्तम अंगे किया परमाणजी ॥ स्या० ॥ ४ ॥ हिंसा न करे त्रिविधे मुनिवर, पंचम अंगे जुओ, धीरजी ॥ जिनवर तेजूलेश्या ऊपर, शीतल लेश्या मूकी वीरजी ॥ स्या० ॥ ५ ॥ महा वेदना हाथ लगायां, वनस्पतिने थाय अंगजी ॥ पड़तां मुनिवर तेहिज पकडे, ए अर्थ छे आचारांगजी ॥ स्या० ॥६॥ उत्तराध्ययने भाख्यो मुनिवर, समय मात न करे प्रमादजी ॥ दशवैकालिक त्रीजी पोरसी, नींदतणी कीधी मरजादजी ॥ स्या० ॥ ७ ॥ अंध भणी पिण अंध न कहवो दशवैकालिक ए विधि वादजी ॥ ज्ञाता अंगे जतिय भाख्या नागश्रीना अवरण वादजी ॥ स्या० ॥ ८ ॥ सूत्रे देव अव्रात्ति बोल्या, हवे पांचमें ठाणे मनरंगजी ॥ ब्रह्मचर्य तप अति उत्कृष्टो,-देव भणी बोल्यो ठाणांयांगजी ॥ स्या० ॥ ९ ॥ सात जणासूं मल्लि दीक्षा, सातमेंठाणे ठाणायांगजी ॥ छट्ठे अंगे सात 'सया' सूं कोण खोटो, कोण साचो, अंगजी ॥ स्या० ॥ १० ॥ नारी सहस्र बत्तीसे ज्ञाता, सुयगडांग सोले हजारजी ॥ कृष्ण तणी अंते उरी भाखी, किम मेलीजे एह प्रकारजी ॥ स्या० ॥ ११ ॥ कुलघर पनरा जंबूपन्नत्तिमें, समवायंगे कुलघर सातजी ॥ हरि बारमा जिन आठमें अंगे, तेरमें चौथे अंग कहातजी ॥ स्या० ॥ १२ ॥ चारित्र विराधी व्यू पांचमें अंगे, भवनपति सुर थाय जी ॥ ते-सुख मालिका छठे अंगे किम दूजे देव लोके कहाय जी ॥ स्या० ॥ १३ ॥ सूत्र टीका निर्युक्ति वखाणो, चूर्णि, भाष्य

ए मलो पंथजी ॥ पंथ कह तो स मत सांचो, तिम अर्थे मकरा मुचमी ॥ स्या०॥ १४ ॥ ओवाभिगमें अर्थयपणी, माम्मा नार की धर्मगयतजी ॥ ओगणोसमें भो उत्तराध्ययन, मांसपिंड पाल्या सिद्धान्तजी ॥ स्या० ॥१५॥ द्रय ज्ञेय उपादेय वस्तामा तिम उत्सर्ग अन अपवाद की ॥ विधि चरितानुवाद नव मेंस्थित, निश्चय नय व्यवहार मर्यादली ॥ स्या० ॥ १६ ॥ अन कान्त नयवादी श्रीजिनवर, आगममें इम वाळजी ॥ कहे ' श्री मार'' समझके परखो श्रीसिद्धांत रतन अमोलजी॥स्या०॥१७॥

२१—सोले जिन स्तवन

(श्रीनवकार मनजीरो ध्यान धरो, इस चालमें)

वंदूं सोलेही जिन सोवन वरणा (टेर)

श्री ऋषभ आजित संभव स्वामी, वंदूं अभिनंदन अंतरजामी ॥ राग द्वेष दोय क्षय करणा ॥ १ ॥ सुमति नाथजाने सुपासो, प्रभु सुगत गया मेट्या गर्भावासो ॥ मेंट दिया जनमने मरणा ॥ वं० ॥ २ ॥ शीतल श्रेयांस जिन दोई, प्रभु चौदई राज रजा जोई ॥ विमल मति निरमल करणा ॥ वंदूं० ॥ ३॥ अनंतनाथ अनंत ज्ञानी, ज्यांरी मनधारी बात नही छानी ॥ धर्मनाथजीको ध्यान हिरदे धरणा ॥ वंदूं० ॥ ४ ॥ शांतिनाथ प्रभु साताकारी कुंथुनाथ स्वामीजीरी जावूं बलीहारी ॥ अरनाथ आतम उद्धरणा ॥ वंदूं० ॥ ५ ॥ महिमो घणी छा नमि नाथ तणी, महावीरजी हुवा शासनरा धणी ॥ म भरिया प्रभु थांरा चरणा ॥ वं० ॥ ६ ॥ तीन लोकमें रूप

प्रभु पायो, ऐसो मायडी पुत्र दूजो नही जायो ॥ चौसठ इंद्र भेटे चरणा ॥ वं० ॥ ७ ॥ शरीर सपदा सुंदर सोहे, निरखं-तारा-नयन तुरत मोहे ॥ चतुरांगरातो चित्त हरणा ॥ वं० ॥ ८॥ जिग मिग दीप रही देही, ज्यांने सुरनर निरख रह्या केई ॥ ज्यांरो आंख जाणे अमीय ठरणा ॥ वं० ॥ ९ ॥ पग नखसूं मस्तक तांई, ज्यांरो शरीर वखाण्यो सुत्तर मांही ॥ चारूंही संघ लेवे शरणा ॥ वं० ॥ १०॥ समुच्चयही अरज सुणो सोळे, ऋषि रायचंदजी आया आपरे ओळे ॥ म्हारी आवागमन दुःख दूरे हरणा ॥ वं० ॥ ११ ॥ संवत् अठारे छत्तीसे वरषे, कियो नागोर चौमासो भाव मरसे ॥ ज्यांरो भजन किया भवसायर तिरणा ॥ वंदूं० ॥ १२ ॥

२२–अष्ट जिन स्तवन.

(श्रीनवकार जपो मनरगे, इस चालमें)

उपजे आनंद आठों जिन जपतां (टेर.)

प्रह उठी परभाते वंदूं, श्रीपदम प्रभुजीरा पायरीमाई ॥ वासुपूज्यजीतो म्हारे मन वसीया, कर्मीयन राखी कायरीमाई ॥ ॥ १ ॥ उपजे आनंद आठों जिन जपतां, आठ कर्म जाय तूट रीमाई सुख संपदने लीला लाधे, रहे भरिया भंडार अखूट रीमाई ॥ उपजे० ॥ २ ॥ दोनूं जिनवर जोड विराजे, हिंगलू वरणा लाल रीमाई ॥ तीरथ थापीने करमोंने कापी, पाप किया पय माल रीमाई ॥ ३ ॥ चंदा प्रभुजीने सुविधि जिनेश्वर, दोय

हुवा सफद रीमाई ॥ मोर्यों बरणी देही दीपे, मुझ देखत अधिक समेद रीमाई ॥ उपमे० ॥ ४ ॥ मल्लिनाथ जिन पारस प्रभु की, नीला मोरनी पांख रीमाई ॥ निरखतांरा नयन न धापे, अमिय ठर ज्यांरी आंख रीमाई ॥ उ० ॥ ५ ॥ मुनि सुव्रत जिन नेमि जिनेश्वर, सांवल वरण शरीर रीमाई ॥ इन्द्राग्य मणि अधिक दीपे, दीठो हरष हियडो हीर रीमाई ॥ उ० ॥ ६ ॥ रूप अनोपम अव्वल विराजे, ज्यूं हीरा जडिया हेम रीमाई ॥ अधरज अमिकी कसवोई, मुझ केहेतां न आव कम रीमाई ॥ उ ॥ ७ ॥ शिवपुर मोहे साहेब साहे, ईं नहीं आर्यु दूर रीमाई ॥ मुझ चित्त मांहि वस्या परमेश्वर, वर्यू उगते सुर रीमाई ॥ उ० ॥ ८ ॥ ए आठों आरेहतांरे आगल, अरज करूं कर जोड रीमाई ॥ रिख रायचंदजी कहे ज्ञानी भ्यारा, पूरानो सगला कोड रीमाई ॥ उ०॥ ९ ॥ संवत अठाराने बरप छत्तीस, कियो नागोर शहर चोमास रीमाई ॥ प्रसाद पूज जयमलजी केरा, कियो ज्ञानतणा अभ्यास रीमाई ॥ उ० ॥ १० ॥

२३–भरत बाहुबली स्तवन

वीरा म्हा र। गजथकी उतरा, गज चढ्यां केवल न होसीर (नर)

राज तणा अति लोभिया, भरत बाहुबल झूंझरे ॥ मूठ उपाडी मारवा बाहुबल प्रतिबूझरे ॥ वीरा० ॥ १ ॥ बंधव गजथकी उतरो, ब्राह्मी सुंदरी इम भाषेरे ॥ ऋषभ जिन थर मोकली बाहुबल तुम पासेर ॥ वीरा० ॥ २ ॥ लोचकरी संयम लियो, आयो वली अभिमानोर ॥ लघु बंधव बांदूं नहीं

काउसग्ग रह्या शुभ ध्यानोरे ॥ वी० ॥ ३ ॥ वरष दिवस काउसग्ग रह्या, वेलडियॉ विंटाणारे ॥ पंखी माला मांडिया, शीत तापे सोकाणारे ॥ वी० ॥ ४ ॥ साधवी वचन सुणी करी, चमक्या चित्त मझारोरे ॥ हय गय रथ पायक तज्या, पिण चढियो अहंकारोरे ॥ वी० ॥ ५ ॥ वैरागे मन वाळियो, मुक्यो निज अभिमानोरे ॥ चरण उठायो वांदवा, पाम्या केवळ ज्ञानोरे ॥ वी० ॥ ६ ॥ पहुंता केवळी पारषदा, बाहुबळी ऋषि रायरे ॥ अजर अमर पदवी लही, समय सुंदर वंदे पायोरे ॥ वी० ॥ ७ ॥

२४—धर्मरुचिमुनि स्तवन.

मुनिवर धर्मरुचि रिख वंदूं (टेर)

चंपा नगर निरोपम सुंदर, जठे धर्म रुचि ऋषि आया ॥ मास पारणे गुरु आज्ञाले, गोचरिया सिधायाहो ॥ मुनि० ॥ १ ॥ भव भव पाप निकाचित संचित, दुःकृत दूर निकंदूं हो ॥ मुनि० ॥ २ ॥ नीची दृष्टि धरण सिर सोहे, मुनिवर गुण भंडारे ॥ भिक्षा अटल करंता आया, नागश्री घर द्वारे हो ॥ मु० ॥ ३ ॥ खारो तूंबो जहर हळाहल, मुनिवरनें वेहेराव्वे ॥ सहजे उखरडो आई अमघर, कहो बाहिर कुण जावेहो ॥ मु० ॥ ४ ॥ पूरण जाणी पाछा वलीया गुरु आगे आई धरीयो ॥ कोण दातार मिल्यो रिख तोने, पूरण पातर भरीयो हो ॥ मु० ॥ ५ ॥ नाना करतां मोने वहिराव्यो, भाव

उलट मन आँणी ॥ पाखान गुरु निरणय कीधो, अहर द्रव्य हळ आणा हो ॥ मु० ॥ ६ ॥ अखर अमोज फूटक सम खारो, सो मुनिवर तू स्वामी ॥ निरमळ काठ अहर हळाहळ, अकाले मरआसी हो ॥ मु० ॥ ७ ॥ आमाले परठणने चाल्या निरयल ठार मुनि आया ॥ बिंदु एक परठिया ऊपर किड़ियाँ बहु मरजाया हो ॥ ८ ॥ अल्प आहारथी एहवी हिंसा सर्वथी अनरथ जामी ॥ परम अभय रस भाव उलट धर, किडियाँरी करुणा आँणाहो ॥ ९ ॥ देह पडता दया जो निपजे, तो माग उपगारो ॥ खीर खांड सम जाणी हो मुनिवर, तत्खिण करगया आहाराहा ॥ १ ॥ प्रबळ पीड शरीरमें व्यापी आतम शक्ति चाखी ॥ पादोगमन कियो संथारो, समता दृढता राखी हो ॥ ११ ॥ सर्वार्थ सिद्ध पहुंता शुभ जोगे, महा रमणीक विमाण ॥ चौसठ मणरा मोती लटके, करणीरे परमाण हो ॥मु ॥ १२॥ खबर करणने मुनिवर आया रिखजी कालज कीधा ॥ धिग धिग् इम नागश्रीने, मुनिवरने विष दीधोहो ,॥ १३ ॥ हुई फजीती कर्म बहु बांध्या, पहुंती नरक दुवारा ॥ घन घन इम धर्म रुचिने, करगया खेवा पारो हा ॥ मु० ॥ १४ ॥ पैसठ साल चोमासा मोह, सुखे किया चौमासा ॥ रत्नचंदजी कह एह मुनिवरना, नामथकी शिव वासा हो ॥ मु ॥ १५ ॥

२५-विजय सेठ और विजया सेठानीका स्तवन

शुक्ल पक्ष विजया व्रत लीनो सेठ कृष्ण पक्षरो आणी ॥
धन्य धन्य श्रावक पुण्य प्रभावक, विजय सेठन सेठाणी ॥

हिवडे तो हार श्रृंगार सजी तनु, काम घटा जिम उलसाणी ॥ सज श्रृंगार चढ़ी पिउ मंदिर, हेज घणो हिये हरषाणी ॥ ध० तीन दिवस मुझ वरत तणाछे; सेठ बोले मधुरी वाणी ॥ वचन सुणी नैणाँ नीर ढलियो, बदन कमळ गयो बिलखाणी ॥ ध० ॥ २ ॥ पूछे प्रीतम सुण सुख लीणी, कुण चिंता मनमे आँणी ॥ शुक्ल पक्ष गुरु मुख व्रत लीनो; तुमे परणो बीजी साणी ॥ ध० ॥ ३ ॥ और नार मुझ बहिन बराबर, धन्य धीरज थांरी जाणी ॥ एकण शेज हेज अपर बळ; तो पिण मन राख्यो ताणी ॥ ध० ॥ ४ ॥ वरषाकाल भजित घन गाजे, चौधारा वरषे पाणी ॥ षटऋतु वरष द्वादश निरमळ, शील पाळ्यो, जी समता आँणी ॥ ध० ॥ ५ ॥ विमळ केवली करी प्रशंसा, ए दोनोंही उत्तम प्राणी ॥ खबर हुई संयम व्रत लीनो, मोह करम किया धूळ धाँणी ॥ ध० ॥ ६ ॥ पूज्यगुमानचंदजी गुरु मिलिया, सेठ कथा ज्यां मुख आँणी ॥ ऋषि रत्नचंदजी पाय वंदे, केवळ ले गया निर्वाणी ॥ ध० ॥ ७ ॥

१८—हितोपदेश.

इण काळरो भरोसो, भाईरे को नहीं, ओ किण विरियाँ माँहे आवे रे ॥ बाळ जवान गिणे नहीं, ओ सर्व भणी गटकावे रे॥ इण०॥ १ ॥ बाप दादो बैठो रहे, पोतो उठ चलजावे रे ॥ तो पिण धेठा जीवने, धरमरी बात न सुहावे रे ॥ इ० ॥ २ ॥ महल मिंदरने माळीया, नदी य निवाणने नाळो रे ॥ सरगने मृत्यु पातालमे, कठेयन छोडे काळो रे ॥ इ० ॥ ३ ॥ घर नायक

चाणी फरा, रसा करी मन गमेती रे ॥ काम्ब मचानंद ते घल्यों, घौम्यों रहगइ मिलती रे ॥ इ० ॥ ४ ॥ राग उनचार फारणे, मेद विचक्षण आवे रे ॥ रोगीन ताजो करे, अगली शवर न पाव र ॥ इ० ॥ ५ ॥ सुंदर मोठी सारंखी, मनोहर महल रसाळो रे ॥ पोढ्या ढोलिय प्रमद, अठे आज पढुंता काळो रे ॥ इ० ॥ ६ ॥ राज करे रलियामणो, इंद्र जनोपम दीसे रे ॥ वेरा पकड पछाडियो, रोग पकडने पीसे रे ॥ इ० ॥ ७ ॥ वल्लभ बालक देखने, मोटी माठी आशा र ॥ छिनक मांहे चलता रमा, होय गई निरासा रे ॥ इ० ॥ ८ ॥ नार निरखने परणिया अपछरन उणीहार र ॥ भूल कठ चलतो रयो, ज्यों ऊमी हेला मारे र ॥ इ० ॥ ९ ॥ वेवार चित चुंपसे करी जेवारेत मांटी रें ॥ पावडीय चढता पछा, खाय न सकीया रोटी रे ॥ इ० ॥ १० ॥ सुर नर इन्दर किनरा, कोई न रह निशंका र ॥ मुनिवर काळने जीतिया, जिण दिया मुक्तमांहि डंको र ॥ इ० ॥ ११ ॥ किसनगढ माहि सवसर, आया धेस काम्बे रे ॥ रतन कहे मव जीमने, कीजो धमे रसाळा र ॥ इण० ॥ १२ ॥

---

२७ हितोपदेश

भूला मन भमरा कांई भम्यो, भमियो दिवसने रात ॥ माया रा लोभी प्राणियो मरने दुर्गति जात ॥ भू० ॥ १ ॥ केहना छारू केहना बाछरू, केहना मायने बाप ॥ जी जासी एकलो, साथे पुण्यने पाप ॥ भू० ॥ २ ॥ माछा तो

डुँगर जेवडी, मरणो पगल्यारे हेट ॥ धन संचीरे संची कांई करो, करो जिनजीरी भेट ॥ भू० ॥ ३ ॥ उलट नदी मारग चालवो, जायवो पेलेरे पार ॥ आगळ नहीं हटवाणियो, सांबळ लीजोरे लार ॥ भू० ॥ ४ ॥ मूरख कहे धन माहरो, ते धन खरचे न खाय ॥ वस्त्र विना जाय पोढियो लखपति लंकडारे मांय ॥ भू० ॥ ५ ॥ धंधो करीरे धन जोडियो, लाखाँ ऊपर क्रोड ॥ मरणरी वेळा मानवी, लेसी कंदोरो तोड ॥ भू० ॥ ६ ॥ लखेपति छत्रपति सहु गया गया लाख बेलाख ॥ गर्व करतारे गोखे बेसता, जळ बळ होय गई राख ॥ भू० ॥ ७ ॥ म्हारोरे म्हारो कर रह्यो, थारो नहींरे लिगार ॥ कुण थारो तूं केहेनो, जोवो हियडे विचार ॥ भू० ॥ ८ ॥ मेमद कहे समझो सहु ॥ सांभळ लीजोरे साथ ॥ आपणो आप उधारिया, लखो साहिब हाथ ॥ भू० ॥ ९ ॥

---

२८ नामिला पुत्रका स्तवन.

करम न छूटेरे प्राणिया (टेर)

नामिला पुत्र जाणिए, धनदत्त सेठनो पूत ॥ नटवी देखीने मोहियो, नहीं राख्यो घरनो सूत ॥ करम० ॥ १ ॥ पूर्व नेह चिकार ॥ निज कुळ छंडीरे नट थयो, नाणी शरम लिगार ॥ क० ॥ २ ॥ एक पुर आव्योरे नाचवा, ऊंचो वांस विशेष ॥ तिहां राय आव्योरे जोयवा, मिलियो लोक अनेक ॥ क० ॥

दोय पग पहरीरे पावडी, वांस चढ्यो गज गेल ॥ क० ॥ निरै धारा उपर नाचतो, खेले नव नवा खेल ॥ क० ॥ ४ ॥ ढोल धमाधेरे नाटकी, गावे किन्नर साद ॥ पाय तल घूघरा घम घमे, गाजे अंबर नाद ॥ क०॥५॥ तव राजेन्द्र मन चिंतवे, लुब्ध्यो नरर्वीने साथ ॥ जो नट पडेरे नाचतो, तो नटवी मुझ हाथ ॥ क० ॥ ६ ॥ दान न आपेर भूपति, नट जाणी नृप बात ॥ हूं धन बहुंर रायनो, राय वंछे मुझ घात ॥ क० ॥ ७ ॥ तव तिहां मुनिवर पेखिया, धन धन साधु निराग ॥ धिग् धिग् भिन्यारी जीवने, इम पाम्यो वैराग ॥ क०॥ ८ ॥ संवर भावरे कवली, थयो थयो करम खपाय ॥ केवळ महिमारे सुर करे लब्ध विजय गुण गाय ॥ क० ॥ ९ ॥

---

२९ अरणक मुनि स्तवन

अरणक मुनिवर चाल्या गोचरी, तडके दाझे शीशो जी ॥ पाय उवराणारे वेलु परजले, तन सुकमाळ मुनीशाजी ॥अ० ॥ १ ॥ मुख करमळानारे मालती फूल, ज्यूं, ऊमा गोखा हेठोजी ॥ खरी दुपहरारे दीठो एकलो, मांयो माननी मीठोजी ॥अ० ॥ २ ॥ वयण रंगीलीरे नयणा विंदिया, ऋषि थम्यो तिण ठायाजी ॥ दासीने कहे रे जाय उतावळी, ऋषिवेडीलाव्याया जी ॥ अ० ॥ ३ ॥ पावन कीजे ऋषि घर आंगणो, वहरो मादक सारांजी ॥ नव आवनमेर काया कांई दमो सफल करा भवतारोजी ॥ अ०॥ ४ ॥ चंदावदनीये चारित्र चूकियो सुख विलस दिन रातोजी ॥ एक दिन गोख्वर रमतों सुगग,

सुख विलसे दिन गतोजी ॥ एक दिन गोखेरे रमता सुगटा, तब दिठी निज मातोजी ॥ अ० ॥ ५ ॥ अरणक अरणक करती मा फिरे, गळियॉ गळियॉ मझारोजी ॥ कहो किण दीठोरे म्हारो वाल्हडो लारे बहु नर नारोजी ॥ अ० ॥ ६ ॥ तिहांथी उतरीरे जननीरे पाय नम्यो, बहु लाज्यो मन मांह्योजी ॥ धिग् धिग् यह चारित्र चूकियो, जेथी शिवपुर जायोजी ॥अ० ॥७॥ अगन धुकंतीरे शिला ऊपरे, अरणक अणसण कीधोजी ॥ समय सुंदर कहे धन ते मुनिवरू, मन वंछित फल लीधोजी ॥ अरणक ॥ ८ ॥

२४–ढंढणमुनि स्तवन.

ढंढण ऋषिजीने वंदना हूंवारी, उत्कृष्टो अणगाररे हूंवारी लाल ॥ आभिग्रह लीधो एहवो हूंवारी, लवधे लेसूं आहाररे हूंवारी लाल ॥ ढ० ॥ १ दिन प्रते जावे गोचरी हूंवारी, न मिळे सूझतो भातरे हूंवारी लाल ॥ मूळ न लीजे असूझतो हूंवारी, पिंजर हुय गयो गातरे हूंवारी लाल ॥ ढं० ॥ २ ॥ हरी पूछे श्री नेमने हूंवारी, मुनिवर सहस आठाररे हूंवारी लाल ॥ उत्कृष्टो कुण एहमें हूंवारी, मुझने कहो किरताररे हूंवारी लाल ॥ ढं० ॥ ३॥ ढंढण अधिको दाखियो हूंवारी, श्रीमुख नेम जिणंदरे हूंवारी लाल ॥ कृष्ण उमायो वॉदवा हूंवारी, धन जादव कुलचंदरे हूंवारी लाल ॥ ढं० ॥ ४ ॥ गळियारे मुनिवर मिल्या हूंवारी, वांद्या कृष्ण नरेशरे हूंवारी लाल ॥ कोईक मायापति देखने

हुंवारी, उपना माम सिधपरे हुंवारी लाल ॥ ढ० ॥ ५ ॥ ग्रुम घर भावो साधुजी! हुंवारी, पहरा मोदक अभिलापर हुंवारी लाल ॥ बहुरे ने पाछा फिर्या हुंवारी, आया प्रभुजीन पासर हुंवारी लाल ॥ढ ॥६॥ मुझ लबधे मोदक मिल्या हुंवारी, प्रभुन कहा सिरपाळरे हुंवारी लाल॥ लबध नहीं ओ थछवाइरी हुंवारी, श्रीपति लब्ध निहाळर हुंवारी लाल ॥ढ० ॥७॥ तो मुझने कळप नहीं हुंवारी, चाल्या परठण ठोररे हुंवारी लाल ॥ ध्र्व निहाळ जायने हुंवारी चुन्या कम कठाररे हुंवारी लाल ॥ ढ० ॥ ८ ॥ आई सुधी भावना हुंवारी उपनो केवल ग्यान रे हुंवारी लाल॥ ढढण रिख मुक्ते गया हुंवारी, कहे जिनहर्ष सुजाणर हुंवारी लाल ॥ ढंढण० ॥ ९ ॥

३०—कामदेव श्रावक स्तवन

श्रावक श्रीवीरनो पणानो सामीजी ॥ (टेर)

एक दिन इन्द्र प्रशंसियोजी, भरि य सभा र माँय ॥ दृढताई काम देवनी कोई देव न सके चलाय ॥ श्रावक ॥ १ ॥ मत्थ्यो नहीं एक देवताजी रूप पिशाच बणाय ॥ काम देव श्रावक कनजी, आया पोषध शाळार माँय ॥ श्रावक० ॥ २ ॥ रूप पिशाचना देखनजी, डऱ्या नहीं रे लिगार ॥ जाण्यो मिथ्याती देवताजी लिया शुद्ध मन ध्यान लगाय ॥ श्रा ॥ ३ ॥ मा मा रे-कामदेवजी, सोन कळपे नहींछे काय ॥ थारा धर्मज छा डणा पिण ई छोडाय ताय ॥ ४ ॥ हाथीनो रूप वैक्रय किमाजी पिशाच पणा किया दूर ॥ पोषध शाळामें आयनेजी, पाळ मचन कड़र ॥ ५ ॥ मनमांह नहीं कंपियोजी, हाथी

सूँडमें झाल ॥ पोषध शाळा बारे लाइनेजी, दियो आकाशे उछाल ॥ श्रावक० ॥ ६ ॥ दंत सूंडमें झालनेजी, कांबळनी परे रोळ उग्र वेदना उपनीजी, नहीं चळियो ध्यान अडोळ ॥ श्रा० ॥ ७ ॥ गजपणो तज सर्प भयोजी, काळो महा विकराळ ॥ डंक दियो कामदेवनेजी, क्रोधी महा चंडाळ ॥ ८ ॥ अतुळ वेदना उपनीजी, चळियो नहीं, तिळमात ॥ सुर तिहां प्रकट थयोजी देव रूप साक्षात ॥ श्रा० ॥ ९ ॥ कर जोडीने इम कहेजी, थारां सुरपति कियाहै बखाण ॥ म्हे नहिं सरध्यां मूढमतिजी थांने उपसर्ग दीनो आण ॥ १० ॥ तन मन कर चंळिया नहीं जी, थे धर्म पायो परमाण ॥ खमजो अपराध ते माहरोजी, इम कही गयो निज थान ॥ ११ ॥ वीर जिणंद समोसऱ्याजी, कामदेव वंदण जाय ॥ वीर कहे उपसर्ग दियोजी, तोने देव मिथ्याती आय ॥ १२॥ हाँ सामी सहु साचछेजी, तद समण समणी बुलाय ॥ घर बैठा उपसर्ग सह्योजी, इम परशंसे जिनराय ॥ १३ ॥ वीस वरष लग पाळियाजी, श्रावकना व्रत बार पहले सर्गे उपनाजी, चव जासी भव पार ॥ १४ ॥ आ दृष्टांत देखनेजी, पाळो श्रावक धर्म ॥ कामदेव श्रावकनी परेजी थे पांमो शिव सुख पर्म ॥ १५ ॥ मरुधर देशसूं आयनेजी, जैपुर कियोहै चौमास ॥ अष्टादश छियासीयेजी, रिख कुशाल चंदजी कियो प्रकाश ॥ श्रावक० ॥ १६ ॥

३२—चार शरणा

हिरद धारीये हो भवियण, मंगलिक शरणा च्यार [टेर]

पोहो उठी नित समरीजेहा, भवियण मंगलिक शरणा च्यार ॥ आपदा टले संपदा मिले हो, भवियण, दालदना दातार ॥ हि० ॥ १ ॥ अरिहंत सिद्ध साधु तणा हो ,। भ० ॥ केवली भाषित धरम ॥ ए चारूं जपतां थकाहो ॥ भ० ॥ तूटे आठूं करम ॥ हि० ॥ २ । ए शरणा सुखकारीयाहो ॥ भ० ॥ ए शरणा मंगलिक ॥ ए शरणा उत्तम कह्याहो ॥भ ॥ ए शरणा तप तीख ॥ हि० ॥ ३ ॥ सुखसाता वरते घणीहा ॥ भ० ॥ज ध्यावे नरनार ॥ परभव जातां जीवने हो ॥ भ० ॥ एह तणो आधार ॥ हि ॥ ४ ॥ डाकण साकण भूतणी हो ॥ भ० ॥ सिंह सियाल घर ॥ वैरी दुशमण चोरटाहो ॥भ ॥ रहे सदाही दूर ॥ हि० ॥ ५ ॥ निसदिन याने ध्यावजोहो ॥ भ० ॥ पामे परम आनद ॥ कमी नही किण बातरी हो ॥ भ० ॥ सेव करे सुर इन्द्र ॥ हि० ॥ ६ ॥ गेले घाट चालतांहा ॥ भ० ॥ रात दिवस मझार ॥ गांवां नगरा विचरतांहा ॥ भ विघन निवा रण हार ॥ हि० ॥ ७ ॥ इण सारिखा शरणां नहीं हा ॥भ० ॥ इण सरिखी नहीं नाव ॥ इण सरीखो मन्त्र नहिं हा ॥ भ० ॥ जपतां वाधे भाव ॥ हि ॥ ८ ॥ शरणा धारणारी आसताहो ॥ भ० ॥ नेडा न आवे रोग ॥ बरते आनंद जीवनेहो ॥ भ० ॥ एह तणो संजोग ॥ हि० ॥ ९ ॥ मन चिंत्या मनोरथ फले हो ॥ भ ॥ निश्चे फल निर्वाण ॥ कमी नहीं देवलोकमें हो ॥ भ० मुक्ति तणा फल जाण ॥ हि० ॥ १० ॥ सबस अठारे पापभेहो

॥ भ० ॥ पाली शेखेकाळ ॥ रिख चोथमलजी इम कहेहो ॥ भ० ॥ सुणजो बालगोपाळ ॥ हि० ॥ ११ ॥

२३–सती चंदनबालाका स्तवन.

धन धन श्री चंदन बाळा [टेर]

श्री दधिवाहन पुत्री जाणी, जिणरी माता धारणी राणी ॥ भणे गुणने रूप रसाला, धन धन श्रीचंदण बाळा ॥ १ ॥ अपछरा गुण जाणे इंद्रानी, तिणसूँ पिण रूप अधिको जाणी ॥ देही दिपे दीपक जिम कमला ॥ ध० ॥ २ ॥ चंपा लूटीने सती बांधी गई, जठे सेठ धनोए मोल लही ॥ जोवो जोर करमरा चाला ॥ ध० ॥ ३ ॥ मूला मस्तक मूंडीने दुःख दीनो, सती भोंयरा मांहे तेलो कीनो, सेठ आवीने काढी ततकाला ॥ ध० ॥ ४ ॥ जाई भूने बाकुला उडदना, कोई साधु आवे तो देऊँ भाव घणा ॥ भूख तृपाने देही सुकमाला ॥ ध० ॥ ५ ॥ वीर जिणंद निजराँ दीठा, सतीरे रोम रोम लागा मीठा ॥ सामे जोय रही उजियाला ॥ ध० ॥ ६ ॥ तेरे बोल अधूरा जाणी, सतीरे आंख्या मांहे न दीसे पाणी ॥ वीर पाछा फिरगया ततकाला ॥ ध० ॥ ७ ॥ मे पूरव भव पापज करिया, वीर आया आँगण पाछाजी फिरिया ॥ नैण नीर वहे जिम परनाला ॥ ध० ॥ ८ ॥ श्री वीर जिणंद केवळ पाया, जठे सती भणी देवता लाया ॥ संजम लेई छोड्यो जंजाला ॥ध०॥ ९ ॥ सती छत्तीस हजारोंरी हुई गुरणी, सती उत्कृष्टी कीधी करणी । मेल्या

मिथ्यातत्तणोरे जाला ॥ चं० ॥ १० ॥ श्रीवीर जिमद पास्या कीधो, जठे देवता आय उच्छव कीधो ॥ हाथ केवल मल मोतीरी माला ॥ च० ॥ ११ ॥ जठ देवता दर्मी दुदुमि बाजे, आकाशा मांही अमर गाजे ॥ पंच द्रव्य वरस्या तिण वाग ॥ च० ॥ १२ ॥ पूज्य गुमानचदजी प्रसादे जोडी अपता दूर करसी॰। जोडी ॥ रतनचदजी ढाल जोडी रसाला ॥ १३॥

३४–चित्तसभूतका स्तवन

बचन भाल मानोहो [टेर]

चित्त कहे ब्रह्मरायने, कछु दिलमांहि आणोहो ॥ पूरव भवरी प्रीतडी, तुमे भूल न जाणोहो ॥ ब० ॥ १ ॥ कलवागीरा सूत ज्यूं, मांयो दे आँणोहो ॥ जाति समरण ज्ञानथी, पूरव भव जाणोहा ॥ चं० ॥ २ ॥ देश दसायण राजा घरे, पहले भव दासाहा ॥ बीजे भव कालिंजरे, थया मृग वन वासा हा ॥३॥ तीजे भव गंगा तटे, आप हंसला हुंताहा ॥ चावे भव चंडालरे घर जन्म्या भूता हा ॥ ४ ॥ चित्त सभूत दोनूं जणा, गुण बहुला पायाहा ॥ सरण आया आपणे, तिण पंडित पढायाहो ॥ ५ ॥ राजा नगरीरा काढिया, आर्या मरणा मंडीयाहो ॥ वन मांहि गुरु उपदेशथी आपां घर छंडीयाहो ॥ ६ ॥ संजम ले तपस्या करी, लब्ध धारी हुंताहो ॥ गांवाँ नगरां विचरता, हथिनापुर पहुताहो ॥ ७ ॥ निमुचि ब्राह्मण ओलख्यो, नगरी था काढ्याहो ॥ कोप चढ्या बहु जणा, सथारा ठायाहो ॥ ८॥

थूवो थे कीधो लब्धिथी, नगरी भय पायाहो ॥ चक्रवर्ति निज परिवारसूं आवी तुरत खमायाहो ॥ ९ ॥ रत्नाराणी रायनी, आवी शीश नमायाहो ॥ पग पूंज्या केशांथकी थारे मन भाया हो ॥ १० ॥ नियाणो तुमे कियो, तपनो फल हार्योहो ॥ म्हे थांने वंधन वरजियो, तुमे नाहीं विचार्योहो ॥ ११ ॥ ललनी गुलनी विमानमें, भव पांचमें थयाहो ॥ तुम तिहांथी चवी करी, कंपिलापुर आयाहो ॥ १२ ॥ हमे तिहांथी चवी करी, गाथापति थयाहो ॥ संयमभार लेई करी, तोसूं मिलणने आया हो ॥ १३ ॥ चक्रवर्ति पदवी थें लीवी, ऋद्धि सगळी पाईहो॥ कीधो सोही पामियो, हिवे कमिय न कांईहो ॥१४ ॥ समरथ पदवी पामिया, हिवे जनम सुधारोहो॥ संसारना सुख कारिमा विषया रस निवारोहो ॥ १५ ॥ राय कहे सुणो साधुजी, कछु और बतावोहो ॥ आ ऋद्धि तो छंडे नहीं, पछे थें पिछतावोहो ॥ १६ ॥ थे आया म्हारा राजमें, नरभव सुख माणोहो ॥ साध पणा मांही छे किसो, नित मांगने खाणोहो ॥ १७ ॥ चित्त कहे सुणो रायजी, इसडी किम जाणेहो ॥ म्हे ऋद्धि तो छोडी घणी, गिणती कुण आणेहो ॥ वं० ॥ १८ ॥ हुं आयो थाने कैणने आ ऋद्धि तो तुमे त्यागोहो ॥ वैरागे मन वालने धर्म मारग लागोहो ॥ १९ ॥ भिन्न भिन्न भाव कह्या घणा, नहीं आवे वैरागेहो॥ भारी करमा जीवडा, ते किण विध जागे हो ॥ २० ॥ नियाणो तुमे कियो, पड्या खंडज केराहो ॥ इण कारणसूं जाणजो, थांरा नरकमें डेराहो ॥ २१ ॥ पांचूं भव भेळा किया; आपे दोनूं भाईहो ॥ हिवे मिळणो छे दोहिलो,

मिथ्यात्वतणारे जाला ॥ घ० ॥ १० ॥ श्रीवीर जिनंद वास्या कीधा, जठ देवता आय उच्छव कीधो ॥ हाथ कंकण गल मोतीरी माला ॥ घ० ॥ ११ ॥ जठ देवता वर्षी दुदुंभि वाज, आकाशा मांही अंबर गाजे ॥ धन द्रव्य वरस्या तिण वारा ॥ घ० ॥ १२ ॥ पूज्य गुमानचंदजी प्रसादे जोडी उपगा तूंरे करमांगे कोडी ॥ रतनचंदजी ढाल जोडी रसाला ॥ १३॥

३४–चित्तसंभूतका स्तवन

बधव वाल मानाहो [टर]

चित्त कहे ब्रह्मरायन, कछु दिलमहि आणोहो ॥ पूरव भवरी प्रीतडी, तुमे मूल न जाणाहो ॥ च० ॥ १ ॥ कतवारीरा सुत ज्यू, सांधो द आणोहो ॥ आति संभ्रम भ्रातर्या, पूरव भव जाणाहो ॥ च० ॥ २ ॥ दश दसारण राजा घर, पहले भव दासाहो ॥ बीजे भव कालिंजरे, थया मृग वन वास्या हो ॥३॥ तीजे भव गंगा तट, आप हंसला हुंताहो ॥ चौथे भव चंडालर घर जन्म्या पूता हो ॥ ४ ॥ चित्त संभूत दोनूं जणा, गुण बहुला पायाहो ॥ मरण आया आपण, तिण पंडित पढायाहो ॥ ५ ॥ राजा नगरथी काढिया, आपाँ मरणा मतीयाहो ॥ वन मांहे गुरु उपदेशर्या आपां घर छंडियाहो ॥ ६ ॥ संयम ले तपस्या घणा, लब्ध धारी हुंताहो ॥ गांवों नगरों विचरता, हस्तिनापुर पहुंताहो ॥ ७ ॥ निमुचि ब्राह्मण ओळख्या, नगरी मांह्याहो ॥ काढ चल्या बहु जणा, मथारा गायाहो ॥ ८॥

घणा ए माय, चुँग्या मातारा थान ॥ तृस हुवो जीवडोजी अधिक आरोग्या धान ॥ ए माता० ॥ ९ ॥ चारित्र छे जाया दोहिलोजी चारित्र खांडानी धार ॥ बिन अपराधे झूंजणोजी ॥ औषध नहीं है लिगार ॥ रे जाया तु० ॥ १० ॥ चारित्र छे मातासोहिलोजी, चारित्र सुखनीजी खान ॥ चौदेही राजू लोके नाजी, फेरा टाळणहार ॥ ए माता० ॥ ११ ॥ सियाळे सी लागसीजी, उनाळे लूरे वाय ॥ चौमासे मैला कापडाजी, ए दुःख सह्यो न जाय ॥ रे जाया० ॥ १२ ॥ वनमें छे एक मृग लोजी, कुणकरे उणरीजो सार ॥ मृगनी परे विचरसूंजी, एक-लडो अणगार ॥ ए माता० ॥ १३ ॥ मातावचन ले निसऱ्याजी मृगा पुत्र कुमार ॥ पंचमहाव्रत आदऱ्या, जी, लीधो संयम भार ॥ ए माता० ॥ १४ ॥ एक मासनी सलेखनाजी, उपनो केवल ज्ञान ॥ कर्म खपाय मुक्ते गयाजी ज्यांरो लीजे नित प्रतिनाम ॥ ए माता० ॥ १५ ॥

३६—पांचमा आकारा स्तवन.

पहिले पद अरिहत जाणी, ज्यांरो भजन करो भवियण प्राणी ॥ ज्यांरा नामथकी जपजयकारे, ॥ १ ॥ पूरो सुख नहीं पांचमे आरे [टेर] हिवे जीव पचेरे घणो, कोई पार नहींरे दुःख तणो ॥ तेरे तिणभा लागी रह्या लारे ॥ पू० ॥ २ ॥ नितरो नित गॉवडे जावे, वली माथे भार उठाई लावे ॥ नित नित पेटभरे जिंवारे ॥ पू० ॥ ३ ॥ देश विदेशमें नित भमे, वली आलस

चिम परभव राई हो ॥ २२ ॥ अकादश पहुतो नरक सप्तमी, शिव मुक्ति महारीहो ॥ कर जोडी कवियण कहे, आवागमन निवारीहो ॥ पंचन० ॥ २३ ॥

३५-मृगा पुत्रका स्तवन

सुगरीव नगर सुहामणोजी, राजा बलभद्र नामं ॥ तस घर राणी मृगावतीजी, तस नंदन गुणधाम ॥ १ ॥ ए माता खिण लाखीणीरे जाय [टेर] एक दिन बैठा गोखडेजी, राण्याँरे परिवार ॥ सीस छाजेने रवि तप जी, दिखे दीठा अणगार ॥ ए माता० ॥ २ ॥ मुनि देखि भव सांमल्योजी, मन वसियोर वैराग ॥ हरष धरीने चढियाजी, लागा माताजीरे पाव ॥ ३ ॥ ए जननी अनुमति द्योमारी मात (टर) तु सुकमाळ सुहामणोजी भोगवो संसारना भोग ॥ यौवन वय पाछी पड जब, आदरजो तुमे जोग ॥ ४ ॥ रे जाया तुजविन घडी न सुहाय [टर] पाव पलकरी खबरों नहीं ए मात करे काळको की साज ॥ काळ अचाण्यो ले चलेजी, ज्यू तितर पर बाज ॥ ५ ॥ ए माता खिण लाखिणीरे जाय [टेर] रत्न जडित घर आंगणाजी, तं सुदर अपछार ॥ मोटा कुलनी उपनीजी, कांई छाडो निरधार ॥ रे जाया० ॥ ६ ॥ बाजीगर बाजी रचे ए मांय खिणमें करज धाय ॥ ज्यू संसारनी, संप दाधी देखतवा विल जाय ॥ ए ॥ ७ ॥ पिलंग पथरणे पोढ वाजी मू मोगी भवर रसाल ॥ कनक कचोल जिमणोजी, फोपलरमिर आहार ॥ जाया० ॥ ८ ॥ मायर जठ पी या

घणा ए माय, चुँग्या मातारा थान ॥ तृप्त हुवो जीवडोजी अधिक आरोग्या धान ॥ ए माता० ॥ ९ ॥ चारित्र छे जाया दोहिलोजी चारित्र खांडानी धार ॥ त्रिन अपराधें झूंजणोजी ॥ औषध नहीं है लिगार ॥ रे जाया तु० ॥ १० ॥ चारित्र छे मातासोहिलोजी, चारित्र सुखनीजी खान ॥ चौदेही राजू लोक नाजी, फेरा टाळणहार ॥ ए माता० ॥ ११ ॥ सियाळे सी लागसीजी, उनाळे लूरे वाय ॥ चौमामे मैला कापडाजी, ए दुःख सह्यो न जाय ॥ रे जाया० ॥ १२ ॥ वनमें छे एक मृग लोजी, कुणकरे उणरीजी सार ॥ मृगनी परे विचरसूंजी, एक-लडो अणगार ॥ ए माता० ॥ १३ ॥ मातावचन ले निसऱ्याजी मृगा पुत्र कुमार ॥ पंचमहाव्रत आदऱ्या, जी, लीधो संयम भार ॥ ए माता० ॥ १४ ॥ एक मासनी सलेखनाजी, उपनो केवल ज्ञान ॥ कर्म खपाय मुक्ते गयाजी ज्यांरो लीजे नित प्रतिनाम ॥ ए माता० ॥ १५ ॥

३६–पांचमा आकारा स्तवन.

पहिले पद अरिहंत जाणी, ज्यांरो भजन करो भवियण प्राणी ॥ ज्यांरा नामथकीं जपजयकारे, ॥ १ ॥ पूरो सुख नहीं पांचमे आर [टेर] हिवे जीव पचेरे घणो, कोई पार नहींरे दुःख तणो ॥ तेरे तिणगा लागी रह्या लारे ॥ पू० ॥ २ ॥ नितरो नित गॉवडे जावे, वली माथे भार उठाई लावे ॥ नित नित पेटभरे जिंवारे ॥ पू० ॥ ३ ॥ देश विदेशमें नित भमे, वली आलस

केती दिन गमेन॥ वली आमीने सामी अहर्यों मारे॥ पू० ॥४॥ किम्यहीकने वणिजमांही खोटो, इम आणीन दु ख लागो मोटो॥ मले रात दिवस छलमल पाड़े ॥ पू० ॥ ५ ॥ किणने वणिजमें नफोरे घणो, पिण सोच लाभ्योरे पुत्र तणो ॥ पुत्र हुसी यां नाम रेसी सार ॥ पू० ॥ ६ ॥ पुत्र तणो जो सुख फलियो, पिण पाडोसी खोटो मिलियो ॥ च लेणायत लागो लारे ॥पू० ॥ ७ ॥ पाडोसीनी दृष्टि नीकी, पिण घरमें नारी काली कीकी ॥ वा रात दिवस छाती बाले ॥ पू० ॥८॥ किने नारी भक्ता हुई पुण्य जोगे, पिण दहीने आय घेर्यो रोगे ॥ फोड़ा फुनगुमड़ाने छलबल पाड़े ॥ पू०, ॥ ९ ॥ देहीमें सब सातारे पाई, पिण घरमें देवां घणारे जाई ॥ तिणरी वो चिंता घणीरे साले ॥ पू० ॥ १० ॥ ससारमें छ दु ख घणा, कोई राज कबजने धन तणा ॥ एक एक रे लागा लारे ॥ पू ॥ ११ ॥ एहवा जाणीरे धर्म करा, वली समतारस मन माहि धरो ॥ पूज जयमलजी कहे ए सुख सारे ॥ पू ॥ १२ ॥

३७—हितोपदेश

दुलभ ता मानव भव पाया वे किम आवो हार [टेर]
नव घाटीमांहि भटकत आयो, पाम्यो नरभव सार ॥ सेहने बंछे देवता, आवा रे किम आवो हार ॥ रे किम आवो हार जीवाजी त किम आवो हार ॥ दु ॥ १ ॥ घन दौलत म्हादि संपदा पाई पाम्यो भाग रसाल ॥ माह माया महि मूल रहा, जीवा नहीं लेखी गमत सँभाल ॥ नहीं लिखी सूरत सं

भाळ, जीवाजी, नहीं लिघो सूरत संभाळ ॥ दु० ॥ २ ॥ काया तो थांरी कारमी दीसे, दीसे जिन धर्मसार ॥ आऊखो जातां वार न लागे, चेतो क्यूंनी गिवार ॥ चेतो क्यूंनी गिवार, जीवाजी चेतो, क्यूंनी गिवार ॥दु०॥३॥ योवन वय मांहे धंधो लागो लागो रमणीरे लार ॥ धन कमायने दौलत जोडी, नहीं कीनो धर्म लिगारे ॥ नहीं कीनो धर्म लिगारे, जीवाजी नहीं कीनो धर्म लिगार ॥ दु० ॥ ४ ॥ जरा आवेने योवन जावे, जावे, इंद्रियाँ विकार ॥ धर्म किया विन हाथ घसोला, परभव खासो मार ॥ परभव खासो मार, जीवाजी परभव खासो मार ॥ ५ ॥ हाथामें कडाने कानांमें मोती, गले सोवनकी माल ॥ धर्म किया विन एह जीवाजी, आभरणछे सहुभार ॥ आभरणछे सहु भार जीवाजी, आभरणछे सहुभार ॥ दु० ॥ ६ ॥ ए जग हैं सब स्वारथ केरो, तेरो नहींरे लिगार ॥ वारंवार सतगुरु समझावे, ल्यो तुमे संयम भार ॥ ल्यो तुमे संयम भार, जीवाजी ल्यो तुमे संयम भार ॥ दु० ॥ ७ ॥ संजम लेईने कर्म खपावो, पामो केवळ ज्ञान ॥ निरमळ हुयने मोक्ष सिधावो ओछे साचो ज्ञान ॥ ओछे साचो ज्ञान, जीवाजी ओछे साचो ज्ञान ॥ ८ ॥ संवत अठारे ने वरष गुण्यासी, हरकनसिंघजी उल्लास ॥ चेत बदि सातम शाहपुरामें, कीनो ज्ञान प्रकाश ॥ कीनो ज्ञान प्रकाश, जीवाजी कीनो ज्ञान प्रकाश ॥ दु० ॥ ९॥

३८—धन्नामुनि स्तवन

धन करणीहो धन राजरी [टेर]

धन्नाजी रिख मन चिंतवे, तप करणो तूटी हमतणी कायके ॥ श्री वीर जिनंदन पूछने, आखोलै संथारो कियो ठायके ॥१॥ प्रह उठी धांधा श्री वीरने, श्रीजिन आज्ञा दिवी फरमायके ॥ विमल गिरि थेवर संग, चाल्या समसत साधु समायके ॥ ध० ॥ २ ॥ ठायो संथारो एक मासनो थवर प्रभुजीरे पासे आयके ॥ मंडउपगरण सहु सूंपने, गौतम पूछे शीश नमायके ॥ ३ ॥ तप तपिया बहु आकरा, कहो स्वामी वासा किहां जाय लीयके॥ सागर तेतीसारो आठको, नव महीनामें सर्वार्थसिद्धके ॥ ४॥ महाविदेह खेत्रमांहे सिद्ध हुसी, विस्तार नवमें अंगरे मांयके॥ शिव सुख साध पदवी लही, आसकरणजी मुनि गुण गायके ॥ ५ संवत अठार वरष गुणमन, वैशाख बदि पखरे मांयके ॥ भिसलपुरमें गुण गाविया, पूज रायचंदजीरे प्रसादके ॥ ६ ॥ ओछोजी इधको मैं कह्यो, तो मुझ मिच्छामि दुक्कड होयके ॥ बुद्धि अनुसार गुण गाविया, सूत्रने अनु सारे जायके ॥ध०॥७॥

३९—हितोपदेश

पूरब सुकृत पुण्यकरीने मानवरो भव पाया ॥ आरज खेत्र उत्तम कुलमिलिया, वली निरोगी काया ॥ १ ॥ भव थने जाग मिलियो छर, तुं ले जिनवरजीरा नाम सुधारनी जोग

मिलियो छे रे (टेर) पूरी इंद्रियाँ लांबो आऊखो, वली साधुकी सेवा ॥ सुणवा जोग मिल्योरे प्राणी वाणी अमृत मेवा ॥ अब थांने जोग० ॥ २ ॥ आठ बोलरो टाणो मिलियो, नहीं आई सरधा सेंठी ॥ कुगुरु कुदेव तणी कर संगत, कुबुध हियामें पेठी ०अब०॥३ ॥ आ देही थांरी भसमज होसी, कांई चंदनसूं चरची ॥ दान शील तप भावना साजो, लारे लीजो खरचो ॥ अ० ॥ ४ ॥ चार प्रहरका लेणा देणा, चार प्रहरका घाटा ॥ आठ प्रहर जब बीतगया, तब आया मुदलमें तोटा ॥ अ० ॥ ५ ॥ वीसा तीसा भया पचासा, लग्या निशाणां नेडा ॥ करना होय तो कर ले प्राणी, हुवा बडा अंधेरा ॥ अ० ॥ ६ ॥ रात दिवस तूं धंधो करतो, जिनजीरो नाम न लेतो ॥ तेरा सिरपर काल भमे छे, बंब नगारा देतो ॥ अ० ॥ ७ ॥ मात पिता भाई सुत बंधव, हुवा स्वारथी मेळा ॥ दिन चार देखतां जासी, जिम हटवाडा मेळा ॥ अ० ॥ ८ ॥ साच झूठ कर जगने ठगिया, माल पराया खाया ॥ अणचिंतवियो आयो आऊखो, धरी रही सब माया ॥ अ० ॥ ९ ॥ साचा सद्गुरु कदे न सुझ्या, जे सुझ्या जे खोटा ॥ आदी अनादी फिर्यो रुलतो, भया जंगलमें गोटा ॥ अ० ॥ १० ॥ माया ममता सबी मेटकर, जिन धरम करवा ढूको ॥ कहे साधुजी सुणो भविक जीव, ओ अवसर मत चूको ॥ अ०॥११ सतगुरु सीख हीयामें धारो, कुबुधि कुमति नीवारो ॥ वारवार सतगुरु समझावे, काया कारज सारो ॥ अ० ॥ १२ ॥ करो सामायिक पोषा पडिकमणा, रहो समगतमें सेंठा ॥ दिन दिन चलना नेडा आया, किसे भरोसे बैठा ॥ अ० ॥ १३ ॥ दान

धरम थें कदे नहीं कीनो, मन समता नहीं आणी ॥ ओळूंसा जाता वार न लागे, जिम अञ्जलीमें पाणी ॥ अ० ॥ १४ ॥

४०—दिवाळीका स्तवन

भजन करो भगवतना, गणधर गौतम स्वाम ॥ धरम तारण जग प्रगटिया, लीजो नित प्रति नाम ॥ १ ॥ दिवाळी दिन मोटका, रस्तो धरमरा धीर ॥ गौतम केवळ पामियां, मुक्ति गया महावीर ॥ २ ॥ दिवाळीरे दिन लाखो, जरा मत करो पाप ॥ निंदा विकथा परिहरो, करो जिनवीरो जाप ॥ ३ ॥ सामायिक पोषा करा, पडिकम्णो दोय काल ॥ इम आतमने उद्धरो झूठो मत करो जबाल ॥ ४ ॥ नव मल्लिने नव लछी दश अठारे राय ॥ वीर स्वामी पासे आयने, पोषा दीघा ठाय ॥ ५ ॥ काती बदि आमावस्या, टाळियाळी आतम दाप ॥ भव जीवाने तारने, श्रीवीरजी पहुंता मोक्ष ॥ ६ ॥ देव देवि तिहां आविया, लागी झिग मिग ज्योत ॥ वली विशेष बहु थयो रतन तणो उद्योत ॥ ७ ॥ देवशरमण प्रतिबोधवा, गया गौतम स्वाम ॥ वीर मुक्ति गया जाणन, आव्या पाछा ठाम ॥ ८ ॥ मोह कुईंधन टालन, ध्यायाजी शुकलस ध्यान ॥ अनत पणे ध्याया इसा, पाया केवळ ज्ञान ॥ ९ ॥ माध नगरना दायका, भगवत श्री महावीर ॥ गौतम लब्ध तणा धनी राखो धर्मरा सीर ॥ १ ॥ जिण कारण भगलेक दिन, मोटो माभो नाळ ॥ आरंभ सगळो छोडने, निरमळ शीलश्र पाळ ॥

११ ॥ वार वार मिनखा जनम, पामसी नहीरे गिवार ॥ धरम ध्यान मन आदरो, विषय विवाद निवार ॥ १२ ॥ जीवदया जतन करो, मतकरो छकायनी घात ॥ नवपद जाप जपो, भलो, मोटी दिवाळीनी रात ॥ १३ ॥ कायारूप दया देवरी, ज्ञान रूप ओ देव ॥ जीवन मोक्ष उजालरी, करो सेव नित मेव ॥ १४ ॥ धीरज मति करो धूपनी, तपकर अगरज खेव ॥ सरधा पूरी ज्ञान जलथकी, इम जोइजो जिनदेव ॥ १५ ॥ दयारूपी दिवला करी, मेव गुप्त पिण वाट ॥ समकित जोत उजाळने, मिथ्यात अंधेरो काट ॥ १६ ॥ संवर रूपकर ढांकणी, ज्ञानरूप ओ तेल ॥ आठुंई करम प्रजालने, अज्ञान अंधेरो ठेल ॥ १७ ॥ काया हाट उजालने, ज्ञान वस्तु मांही सार भविजीराग्रह कावेयण जले, नफो पर उपगार ॥ १८ ॥ अवलीगत संसारनी, धन लिछमीरे काज ॥ डचकारा करतां थका, मेटे कुटुंब लाज ॥ १९ ॥ डचकारा करतां थकां ग्रह-ग्रोया सहु फिर जाय ॥ लिछमी इम कीधा थका, नही पैसे घर मांय ॥ २० ॥ भजन श्री जिनराजनो, गावो सदा चित्त लाय ॥ जिन कीनो जुग ए इम सहु, आरंभ उथाय ॥ २१ ॥ श्री सीमंदिर आदि देवजी, जघन्य तीर्थंकर वीस ॥ अढाई द्वीप में प्रगटिया, जैवंता जगदीश ॥ २२ ॥ हिंस्यासुं देव राजी नही इसी भरोसे मत भूल ॥ साचे मन नवपद जपो, इच्छा पूरण मूल ॥२३॥ दुःख किणही देनो नहीं, प्रेमरा वचन सामो भाल ॥ जिनवरजीना गुण गावतां, मोक्ष पोहोंचो तत्काल ॥ २४ ॥ दान शील तप भावना, कर मन शुधज ठाय ॥ ज्ञान दरसण चारित्र भलो, एहसुं आपा चढाय ॥ २५ ॥ इण भव

दोय भेदसु पूजो जिनवर राय ॥ तथा मनमें धारने, जिन घरणा चित लाय ॥ २६ ॥-जीवण योवण मांढला, जीरारा करो-जतन ॥ भवमल मांहे ममता थकां पाम्यो मीनखा जनम ॥ २७ ॥ भजन करो भगवततना, जिम थारा सुधरे काज ॥ काल अनतो खोड़िलो, अवसर लीनो आज ॥ २८ ॥ काया रूप हवेली-आ, तपस्या कर ताभियाल ॥ शुभ व्रत करो दोस्मो मादरे भव पार ॥ २९ ॥ खिम्या रूपी खाजा करो, घृ । घृत भरपूर ॥ तप प्रम मैदो गालने, बांधो मोतीचूर ॥ ३० ॥ व्रत गुरु वचन सीमज्जो, करजो जिनवर सेव ॥ मुनि मनोहर इम भंबे, जिन वंदूं नित मेव ॥ ३१ ॥

४१—श्रावकका कर्तव्य

श्रावक तू उठ प्रभात, चार घड़ी ले पिछली रात ॥ मनमें सुमरे श्रीनवकार, ज्यू पामें भवसागर पार ॥ १ ॥ कवण देव कवण गुरु धरम, कवण हमारे छे कुल करम ॥ कवण हमारा छे व्यवसाय, एहवो चितवजे मनमांय ॥ २ ॥ सामायिक लीजे मन शुध धरम तणी हिये धरजे बुध ॥ पडिकमणो कर रयणी तणो, पातिक आलोवे आपणो ॥ ३॥ काया शगत करे पचखाण, शुधी पाले जिनवर आण ॥ भणजे गुणजे स्तवन सझाय, जिणहूंती निसतारो थाय ॥ ४ ॥ चितारे नित चवदे नेम पाले जीव दया ते सीम ॥ गुरुने मुख लीजे आखड़ी, धरम न रहे एक घड़ी ॥ ५ ॥ चारु शुभ करजे व्यापार, इच्छा

अंधकारो परिहार ॥ मतभरे कूडी केहनी शाख, कुडासंसक थन मत भाख ॥ ६ ॥ परभाते उठ गुरु वंदन जाय, सुणे वखाण सवे चितलाय ॥ निर दूपण सूझतो आहार, साधुने दीजे सुविचार ॥७॥ सामी वच्छल करजे घणो, मगपण मोटो सामी तणो ॥ दुःखिया हीणा दीना देख, करजे तास दया सुविशेष ॥ ८ ॥ घर अनुसारे दीजे दान, मोटासुं मत करे अभिमान ॥ अनंत काय कहिये वत्तीस, अभक्ष बावीसे विसवा वीस ॥ ९ ॥ केवलियाँ भाख्या छे इमे, काचा कॅवला फल मत जीमे ॥ छाणा इंधण चुल्ह जोय, जोया विन ते पापज होय ॥ १० ॥ चीनी परे वावरजे नीर, अणगल नीरमे न धोवे चीर ॥ वारे व्रत सूधा पालजे, अतिचार सगला टालजे ॥ ११ ॥ कह्या पनेरे करमादान, पापतणी परिहरजे खाण ॥ रात्रे भोजननो बहु दोप, जाणीने करजे संतोप ॥ १२ ॥ साबु सोजी लोहने गुली, मधु धान मत वेचे वली ॥ वळ मत करावे रागने रीस, दूपण घणा कह्या जगदीश ॥ १३ ॥ पाणी गालजे वे वे वार, अनगळ पीधा दोप अपार ॥ जीवाणीरा करजे जतनो पातिक टाली करजे पुण्य ॥ १४ ॥ समकित शुध हिये राखजे, बोल विचारीने भाखजे ॥ उत्तम ठामे खरचे वित्त, पर उपकार करे शुभचित्त ॥ १५ ॥ तेल तक्र घृत दूधने दही, उघाडा मत मेले सही ॥ पांचे तिथ म करे आरंभ, पाले शील तजे मन दंभ ॥ १६ ॥ दिवसतणो आलोवे पाप, जिम भांजे सगळो संताप ॥ आठूं करम पातला, भव भावना भांजे आमला ॥ १७ ॥ वारूं लहिए अमर विमान, जिम पामे शिव, पुरनो थान ॥ कीर्ति हर्ष कहे सनेह, श्रावकरी करणी छे एह ॥ १८ ॥

४२-पद्मावती आराधना

हिवे राणी पद्मावती, जीवरास खमावे ॥ जाण पणो अम दोहिलो, इण वलम आवे ॥ १ ॥ ते मुझ मिच्छामि दुक्कडं ॥ अरिहंतनी साख, जे में जीव विराधिया, चौरासी लाख ॥ ते० ॥ २ ॥ सात लाख पृथिवी तणा, साते अपकाय ॥ सात लाख तेउकायना, सात वलि वाय ॥ ते० ॥ ३ ॥ दस प्रत्येक वनस्पति, साधारण चार ॥ बे ते चौरिंद्री जीवना, बे बे लाख विचार ॥ ते० ॥ ४ ॥ देवता तिर्यंच नारकी, चार चार प्रकाशी ॥ चौदे लाख मनुष्यना, ए लाख चौरासी ॥ ते० ॥ ५ ॥ इण भव परभवे सेविया, जे में पाप अठार ॥ त्रिविध त्रिविध करी परिहरू, दुर्गतिना दातार ॥ ते० ॥ ६ ॥ हिंसा कीधी जीवनी, बोल्या मृषा वाद ॥ दोष अदत्ता दानना, मैथुनन उन्माद ॥ ते० ॥ ७ ॥ परिग्रह मेल्यो कारमो, कीधो क्रोध विशेष ॥ मान माया लोभ मैं किया, वली रागने द्वेष ॥ ते० ॥ ८ ॥ कलह करी जीव दुहव्या, दीधा कूडा कलंक ॥ निंदा कीधी पारकी, रति अरति निःशंक ॥ ते० ॥ ९ ॥ चाडी कीधी चोतरे कीधो थापण मोसो ॥ कुगुरु कुदेव कुधर्मनो, भलो आप्यो भरोसा ॥ ते ॥ १ खाटीकने भव मैं किया, जीव नानाविध घात ॥ चिडी मारन भव चिडकला ॥ मार्‍या दिनने रात ॥ ते० ॥ ११ ॥ काजी मुल्लान भवे, पढी मंत्र कठोर ॥ जीव अनेक मबे किया ॥ कीधा पाप अपार ॥ ते० ॥ १२ ॥ मछी मारन भव माछला मार्‍या जल वास ॥ धावर भील कोली भवे, ॥ मृग पाड्या पास ॥ ते ॥ १३ ॥

कोटवालने भवे मैं किया ॥ आकरा कर दंड ॥ बंदीवान मरावियां, कोरडा छडी दंड ॥ ते० ॥ १४ ॥ परमाधामीने भवे दीधा नारकी दुःख ॥ छेदन भेदन वेदना ॥ ताडण नहीं सुख ॥ ते०॥ १५ ॥ कुंभारने भव मैं किया, न्याव पचोव्या ॥ तेली भवे तिल पीलिया, पापे पिंड भराव्या ॥ ते० ॥ १६ ॥ हाली भवे हल खेडिया, फाड्या पृथ्वीना पेट ॥ सूडानिदाण घणा किया, दीधी बलद चपेट ॥ ते० ॥ १७ ॥ मालीने भवे रोपिया, नानाविध वृक्ष ॥ मूल पत्र फल फूलना, लागा पाप ते लक्ष ॥ ते० ॥ १८ ॥ भार वाईयाने भवे, भऱ्या अधिका भार ॥ पीठे कीडा पड्या, दया नाणी लिगार ॥ ते० ॥ १९ ॥ छीपाने भवे छेतऱ्या, कीधा रंग उल्लास ॥ अग्नि आरंभ कीधा घणा, धातुवाद अभ्यास ॥ ते० ॥ २० ॥ शूर पणे रण झूझता, माऱ्या माणस वृंद ॥ मदिरा, मांस माखण भख्या खाधा मूलने कंद ॥ ते० ॥ २१ ॥ खाण खणावी धातुनी, पाणी उलंच्या ॥ आरंभ किया अतिघणा, पोते पापज संच्या ॥ ते० ॥ २२ ॥ करम अंगार किया वली, घरने दव दीधा ॥ कसम खाधा वीतरागना, कूडा कोलज कीधा ॥ ते० ॥ २३ ॥ बिल्ली भवे उंदरगल्या, गिलोरी हत्यारी ॥ मूढ गमार तणे भवे, मै जूंआ लीखा मारी ॥ ते० ॥ २४ ॥ भडभुंजा तणे भवे, एकेंद्री जीव ॥ जुवार चणा बहु सेकीया पाडंता रीव ॥ ते० ॥ २५ ॥ खांडण पीसण गारना, आरंभ अनेक ॥ रांधण इंधण अग्निना, कीधा पाप अनेक ॥ ते० ॥ २६ ॥ विकथा चार कीधीवली, सेव्या पांच प्रमाद ॥ इष्ट वियोग पडाविया, रुदनने विषवाद ॥ ते० ॥ २७ ॥

साधु अने श्रावक तणा, व्रत लेने भांग्या ॥ मूल अने उत्तर तणा, मूळ दूषण लाग्या ॥ ते० ॥ २८ ॥ सांप विच्छू सिंह चितरा, सिकराने समलि ॥ हिंसक जाव तणे भवे, हिंसा कीधी सबलि ॥ ते० ॥ २९ ॥ सुआवडी दूषण घणा, वली गर्भ गळाव्या ॥ जीवाणी ढोली घणी, शीलव्रत भंगाव्या ॥ ते० ॥ ३० ॥ भव अनंत ममता थका, कीधो देह संबंध ॥ त्रिविध त्रिविध करी वोसरू, तिणशु प्रतिबंध ॥ ते० ॥ ३१ ॥ भव अनंत ममता थका, कीधा कुटुंब संबंध ॥ त्रिविध त्रिविध करी वोसरू, तिणशुं प्रतिबंध ॥ ते० ॥ ३२ ॥ इणभवे इहभवे परभवे, कीधा पाप अखत्र ॥ त्रिविध त्रिविध करी वोसरू, करू जन्म पवित्र ॥ ते० ॥ ३३ ॥ इण विध ऐ आराधना, भावे करसे जेह ॥ समय सुंदर कहे पापथी, इह भव छूटसे तेह ॥ ते० ॥ ३४ ॥

४३—श्रीमहावीरजीका स्तवन

सिद्धारथ कुल दीपक चंद, त्रसलादे राणीजीरा नंद ॥ कोमल कंचन वरण शरीर, मन वंछित पूरण महावीर ॥ १ ॥ कृपानाथजीरे करुणा घणी, सुण साहो आवो शासनरा धणी ॥ त्रिभुवननाथजी आऊ सुण धीर ॥ मन ॥ २ ॥ अनेक वली तप दुकर किया, करमीने क्षावागम्य दिया ॥ क्षमसम दमने खिमाधीर ॥ ३ ॥ वैशाखे सुद दशमी साथ, प्रभुजी पाम्या केवळ ज्ञान ॥ सायर जैसा हुवा गंभीर ॥ ४ ॥ समोसरण

सुणजो अवकार, जोजन वाणी अमृत धार ॥ दीठा हरषे हियडो हीर ॥ ५ ॥ चन्दनबालासी चेला किया, एकुण दिनमें महाव्रत दिया ॥ गौतम सारिखा हुवा वजीर ॥ ६ ॥ चिंतामणि चिंता चकचूर. दोखी दुशमण न्हासे दूर ॥ दिन दिन वधे संपदा सीर ॥ ७ ॥ पलक करे प्रभुजीरो ध्यान, पग पग प्रगटे पुण्य निधान ॥ वचन मीठा जिम मिसरी खीर ॥ ८ ॥ चिंतामण जिनवरजीरो जाप, कोड भवोंरा काटे पाप ॥ रोग शोग वलि न्हासे दूर ॥९॥ तुम नामे भवसायर तरे॥ तुम नामे सवकारज सरे ॥ ऋद्ध सिद्ध पामे हीर चीर ॥ १० ॥ पावापुरीमें मुक्ते गया, रिख रायचंदजी कहे करजो मया ॥ पांचावो मोय भव जल तीर ॥ ११ ॥ संवत अठारे छत्तीसे जाण, मेडते शहर किया गुण ग्राम ॥ छकायांना प्रभुजी पीर ॥ मन० ॥ १२ ॥

४३--हितोपदेश.

जीवा तूं तो भोलोरे प्राणी ! इम रुलियो संसार [टेर]

मोह मिथ्यात्वकी नींदमें जीवा, सूतो काल अनंत ॥ भव भव मांहे भटकियो जीवा, ते सांभल विरतंत ॥ जीवा तू० ॥ १ ॥ अनन्त हुवा केवली जीवा, उत्कृष्ट ज्ञानी अगाध ॥ इण भवथी लेखो लेवे, थांरी कोइन वतावे आद ॥ जीवा० ॥ २ ॥ पृथ्वी पानी अग्निमें, जीवा, चौथी वायुकाय ॥ ए एकेकी कायमें जीवा, काल असंख्यातो जाय ॥ जीवा० ॥ ३ ॥ पंचमी काय वनस्पति जीवा, साधारण प्रत्येक ॥ साधारण

में तू भम्यों जीवा, ते विवरो तूं दल ॥ ३ ॥ सूई अग्रनीगोदमें जीवा, श्रेणी असंख्या थाय ॥ असंख्याता प्रतर कह्या जीवा, गोला असंख्य प्रमाण ॥ ५ ॥ एक एक गोला मध्ये, जीवा, असंख्याता शरीर ॥ एक शरीरमें जीवडा जीवा, अनन्त कह्या महावीर ॥ ६ ॥ तिण मांहि अनतडा, जीवा, मोक्ष जाय प्रतिकाल ॥ एक शरीर खाली न हुव जीवा, इस बीते अनतो काल ॥ ७ ॥ एक एक अंगुलमें असंख्यसंग, जीवा, भम्य अनंता हाय ॥ सहे विभव तू वेदना, जीवा, जन्म मरण तू जोय ॥ ८ ॥ दोय घडी मांयीमध्ये जीवा, पैंसठ सहस छत्तीस ॥ छत्तीस अधिका जाणिये जीवा ए करमोनी रीस ॥ ९ ॥ छेदन भेदन ताडना जीवा, नरक सही बहुवार ॥ तिण सेतीनीगोदमें जीवा, अनत गुणी सुविचार ॥ १० ॥ एकेन्द्रीयी निकली जीवा, इन्द्री पाम्यो दोय ॥ सब पुन्याई वेदथी जीवा, अनन्त गुणी लब थाय ॥ ११ ॥ इम वेन्द्री चौरिन्द्री जीवा, दोय २ लाख है बात ॥ दुःख दीठा ससारना जीवा, सुणतां अचरज बात ॥ ॥ १२ ॥ जलचर थलचर खेचर जीवा, उरपर भुजपर थाय॥ ताप शीत तिरछा सही जीवा दुःख कहावे कौन ॥ १३ ॥ इम रडबडतो आवड जीवा पाम्यो नर अवतार ॥ गर्भावासे दुःख सह्यो जीवा, ते जाणे करतार ॥ १४ ॥ मस्तक तो हेठे हुयो जाण, ऊपर हुया पाय ॥ आंख्या गल मूठी निहु जीवा, गढा विष्ठा घरमांय ॥ १५ ॥ पिता वीर्य माता रुधिर जीवा, ए तें लीधो आहार ॥ भूखगयो अन्न्यां पछे जीवा, क्षसी करे हजार ॥ १६ ॥ आठ क्रोड सुई लालकर जीवा, चापे रू रू मांय तिण वेदनथी अठगुणी जीवा, गर्भवासमें थाय ॥ १७ ॥

क्रोड गुणी वेदन जन्मतां, जीवा, मरतां क्रोडा क्रोड ॥ जन्म मरणनी जीवनें जीवा, जाणजो मोटी खोड ॥ १८॥ देश अनारज ऊपनो जीवा, इन्द्री हीणी थाय ॥ आऊखो ओछो हुवे जीवा, धर्म कियो किम जाय ॥ १९ ॥ कदा च नरभव पामियो, जीवा, उत्तम कुल अवतार ॥ देहो निरोगी पायने जीवा, योंही खोयो जमवार ॥२०॥ ठग फासीगर चोरटा जीवा, धीवर कसाइ जात ॥ उपज उपज तूं नहीं मूवो जीवा इसी नरही कोई जात ॥ २१ ॥ चोदेही राजू लोकमें जीवा, जन्म मरणनो जोड ॥ वालाग्र मात्र जिवी, जीवा, नहीं रही खोली ठोड ॥ २२ ॥कदेहीक जीव राजा थया जीवा, हस्तीवध असवार ॥ कदेहीक कर्माने वशे जीवा, नमिल्यो अन्न उधार ॥ जीवा तूं० ॥ २३ ॥ इम संसार भमतां थकां जीवा, पामी सामग्री सार ॥ आ देनी छिटकायने जीवा, जाय जमारो हार ॥ २४ ॥ खोटा देवज सरधिया जीवा, लागो कुगुरां केड ॥ खोटो धर्मज आदऱ्यो, जीवा, चहूंगति कीधा फेर ॥ २५ ॥ कवहु जीव नरकां गयो, जीवा, कवहु हुवो देव ॥ पुण्य पाप वहु भोगव्या जीवा, न गई मिथ्यात्वनी टेव ॥ २६ ॥ आघाने वले मुंहपति जीवा, वार अनन्ती लीध ॥ साची सरधा वाहिरो जीवा, थारो कारज एक न सिद्ध ॥ २७ ॥ चारू ज्ञान गमायने जीवा नरक सातमी जाय चौदे पूर्व परहरीजीवा, पडे निगोदरे मांय ॥ २८ ॥ भगवंत धर्म पायां पछे जीवा, योंही न जावे फोक ॥ कदाचित् पडवाई हुवे, जीवा, तो अर्ध पुदगलमें मोक्ष ॥ २९ ॥ सूक्ष्मने वादर पणे जीवा, मिली वर्गणा सात ॥ एक पुद्गल परावर्त्तनी, जीवा, इसी वणी छे जात ॥ ३० ॥ पाप आलोई

आपणा जीवा, आश्रव नाला रोक ॥ जाये अर्ध पुद्गल विषै जीवा, अनन्त चौवीसी मोक्ष ॥ ३१ ॥ अनेंता जीव मोक्ष गया जीवा, टाली आतम दोष ॥ नहीं गया नहीं जावसी जीवा, एक मूलाना मोक्ष ॥ ३२ ॥ एवा भाव सुणी करी जीवा, सरधा आदे नाम ॥ ज्यूं आयो ज्यूं ही गेयो जीवा, उका चौरासी मांय ॥ ३३ ॥ केई उत्तम नर चेतिया जीवा, आणी आंधिरे संसार ॥ साचो मार्ग सरधन जीवा, पहुंतो मुक्ति मझार ॥ ३४ ॥ दान शील तप भावना जीवा, पाव राख्यो प्रेम ॥ ज्यूं सुख पावो शाश्वता जीवा, पूज्य जयमलजी कहे एम ॥ जीवा तूं० ॥३६॥

४४—पापोंकी आलोचना।

(वीर सुणा मारी विनती, इस चालमें)

पे कर जोडी विनवूंजी, सुण स्वामी सुवदीत ॥
कूड कपट मूकी करीजी बात कहूं ए पवित ॥ १ ॥
" जिनेश्वर विनतडी अवधार (टेर) "

तू समरथ त्रिभुवन धणी जी, मुझने दुस्तर तार ॥ जिन० ॥ २ ॥ भव सागर भमतां थकांजी, दीठा दुःख अनंत ॥ भाग संयोग पामियामा, भय भजन भगवंत ॥ ३ ॥ जे दुःख मांझ आपमाझी तेन कहिए दुःख ॥ पर दुःख भजन तूं सही जी नवरूने द्या सुख ॥ ४ ॥ बालापण लीधां पछे जी, जीव मरण

संसार ॥ निर्गुण पणे वहुविध लियोजी, भेप अनन्तीवार ॥५॥ दुखमी काले दोहिलोजी सूधो गुरु संयोग ॥ परमार्थ पूछनहीं जी, गडर प्रवाही लोग ॥ ६ ॥ मैं तुम आगल आपणाजी, पाप आलोऊं आज ॥ मायत आगल बोलतांजी, बालकनेकिसी लाज ॥ ७ ॥ जाण अजाण पणे करीजी, बोल्या उत्सूत्र बोल ॥ रत्नक ग उडावतांजी, हार्‍यो जन्म निटाल ॥ ८ ॥ भगवंत भाष्यो ते किहांजी, किहां मुझ करणी एह ॥ गज पाखर, खर किम सहेजी, सवल विमासण तेह ॥ ९ ॥ आप प्ररूपूं आकरीजी जाणे लोक महंत ॥ पिण नकरूं प्रमादियोजी, मा साहस दृष्टांत ॥ १० ॥ जाणूं उत्कृष्टी करूंजी, उदित करू विहार ॥ धीरज जीव धरेनहींजी, पोते वहुल संसार ॥ ११ ॥ सहज पड्यो ए आपणोजी, जगमे भूंडी वात, परनिंदा करतां थकांजी, जावे दिन ने रात ॥ १२ ॥ क्रिया करतां दोहिलोजी, आळस आणे जीव ॥ धर्म पखे धंधे पड्योजी, नरकां करसी नींव ॥ १३ ॥ अंगहूंता गुण को कहेजी तो हरखूं निशदीस ॥ कोहितशीख भली कहेजी, तो आणूं मन रीस ॥ १४ ॥ वादभणी विद्या भणूंजी, पर रंजन उपदेश ॥ संवेग धरूं परवंचनाजी, किम संसार तिरेल,? ॥ १५ ॥ सूत्र सिद्धान्त व्याख्यानमेंजी, सुणतां कर्म विपाक ॥ क्षिण एक मनमें उपजेजी मुझ मर्कट वैराग ॥ १६ ॥ त्रिविध २ कर उच्चरूंजी, भगवंत तुम हजूर ॥ वार २ भांजू वलीजी, छुटकवारो दूर ॥ १७ ॥ वचन दोप व्यापक घणाजी दाख्या अनरथ दण्ड ॥ कूड कपट वहु केलवीजी, व्रत कीना शतखण्ड ॥ १८ ॥ अण दीधो लीजे तृणोजी तोही अदत्ता दान ॥ ते दूपण लागा घणाजी, गिणतां न आवे

ज्ञान,॥ १९ ॥ चंचल जीव रहे, नहींजी, राचें रमणी रूप ॥ काम विटंबन सी कहूंजी, प्रभु जाने स्वरूप ॥ २० ॥ माया ममतामें पड्योजी, कीधो अधिको लोभ ॥ परिग्रह मेल्यो कार मोंजी, न करी संयम शोभ ॥ २१ ॥ इणभव परभव दूहव्याजी जीव चौरासी लाख ॥ ते मुझ मिच्छामि दुक्कडंजी, भगवंत तेरी साख ॥ २२ ॥ कर्म भाव रहे आपणोजी, प्रगट अठारा पाप ॥ जे मैं सुण्या ते हिवडाँ पाप पखाल्यारा पाप ? ॥ २३ ॥ जिन आधार छे एतलोजी, सरदहणा छे शुद्ध ॥ जिनधर्म मीठो मन गमेजी, जिम साकरने दूध ॥ २४ ॥ तूं गति तूं मति तूं धणीजी तूं साहिब सुखद ॥ आण धरूं सिर ताहरीजी, भव २ तोरी सेव ॥ २५ ॥ आज सफल दिन माहरोजी, भेट्या ऋषभ जिनन्द ॥ समय सुदर वाचक भणेजी आणी मन आनंद ॥ २६ ॥

४४–मोक्ष स्थान वर्णन

(भीरा शांत गजपुर वहशा, इस चालमें)

गौतम स्वामी पूछा करी विनय करी शीश नमाय मभुजी ॥ अविचल स्थानक मैं सुण्यो, कृपा कर मोहिबताय प्रभुजी ॥

" शिवपुर नगर सुहावणो (टेर) "

आठ कर्म अलगा करया, साज्या आतम काज, प्रभुजी ॥ इण संसारना दुःख थकी, रहा छे ते सुण ठाम, प्रभुजी ॥ २ ॥ वीर कहे उर्ध्व लोकमें, मुक्ति शिला तिणठाम हो गौतम ॥

स्वर्ग छाईसां ऊपरे, तिणगछे वारा नाम, हो गौतम ॥ ३ ॥ लाख पैंतालिस जोयण, लांबीने पहुली जाण हो गौतम ॥ आठ-योजन जाडी विचेम छेहडे पतली अधिक वखाण, हो गौतम ॥ ४ ॥ उज्जल हार मोत्यां तणो, गौ दुग्ध शंख वखाण हो गौतम ॥ तिणसूं अधिकी उजली, समा छत्रने संठाण हो गौतम ॥ ५ ॥ अर्जुन सोनामे दीपती, घटारी मठारी जाण हो गौतम ॥ स्फिकट विचाले निर्मली, सुहाली अधिक वखाण हो गौतम ॥ ६ ॥ शिला उल्लंघ ऊंचा गया, अधर रह्या विराज हो गौतम ॥ अलोकसू जाई अड्या, सार्‍या छे आतम काज हो गौतम ॥ ७ ॥ जठे जन्म नहीं; मरणो नहीं, नहीं जरा नहीं रोग हो गौतम ॥ वैर नहीं, मंत्री नहीं, नहीं संयोग नहीं वियोग हो गौतम ॥ ८ ॥ भूख नहीं, तिरषा नहीं, नहीं हर्ष नहीं शोक हो गौतम ॥ कर्म नहीं, काया नहीं, नहीं विषय रस भोग हो गौतम॥९॥ शब्द रूप गंध, रस नहीं, नहीं स्पर्श नहीं वेद हो गौतम ॥ बोले नहीं चाले नहीं, मून न कोई खेद, हो गौतम ॥ १० ॥ गाम नगर एका नहीं, नहीं वस्ती, नहीं उजाड हो गौतम ॥ काल तिहां वरते नहीं, नहीं रात दिवस, तिथि वार, हो गौतम ॥ ११ ॥ राजा नहीं, प्रजा नहीं, नहीं ठाकर, नहीं दास, हो गौतम ॥ मुगतमें गुरु चेलो नहीं, नहीं लोड वडाई तास हो गौतम ॥ १२॥ अनन्त सुखांमें झूल रह्या, अरूपी ज्योतिप्रकाश हो गौतम ॥ सघलांरा सुख शाश्वता सघला आविचल वास हो गौतम ॥ १३ ॥ अनन्ता सिद्ध मुगते गया, वले अनन्ता जासी हो गौतम ॥ आगे जायगा रूंधी नहीं, ज्योतमें ज्योत समासी हो गौतम ॥ १४ ॥ केवळ

ज्ञानकर सहित छे, केवल दर्शन पास हो गौतम ॥ क्षायक समकित दीपता, केवल रहे उदास हो गौतम ॥ १५ ॥ सिद्ध स्वरूप कांई आलख, आणे मन वैराग हो गौतम, शिव रमणी वरावरे, पामे सुख अगाध हो गौतम॥शिव पुर०॥१६॥

४५–रहनेमि स्तवन

दोहा—शासन नायक समरिए, मनवांछित सुखदाय ॥
राजल रहनेमी कही, सुणजो चित लगाय ॥ १ ॥
चित चलिया रहनेमिनो, देखी राजल रूप ॥
वे दृष्टान्त राखियो, पडता, भवजल कूप ॥ २

(हिरदे धारीजे, हो भविजण, समकित वरणाचार, इस चालमें)

राज मति इणपर कहे हो मुनिवर मन चलियो तू केर ॥ थोडा सुखांरि कारण हो मुनिवर, क्यों पडे अंधेर ॥ १ ॥

सुगुणा साधुजी हो मुनिवर, मन चलियो तू केर (टेर)

पांच महाव्रत आदर्या हो मुनिवर महा मित गुणधार ॥ वमि यारी वच्छा करे हो मुनिवर, धिंग् थारो अवतार ॥ २ ॥ वैरागे मन वालिनेरो मुनिवर, लीनो संयमभार ॥ अब कायर मत थयूं हरो, हो मुनिवर, वेस पराई नार ॥ ३ ॥ सीधो मार्ग छोडने हो मुनिवर, उवट में मत जाय ॥ अमृत भोजन चाखने हो मुनिवर, कुकस खाय बलाय ॥ ४ ॥ गज असवारी छोडने

हो मुनिवर, खर ऊपर मत बैस ॥ स्वर्ग तणा सुख छोडने हो मुनिवर, पाताले मत पैस ॥ ५ ॥ चदन बाल करे कोयला हो मुनिवर, आंबो काट बबूल ॥ कुण वाहे घर आपणे हो मुनिवर. किमहुसी थारो सूल ॥ ६ ॥ घर २ जासयो गौचरी हो मुनिवर, देखसो सुंदर नार ॥ हडनामा वृपनी परे हो मुनिवर, घणो उठायो भार ॥ ७ ॥ वमियांरी वांछा करे हो मुनिवर, गंधण कुल मत होय ॥ रत्न चिंतामणि पायने हो मुनिवर, काच साटे मत खोय ॥ ८ ॥ कुल मोटो आपां तणो हो मुनिवर, तिण सांमो मत जोय ॥ काम भोगने वंछता हो मुनिवर, भलो न कहसी लोय ॥ ९ ॥ ग्वाल भंडारी सारसा हो मुनिवर, हमाल उठावे भार ॥ वोझ मजूरी अरथिया, हो मुनिवर, नही माल शिरदार ॥ १० ॥ रूप घणो नाऱ्या तणो हो मुनिवर, वस्त्रने श्रृंगार ॥ देख २ मन डोलसो हो मुनिवर कुण कहसी अणगार ॥ ११ ॥ मन गमता इन्द्रयाँ तणा हो मुनिवर, सुख विलसे घरमांय ॥ ज्यांसेती न्यारा हुवे हो मुनिवर, ते त्यागी कहिवाय ॥ १२ ॥ आवे वैश्रमण देवता हो मुनिवर, नळ कूबरनी जात ॥ सुपनांमें वंछुं नहीं हो मुनिवर, थांरी कितीयक बात ॥ १३ ॥ जिहां तिहां तूं विचरसी हो मुनिवर, नगरीने वलि गाम ॥ स्त्री देखी मन डोलसी हो मुनिवर, नारी नरगनो ठाम ॥ १४ ॥ सहु सारिसा नर नहीं हो मुनिवर, सहु सरसी नहीं नार ॥ केई भलाने केइभूंडा हो मुनिवर, चल्यो जाय संसार ॥ १५ ॥ ब्राह्मी सुन्दरी बहनही हो मुनिवर, सतियाँमें सिरदार ॥ करणी करी चित्त निर्मली हो मुनिवर, नाम लियाँ निस्तार ॥ १६ ॥ तीर्थंकर बावीसमा

हो मुनिवर, अंगमें मोटा सोय ॥ पालवमें तंत्र निसन्धी हो मुनिवर बयवे सामी जोय ॥ १७ ॥ रमणी दुखारी वैरी, हो मुनिवर, रमणी दुखारी खान ॥ करणी करो विषे निर्मली हो मुनिवर, कमा हमारो मान ॥ १८ ॥ वचन सुणी गाढ़ के थया हो मुनिवर, दियो ठिकाणे आय ॥ धर्म्म धैन्य तूं मोटी मती हो मुनिवर माथी में रास्ती मुझ माय ॥ १९ ॥ ए दोनूं उत्तमें हुवा हो मुनिवर, पांचो केवळ ज्ञान ॥ कर्म खपाय मुंगे स्यों गया हो मुनिवर, नामें सुखे निर्वान ॥ २० ॥ संवत अठारे चोपने, हो मुनिवर, श्रावण मास मझार ॥ ऋषि चौथमली विनवे हो मुनिवर, ग्राम पिपाड उदार ॥ सुगुणों २१

४६–श्रीमंदिर जिन स्तवन

श्रीमंदिर स्वामीने प्रणमूं, चरणां शीश नमावे ॥ अपितना गुण मुखडे गीर्वा भवे भवना दुःख जावसी ॥ १ ॥

" हूं चरणां शीश नमाऊँ जी, श्री मंदिर जिनराय ॥ मुझ विनतडी अवधारोजी, थारी मोरा थारोजी, संसार लागे ग्यारोजी, वैराग लगे छे प्यारो जी हूं किम करि चरणे आऊं जी श्रीमंदिर जिनरोय [टेर]

जिग मिग ज्योत जिग मिग दीपे, कंचन वरणी काया ॥ चौसठ इन्द्र करे तुम सेवा, गुरसुर लागे पाय जी ॥ हूं चरणां॰ ॥ २ ॥ दिवस में बलि हूम पैणी छे, दर्शन केडे सिद्दी भार

॥ पिण आडो पर्वत वहती नदियो, मोसूं नही अवायजी ॥ ३॥ देव मित्र एसो नहीं दीसे निमाणसूं ले जाय ॥ इण भवमें आयो नहीं जोवे जो करू क्रोड उपायजी ॥४॥ वचन तुह्मारा सूतर मांही, चालूं तहतें न्याय ॥ शील रथ उपर वेसीने धर्म ध्वज लटकाय जी ॥ ५ ॥ काम कटारी कसकर वांधूं, सूत वाण चढाय ॥ काम क्रोध दो गर्दन मारूं, इसकर दर्शन पाय जी ॥ ६ ॥ साधु श्री दौलत रामजी, ज्यांने शीश नमाय ॥ संवत अठारे वरष त्रेपने, जयपुरमे गुण गाय जी ॥ ७ ॥

४८– कर्मोकी विचित्रता.

रे प्राणी कर्म समो नही कोई ॥ टेर ॥

देव दानव, तीर्थंकर गणधर, हरि हलधर नर सबला ॥ कर्म तणे वश सुख दुख भुगत्या, सबल थया महा निवलारे ॥ प्रा० ॥ १ ॥ कीधां कर्म ते विन भोगाविया, छुटकारो नहीं होई रे ॥ प्रा० ॥ २ ॥ आदीश्वरजी आहार न पाम्यो, वर्ष दिवस रह्या भूखा । श्री महावीरजीने कर्म विटंब्या उपना ब्राह्मणी कूखोरे ॥ ३ ॥ साठ सहस्त्र सुत ढावे दाबियां, जोध जवान कुमर जैसा ॥ सागर हुवो पुत्र दुख दुखियो, कर्म तणा फल एसा रे ॥ ४ ॥ बत्तीस सहस्त्र देशनो साहिवो, चक्री सनत् कुमारो ॥ सोलह रोग शरीरमें उपना, कर्म तणो फल खारोरे ॥ ५ संभूचुनामे आठमो चक्री, करमां सायरमें नारव्यो ॥

सोलह सहस्र यक्ष ऊभा देखे, तो पिण कोक न राख्यो रेजाम॰ ॥ ६ ॥ लूंटी लंका सावन नगरी, लक्ष्मण रावण मार्यो, एक लख त्रिय सब जग जीत्यो, कम सतो पिण हार्योरे ॥ ७ ॥ लक्ष्मण राम महाबलवंता, हारी सत्यवती सीता ॥ बारह बरस लग वनमें भमियां, बीतक करड़ा बीतारे ॥ ८ ॥ छपन क्रोड़ यादवनो स्वामी, कृष्ण महा बलवंत जाणी ॥ अटवी मांहि सूतो एकलो, निठियो नहीं तिहां पाणीरे ॥ ९ ॥ पांडू पांडव महा बलवंता, हारी द्रोपदा नारी, बारह बरस लग वनके मांहीं, भमिया जम भिखारीरे ॥ १० ॥ सती शिरोमणि द्रोपदा कहिए, जिण सम नारी न कोई ॥ पांच पुरुषनी, हुई नारी, पूर्व कर्म कमाई रे ॥ ११ ॥ पद्मखण्ड साहिब ब्रह्मदत्त चक्री विषया रसमें औंधो ॥ इम आणी ऊंडो आलोचो, कर्म कोई मती बांधोरे ॥ प्रा॰ ॥ १२ ॥ दधि वाहन राजानी बेटी, वारे चन्दन बाला ॥ चौपद ज्यूं चौहटामें विकाणी, कर्म तणा ए चाला रे ॥ प्रा ॥ १३ ॥ कम हैरान किया हरिचंदने बची तारा दे राणी ॥ बारह बरस लग मांभे आण्यो, नीच तणे घर पानीरे ॥ प्रा॰ ॥ १४ ॥ समकितधारी, श्रेणिक राजा, कोणिक बिन्धे दीधो ॥ घरमी पुरुषनि कर्मे पकाया, कर मांड ओर न कीधोरे ॥ प्रा॰॥ १५॥ चन्दन राजा मलयागिरी राणी, पड्या सायर नीरा ॥ बारह बरस लग वनमें भमिया, प्रमा॰ कर्मोरा वीरारे ॥ प्रा॰ ॥ १६ ॥ मण रथा सती उत्तम कीधा जुग बाहुनी नारा ॥ आधी रातरा वनमें निकली उन्म्या नमि कुमारार ॥ प्रा॰ ॥ १७ ॥ इत्यादिक बहु कम विटम्ब्या, मात कर्मोरा बामा ॥ अणि हरष करसाई

वीलें, नामो नमो कर्म राजा रे ॥ प्राणी० ॥ १७ ॥

४९–शालिभद्र स्तवन.

राजगृही नगरी मझारोजी, विणजारा देशावर सारोजी, इण विणजजी, रतन कंवल ले आवियाजी ॥ १ ॥ लाख लाखनी वस्तु लाखिणी, ए वस्तु छे अति झीणी; कांई परिमलजी; गढ मढ मंदिर परिहरीजी ॥ २ ॥ पूछे गामने चोतरे, लोक मिल्या विध विध परे, जई पूछयोजी, शालिभन्द्रनें मंदिरेजी ॥ ३ ॥ सेठाणी सुभद्रा निरखेजी, रतन कंवल ले परखेजी ॥ ले पहुं-चाडोजी, शालिभद्ररे मंदिरेजी ॥ ४ ॥ तेडाव्यो भंडारीजी, वीस लाख निरधारीजी ॥ गिणदीजोजी, एने घर पहुंचाडजो जी ॥ ५ ॥ राणी कहे सुणो राजाजी, आपणो राज किस काजा जी॥ मुझ काजेजी, एक न लीधी लोवडीजी ॥ ६ ॥ सुण, हो चेलणा राणीजी ! एह बातमैं जाणीजी ॥ पीछाणीजी, ए वातनो अचंभो घणोजी, ॥ ७ ॥ दातण तो जब करसूंजी, शालिभद्र मुख जोसूंजी ॥ शृंगाराजी, गज रथ घोडा पालखीजी ॥ ८ ॥ आगल कुंतल हींचावता, पाछल पात्रनचावंता ॥ राय श्रेणि-कजी, शालिभद्र घर आवियाजी ॥ ९ ॥ पहले भुवने पगदियो राजा मनमें चमकियो ॥ कांई जोज्योजी, ए घरतो चाकरतणा जी ॥ १० ॥ दूजे भुवने पग दियो, राजा मनमे चमकियो ॥ कांई जोज्योजी, ए घर तो सेवक तणाजी ॥ ११ ॥ तीजे भुवने पग दियो, राजा मनमें चमकियो ॥ कांई जोज्योजी, ए

घर रा दासी तणाजी ॥ १२ ॥ चौथे भुवने पग दिया, राजा मनमे चमकिया ॥ कांई मोजघाजी, ए घर तो सेठां तणाजी ॥ १३ ॥ राय श्रेणिकनी मुद्रिका, खोवाई खोल करे मीका ॥ माथभद्राजी, थाल भरी सब लावियाजी ॥ १४ ॥ आगो आज मोरा नंदजी, किम मूला आनन्दजी ॥ कांई ओमणजी, श्रेणिक राय पधारियाजी ॥ १५ ॥ हूं नहीं आणूं माता मोलमें, हूं नहीं आणूं माता तोलमें ॥ तुम लीजोजी, जिम तुमने सुख उपजेजी ॥ १६ ॥ पहिले तुम पूछता नहीं सो अब पूछो तुम कांई ॥ मोरी माताजी, हूं नहीं आणूं विणजमेंजी ॥ १७ ॥ राय किराणा लीजाजी, मुंह मांग्या दाम दीजोजी ॥ नाना सुख पीजी, मेवाग छे नाखमजाजी ॥ १८ ॥ चलती माता [illegible] कई साची नन्दन सदहे ॥ सुणो पुत्रजी, श्रेणिक राय पधारियाजी ॥ १९ ॥ सबमें करे जो राजियो, सबमें करे देराखियो ॥ कांई सबमांजी, न्याय अन्याय कर सहीजा ॥ २० ॥ पूर्वे सुकृत नहीं कीधा, सुपात्रे दान नहीं दीधा ॥ मुज माथेजी, इणपर पहवा नाथ छ जी ॥ २१ ॥ अब सो करस्यो करणूजी, पथ विषम परिहरसुंजी ॥ पाली संयमजी, नाथ सनाथ थसूं सही जी ॥ २२ ॥ इन्दुवत् अंग तेजजी, सहुने आव हेजजी ॥ नम्म शिख लगजी, अंगोपांग शोभे घणाजी ॥ २३ ॥ मुक्ताफल जिम चलकेजी, काने कुण्डल झलकेजी ॥ राय श्रेणिक जी, शालिभद्र खोले लियोजी ॥ २४ ॥ राजा कहे सुणो माताजी, तुम कुमर सुख पाताजी ॥ दिये पहनेजी, पाछो मंदिर माऊ लाजी ॥ २५ ॥ शालिभद्र निजघर आयाजी, राजा श्रेणिक घरे सिधायाजी ॥ पछे शालिभद्रजी, चिंतकरे मनमें घणीजी

॥ २३ ॥ श्री जिननो धर्म आदरूं मोहमायाने परिहरूं ॥ हूँ छांडूंजी, गज रथ घोडा पालखीजी ॥ २७ ॥ सुणने माता विलखेजी, नारी सगली तरसेजी ॥ तिण वेलांजी, अशाता पाम्या घणीजी ॥ २८ ॥ मात पिताने भ्रातजी, सुहु आल पंपालनी वातजी ॥ इण जगमेंजी, स्वारथना सहु सगाजी ॥२९॥ हंस विना जिम सरवरिया, पियु विना जिम मंदिरया ॥ मोह वशजी, उच्चाट एम करे घणोजी ॥ ३० ॥ सर्व नीर अमूल्य जी, कचोले तेल फूलेळजी ॥ शाह धन्नेजी, शरीर समारण मांडियोजी ॥ ३१ ॥ धन्नाघर सुभद्रा नारीजी, बैठी महल मझारीजी, ॥ समारंतांजी, एकज आंसू खेरियोजी ॥ ३२ ॥ गोभद्र शेठनी बेटडी, भद्रा तारी मावडी ॥ सुण सुन्दरजी, तें किम आंसू खेरियाजी ॥ ३३ ॥ शालिभद्रनी बेनडली, बत्रीसभो जायॉरी नणदली ॥ तो तारेजी, शा मोट रोवू पड्यो जी ॥ ३४ ॥ जगमें एकज भाई मांह रे, संयम लेवा मनकरे ॥ नारी एक एकजी, दिन दिन प्रत्ये परिहरेजी ॥ ३५ ॥ ए तो मित्र कायरूं, शुले संयम भायरू ॥ जीभडलीजी, मुख मायानी जुदी जाणवीजी ॥ ३६ ॥ कहवो तो घणो सोहिलो, पण करवो अति दोहिलो ॥ सुणो स्वामीजी, एहवी ऋद्धि कुण परिहरेजी ॥ ३७ ॥ कहवो तो घणो सोहिलो, पण करवो अति दोहिलो, सुण सुन्दरजी, आजथी त्यागी तुझनेजी ॥ ३८ ॥ चोटी आंबोडो वालीने, शाह धन्नो उठ्या चालीने ॥ कांई आव्याजी, शालिभद्रने मंदिरेजी ॥ ४० ॥ उठो मित्र कायरूं, संयम लहिये भायरू ॥ आपण दोय जणजी, संयम शुद्ध आ·

राखियजी ॥ ४१ ॥ शालिभद्र वैरागिया शीह घणा अति स्नागिया ॥ दोनों रागियाजी, श्री वीरसमीपे आविया जी ॥ ४२ ॥ संयम मारग लीनोजी, तपस्यामें मन भीनोजी ॥ शा धन्नाजी, मास खमण करे पारणाजी ॥ ४३ ॥ तप करी देहने गालाजी, दूषण सगला टाली जी ॥ वैभार गिरीजी, ऊपर अणसण आदर्योजी ॥ ४४ ॥ चढ़त परिणामें सोभजी, काल करीने सोभजी ॥ देवगतिमेंजी, अनुत्तर विमाने ऊपना जी ॥ ४५ ॥ सुर सुखने तिहां भोगवी, त्यांथी देव दोनूं चवी ॥ विदेहजी, मनुष्यपणा ते पामसेजी ॥ ४६ ॥ सुधो संयम आदरी, सकल कर्मने क्षय करी ॥ लही केवलजी, मोक्ष गतिने पामसेजी ॥ ४७ ॥ दान तणा फल देखोजी, धन्ना शालिभद्र पखोजी ॥ नहीं लेखोजी, अतुल सुख तिहां पामसेजी ॥ ४८ ॥ इम जाणी सुपात्रने पोषोजी, जिम वेगे पामो मोक्षोजी ॥ नहीं धोकाजी, कहे जीवने उपजसी ॥ ४९ ॥ उत्तमना गुण गावे जी, मन वंछित सुख पावजी ॥ कहे कविजनजी, श्रोताजन तुमें सांभलजी ॥ ५० ॥

५०–चारों गतिमें जानेवालेके लक्षण

(श्रावक मुनिवर चाल्या गोचरी, इस चालमें)

आरंभ करतांर जीव डरे नहीं, मद्य मांसना कर आहारोजी ॥ घात करे पंचेन्द्री जीवनी मन मेल्या तृष्णा अपाराजी ॥

ए चार प्रकारेरे जीव जाय नरकमां ॥ १ ॥ कूड कपटने छल-माया करे, बोले मूसा वायो जी ॥ कूडा तोला रे कूडा मापला खोटा लेख लिखायोजी ॥ ए चार प्रकारे जीव जाय तिर्यंचमां ॥ २ ॥ सरल स्वभाविक भद्रिक परिणामी, विनयतणा गुण आयोजी ॥ दया भाव राखे दिलमां, मत्सर नहीं घट मांयोजी ॥ ए चार प्रकारे जीव जाय मनुष्यमां ॥ ३ ॥ सराग पणथी पाले साधुपणो, श्रावकना व्रत बारोजी ॥ अज्ञान कष्ट अकाम निर्जरा, तिणसूं सुर अवतारोजी ॥ ए चार प्रकारे रे जीव जाय देवमां ॥ ४ ॥ ज्ञान थी जाणे जाव अजीवने, श्रद्धासे समकित आवेजी ॥ चारित्र रोरे रे नवा कर्म आवतां, तपे पूर्वना कर्म खपावेजी ॥ ए चार प्रकारे जीव जाय मोक्षमां ॥ ५ ॥

५१--गज सुकमाल स्तवन.

श्रीजिन आयाहो सोरठ देश मझार, द्वारावती हो नगरी भली ॥ श्री जिन वंद्या हो, कुंअर गज सुकमाल वाणी सुणीने वैरागिया ॥ १ ॥ माई, मैं तो वंद्या ए, तारण तिरणरी जहाज, अमीय समानी वाणी मै सुणी ॥ माई, मैं तो जाण्यो ए, ओ संसार असार स्वारथीयो जगमे सहु ॥ २ ॥ अनुमति दीजे हो लेसूं संजमभार, वचन चितारो पूरब भवतणा ॥ वच्चा, तूं तो भोलोरे, संजम खांडानी धार, बाइस परिषह सहणा जाया दोहिला ॥ ३ ॥ माई, म्हारो कालज ए नहीं गिणेवार तिंवार, क्या जाणूं अम्मा किणविध आवसी ॥ अनुमति दीधोहो,

लीधो मयममार कमकाउमग्ग यनमें गया ॥ ४ ॥ सामत भायस हा दीठा गज सुकमाल, कोप कियो छ मुनिवर ऊपर ॥ धर विगरे हा, बांधी माग्गनी पाल, खेर अगिग मस्तक मेलिया ॥ ५ ॥ ममता भाखी हा, ध्यायों निर्मल ध्यान, क्ष निकाचित पिवसा क्षय किया ॥ पाम्या पाम्या हा पाम्या केवल ज्ञान, कर्म खपाइ मुनि मुक्त गया ॥ ६ ॥ ए गुण गाया हा मारठ दश मझार कर जोडी रतना भणें ॥ ७ ॥

---

५२ गजल-विना रघुनाथको देखे इस चालमें

उठा जिन धर्म के प्रेमी, नाम महावीर ले ले कर। बजावो धर्मकी सेवा, नाम महावीर ले ले कर ॥ टेर ॥ तुम्हें हैं जैनियो लाजिम, तन मन धन तीनोंको नौछावर धर्म प करदो, नाम महावीर ले ले कर ॥ उ० ॥ १ ॥ दु ख मोचन मोक्षदाता, पद अरिहंत रूप को द करो उत्साहसे सेवा, नाम महावीर ले ले कर ॥ २ ॥ शिवसुंदर पुष्पमाला, कर कमलों में ले उसी पहनावो धर्म सेवकको नाम महावीर ले ले कर । ३ ॥ दुर्लभ नर जन्मका पाना, आर्य भूमि उत्तम कुलमें, अपूर्व लाभको लवो नाम महावीर ले ले कर ॥ ४॥ वीर जिसको तीर्थंकर वे विरस तारक धर्म जिसमें, करो गुण ग्राम नित मननें, नाम महावीर ले ले कर ॥ ५ ॥ चांदमल कहे सुनो सज्जन, सदा सुखकी मेः झड़ी, शाम जावो शिवपुरमें, नाम महावीर ले ले कर ॥ उ० ॥ ६ ॥

५३ गजल- चाल पूर्ववत्.

शुभाशुभ जो किया तुमने, वे ही अब पेश आते हैं, कभी नीचा दिखाते हैं कभी ऊंचा बनाते हैं ॥ टेक ॥ आश्रव हिंसा असत्य चोरी, भोग ममत्वमें राचे; कर्म बन्धनका यही कारण गुरु प्रगट जताते हैं ॥ १ ॥ कर्म मत बांधना कोई कर्म सैतान हैं जहांमें, अवतार श्रीराम लक्ष्मणको उठा जंगल ले जाते हैं ॥ २ ॥ त्रिखंडी नाथ जो माधव, थे यादु वंश के भानू जरद कुमारके जरिये पांवमें बाण खाते हैं ॥३ ॥ सत्यधारी हरिश्चन्द्र को, चंडालके घर ले जाते हैं पतिव्रता सती तारा, से ये पानी भराते हैं ॥ ४ ॥ कभी तो नर्क के अंदर जाते स्तंभ कराते हैं कभी सुर लोक के अन्दर ताज शिरपर सजाते हैं ॥ ५ अजब लीला कर्मकी है, कथन करनेमें नहीं आती ॥ राजा नलको दमयन्ति से जुदाई ये कराते हैं ॥ ६ ॥ कथे यों चौथमल वाणी, अरे सुन लीजो भव प्राणी भजो तुम देव निर्वानी कर्म सर्व भाग जाते हैं ॥ शु० ॥ ७ ॥

---

५३ गजल--चाल पूर्ववत्.

सज्जन तुम नेकी कर लेना, हमेशा नेकीपर रहना, सज्जन चन्द रोज का जीना, इसीपर ध्यान कर लेना (टेक) सज्जन तेरा तात और भाई मिले मतलबसे आई, धर्म परलोकमें सहाई इसीको साथमें लेना ॥ १ ॥ सज्जन तेरे घरमें सुंदर नार रात दिन करतां उससे प्यार; मगर आती नहीं ये लार, यहीं

सत्पुरुषोंका है कहना ॥२॥ सज्जन तुझे मुनासिब जोग राज्य धन फौजका है और घर आखीर ॥ तो जाना छोड़ यहां दिन चार है रहना ॥ ३ ॥ सज्जन ये सद्गुरु साखी, करो शुभ धर्म सुख दानी, चौथमल कहे सुन आखी यही सुना यही देना ॥ ४ ॥

५४ गजल—चाल पूर्ववत्

सज्जन तेरी उम्र जाती कुछ मुझे विचार आता है, में नहीं बक्त सोनेका लाभ क्यों नहीं कमाता है ॥ टेक ॥ चाहे राजा चाहे राना चाहे हो बादशाह वजीर चाहे हो सेठी। माहे कभ यहां किसीका न खाता है ॥ १ ॥ क्या माता पिता न्यारी, क्या धनमाल और हाथी, क्या तेरे संगके साथी, साथमें कौन आता है ॥ २ ॥ समय अमूल्य जाता है क्यों किसको सतावा है आज सू क्यों न आता है यहांका छूट जाता है ॥ ३ ॥ मजी पापाख तन प्यारे पे बग्गी फिर सारे, ले दिन गम्य बा वार चौथमल यों चेताता है ॥ ४ ॥

५५ गजल पूर्ववत्

कयम कर तो जवानी को, जवानी तो दिवानी है, फैल पैदा कर पल में खराबीकी निशानी है ॥ टेक ॥ यही तारीफ और बदनाम, नका बदी कराती है, कमानमें उड़ानमें, यही सुखिया सवाना है ॥ १ ॥ चढ है जोश जब इसका उस फिर।

कुछ नहीं सूझे, गर्क रहे एश असरत में जमानेकी घुमानी है ॥ २ ॥ अगर हो दोस्तकी सुंदर, चाहे हो बन्धुकी प्यारी; भले विधवा कुमारी हो नही आती गिलानी है ॥ ३ ॥ सकल शृंगार क्रीडाका, चतुरताका यही गृह है, सोदाई और खुदाईमें नहीं कोई इस के सानी है ॥ ४ ॥ लगे नहीं दिल प्रभु अन्दर सदाही घूमता रहे वे, करे निर्लज तजे मर्याद, कई रोगोंकि खानी है ॥ ५ ॥ मेणरया के लिये मणि रथ, करा है कत्तल भाई को; पट् ललिताङ्ग पुरुषोंकी, कराई इसने हानी है॥ ६ ॥ युवानी रूप बग्गीके, जुता है अश्व मन चंचल, ज्ञान लगामसें रोको, चोथमलकी यह वाणी है ॥ ७ ॥

---

५६ गजल--चाल पूर्ववत.

सकल संसारको जानो, सराय जैसा उतारा है, मुसाफिर छोड दे गफलत, रेनभरका गुजारा है ॥ टेक ॥ थोडीसी जिन्दगी खातिर बनाई बागमें कोठी, कोई पूछे तो कहे ऐसे मकां यह तो हमारा है ॥ १ ॥ सजी पोशाख लगा ईतर, बैठ बग्गी या मोटरमें, घुमाता तूं गुरूरीसे, कोल अपना बिसारा है ॥ २ ॥ कमाने के लिये आया, सदर बाजार आलिममें तू, लेटर बक्स को भर ले, यहां व्यापार सारा है ॥ ३ ॥ हजारों बादशाह वजीर, सेठ सरदार आ आके, कम जादा बसेरा ले। चले गये बेशुमारा है ॥ ४ ॥ सदा ही यहीं पर रहना, तैं ऐसी छावनी छाई, मगर यह कुंचका हरदम, साफ बजता नकारा है

॥ ५ कहां श्रेणिक नृप कौणिक कहां है भूपति विक्रम, बात है आज तक रोशन, किया जिसने सुधारा है ॥ ६॥ परोपकार को करके, सत्तावत का मजा लेला; चौथमल कहे सुनो मित्रा, भला इसमें तुम्हारा है ॥ ७ ॥

---

५७ गजल-चाल दिल जानसे फिदा हूं

कहती है भूमि भारत, अरे सुपुत्रो उठ कर, इस फूटमें मिन्न हो, अरे सुपुत्रा उठ कर ॥ टेक ॥ अविद्या, हठ, चोरी, हिंसा हराम बेहद ॥ इन्हें देशसे निकालो अरे सुपुत्रो उठ कर ॥ कहती ॥ १ ॥ करके सभायें, ऐसी सब भ्राता को बुला कर सीर नीरसे मिला तुम ॥ अरे सुपुत्रो उठ कर ॥ २ ॥ लाखों मरे हैं भूखे, स्वदेशी तुम्हार प्यारे, कर गौर उन्हें बचा लो अरे सुपुत्रा उठकर ॥ ३ ॥ मर लिय पूर्वज करतेथे प्राण नोंछावर, इतिहास का तो पढलो ॥ अरे सुपुत्रो उठकर ॥ ४॥ आतिशबाजी रंडी कुरिवाज थम कर के, अनाथालयको खोला अरे सुपुत्रो उठ कर ॥ ५ ॥ इस समाज जाति, और आत्मा की सेवा, तुम जल्दी से यश लो अरे सुपुत्रो उठकर ॥ ६ ॥ कह चौथमल मित्रा मुरदार पन को छोड़ो, बनो उत्साही दाता ॥ अरे सुपुत्रो उठकर ॥ ७ ॥

५८ गजल-चाल अरे रावण तूं धमकी दिखाता किसे

दिल अपनेमें सोचो जरा तो सनम, यह दगा तो किसीका सगा ही नहीं, लो यहां पर भी उसको न चैन पडे और बहिस्त-में उसको जगह ही नही ॥ टेक ॥ अव्वल तो रावणने करके दगा, सती सीताको लेकर लंक गया, मुफत में लंक सोने की गई, और ऐश तो हाथ लगा ही नहीं ॥ दि० ॥ १ ॥ देखो कंश ने कृष्ण को मारन को, किया दगा जाने है तमाम, उसी कृष्णने कंस को मार लिया, हुवा कोई शरीक सगाही नहीं ॥ ॥ २ ॥ फिर धव्वल सेठने करके दगा, श्रीपालको मारन ऊंचा चढा, पांव फसलके सेठ धव्वलही मरा, श्रीपाल तो डरके भगाही नहीं ॥ ३ ॥ दाम नखासे करके दगा, वह श्वशुर शेठ खुदही मरा, चौथमल कहे दिल पाक रखो, यह सगा तो किसी का दगा ही नहीं ॥ ४ ॥

---

५९ गजल या हसीना बस मदीना करबलामें तूं न जा इस चालमें.

अरे प्यारो मत बिगाडो, दीन दुनिया वास्ते, नेक नसीहत मान लो तुम दीन दुनिया वास्ते ॥ अ० ॥ रहम करना हर जानपर, इन्सानका यह फर्ज है, दिल सताके मत बिगाडो, दीन दुनिया वास्ते ॥ २ ॥ इन्साफ पर रखो निगाह, रिश-वत का खाना छोड दो, झूठी गवाह भर मत बिगाडो, दीन दुनिया वास्ते ॥ अ० ॥ ३ ॥ माल और औलाद हरगिज

सांच में आवे नहीं, हिरस करके मत बिगाड़ो, दीन दुनिया वास्ते ॥ ४ ॥ हुस्न सदा रहता नहीं, दरियाके माफिक आ रहा, जिना करके मत बिगाड़ो दीन दुनिया वास्ते ॥ ५ ॥ एक पैसे के लिये तू खुदाकी खाता कसम, आलममें आकर मत बिगाड़ो दीन दुनिया वास्ते ॥ ६ ॥ अगर दिल हुशियार है तो, जुलम से अब बाज आ, नशा करके मत बिगाड़ो दीन दुनिया वास्ते ॥ ७ ॥ दीनको जिसने बिगाड़ा, वो इन्सान नहीं हैवान है, चौथमल कहे मत बिगाड़ो, दीन दुनियां वास्ते ॥ ८ ॥

---

६० गजल-चाल पूर्ववत्

इल्म पढ़ले अरे दिला, इसका गरम बाजार है, आलिमों की हाजरीमें कई खड़े सरदार हैं ॥टेर॥ जिस समाजमें लिखे पढ़े उसका सितारा सब्ज है, जिस देश में विद्या हुनर वह देश ही गुलजार है ॥ १ ॥ दिवान, हाकिम, अफसरी, वकिल बैरिस्टर बने, बदौलत इस इल्मकी दुनिया कहे हुशियार है ॥ २ ॥ इल्मसे अफजल बने, और अक्लसे आवे अमल सत्य झूठ दानों फर्कका यही समझेदार है ॥ ३ ॥ बिन इल्मके इन्सान और, हैवान में क्या फर्क है, गौर कर देखो जरा फक्त इल्मकोही प्यार है ॥ ४ ॥ पढ़ को पढ़ाओ इल्मका खेलना खेलाना छोड़ दो, कहे चौथमल मित्रा सुनो, नसीहत हमारी सार है ॥ ५ ॥

---

६१. गजल चाल पूर्ववत्.

आकबतके लिये तुझको, धर्म ध्याना चाहिये, दिन रातमें तुझे दो घडी, सत्संगमें आना चाहिये ॥ टेक ॥ दुर्लभ मिला नरका जन्म जिसे न गमाना चाहिये जिस लिये पैदा हुआ, वो फर्ज बजाना चाहिये ॥ १ ॥ मोह नीन्दमें सोता पडा, उसको उठाना चाहिये, जागता सोता रहे, जिसे क्या जगाना चाहिये ॥२॥ गैर लाके मालको, किसे ना दबाना चाहिये, कर जाल कोई मसकीनको, कभी न फसाना चाहिये ॥ ३॥ चन्दरोजका मुकाम है, यहां ना लुभाना चाहिये, सामान नेकीका बांधके संगमें जाना चाहिये ॥ ४ ॥ निशि भोजन अभक्ष है तुझको न खाना चाहिये, चौथमल की नसीहतको दिलमें लाना चाहिये ॥ ५ ॥

---

६२ गजल सत्संगपर.

लाखों पापी तिरगए, सत्संगके परतापसे । छिनमें बेडापार है, सत्संगके प्रतापसे ॥ टेर ॥ सत्संगका दरिया भरा, कोई न्हाले इसमें आनके । कटजाय तनके पाप सब, सत्संगके परतापसे ॥ १ ॥ लोहका सुवर्ण बने, पारसके परसंगसे । लटकी भंवरी होती है, सत्संगके परतापसे ॥ २ ॥ राजा परदेशी हुआ कर खूनमें रहते भरे । उपदेश सुन ज्ञानी हुआ, सत्संगके परतापसे ॥ ३ ॥ संयति राजा शिकारी, हिरनके मारा था तीर । राज्य तज साधु हुआ, सत्संगके परतापसे ॥ ४॥ अर्जुन माला-

मारने, मनुष्यकी हत्याकरी । छे मासमें मुक्ति गया सत्संगके परतापसे ॥ ५॥ एलायची एक चोर था श्रेणिक नामा भूपति । कार्य सिद्ध उनका हुआ, सत्संगके परतापसे ॥ ६ ॥ सत्संग की महिमा बड़ी, है तीन दुनिया बीचमें । चाथमल कहे हो भला, सत्संगके परतापसे ॥ ७ ॥

---

६३ गजल-नेक नसीहतपर ।

चाल पूर्ववत्

दिल सताना नहीं रवा, यह खुदाका फरमान है । खास इबादत के लिये पैदा हुआ इन्सान है ॥ टेर ॥ दिल बड़ी है चीज़ जिसे खालक देखा चश्म । दिल गया तो क्या रहा । मुर्दा तो वह समशान है ॥ २ ॥ जुल्म तो करता उसे, हा फिर भी यहां पर दे सज़ा । मुआफ हरगिज होता नहीं, कानूनके दरम्यान है ॥ ३ ॥ जैसे अपनी जानको आराम तो प्यारा लगे, उस गैरोंका समझ तू क्यों बना नादान है ॥३॥ नेकी का बदला नेक है, यह कुरानमें लिखा सफा । मत बदीपर कस्द कमर तू, क्यों हुआ बेईमान है ॥ ४ ॥ वे गुफ्तगु हालतमें, गिरफ्तार सा होगा सही । नहीं गिनती है यहांपर, राजा या दीवान है ॥५॥ बैठकर तू तख्तपर गरीबोंकी सुने नहीं सुनो । फरिश्ते यहां पीटस, होगा बड़ा हैरान है ॥ ६ ॥ गले कातिल के यहां, पहराया तौक हुरा । इन्सान हाके नहीं जिनी बड़ा यह भी शर्म जान है ॥ ७ ॥ रहमको साथ जरा तू, समझ

दिलको छोडदे । चौथमल कहे हां भला, जो इस तरफ कुछ ध्यान है ॥ ८ ॥

---

६४ गजल-गरूर [मान] निषेधपर ।

चाल पूर्ववत्

सदा यहां रहना नहीं तूं, मान करना छोडदे । शहनशाह भी नहीं रहे तूं मान करना छोडदे ॥ टेर ॥ जैसे खिले हैं फूल गुल्शन में. अर्जाजो दखलो । आखिर तो वह कुम्हलायगा, तूं मान करना छोडदे ॥ १ ॥ नूर से वे पूर थे, लाखों उठाते हुक्म को । सो खाक में वे मिल गये, तूं मान करना छोडदे ॥ २ ॥ परशु ने क्षत्री हने, शम्भूमने मारा उसे । शम्भूमभी यहां नहीं रहा, तू मान करना छोडदे ॥ ३ ॥ कंस जरासंध-को, श्री कृष्णने मारा सही । फिर जर्दने उनको हना, तूं मान करना छोडदे ॥ ४ ॥ रावणसे इन्दर दबा, लक्ष्मणने रावणको हना । न वह रहा, न वह रहा, तूं मान करना छोडदे ॥ ५ ॥ रब्बका हुक्म माना नहीं, अजाजिल काफिर बन गया। शैतान सब उसको कहे, तूं मान करना छोडदे ॥ ६ ॥ गुरुके प्रसादसे कहे, चौथमल प्यारे सुनो । आजिजी सब में है बडी, तूं मान करना छोडदे ॥ ७ ॥

---

६५ गजल गोश्त [मास], निषेधपर

चाल पूर्ववत्

सख्त दिल हो जायगा तू, गोस्त खाना छोड़दे । रहम फिर रहता नहीं तू, गोस्त खाना छोड़दे ॥ टेर ॥ जो रहम दिलमें न रहा, तो रहेमान फिर रहता है कब, । यह समझ कर फिर कुछ नहीं तू, गोस्त खाना छोड़दे ॥ १ ॥ जिस चीजसे नफरत होवे, वह ही गोस्तका पैदाश है । नापाक फिर कैसे हुआ तू गोस्त खाना छोड़दे ॥ २ ॥ गौ, बकरे बैल भैंसा, लाखों कट गए । दूध दही महँगा हुआ तू गोस्त खाना छोड़दे ॥ ३ ॥ दूध में ताकत यही, वह गोस्तमें है भी नहीं । ढूँढके खोज करोगे गोस्त खाना छोड़दे ॥ ४ ॥ गोस्त खोर हैवानका चिन्ह, मिलता नहीं इन्सानमें, नेक स्वादी अब बन तू गोस्त खाना छोड़दे ॥ ५ ॥ कुरानके अन्दर लिखा, खुराक आदम के लिये । पैदा किया गेहूँ मेवा, तू गोस्त खाना छोड़दे ॥ ६ ॥ कत्ल हैवानातका बिना, गोस्त कहो कैसे मिले । बे दिल निजात पाता नहीं, तू गोस्त खाना छोड़दे ॥ ७ ॥ जैन शास्त्रके बीचमें, महावीरका फरमान है । मांस आहारी नर्क जा तू गोस्त खाना छोड़दे ॥ ८ ॥ जिसका मांस खाता यहां, वह उसको वहांपर खायगा । मनुस्मृतिमें कहगए, तू गोस्त खाना छोड़दे ॥ ९ ॥ नरक हरगिज नहीं मरे, फिर इबादत होती कहां । चौथमलकी मान नसीहत, गोस्त खाना छोड़दे ॥ १० ॥

---

६६ गजल शराब निषेधपर.

चाल पूर्ववत्

अकल भ्रष्ट होती पलकमें, शराबके परतापसे । लाखों घर गारत हुए [बरबाद हुए], शराबके परतापसे ॥ टेर ॥ शराबी शोख महा बुरा, खुदकी खबर रहती नहीं । जाना कहां जावे कहां, शराबके परतापसे ॥ १ ॥ इज्जत और दानिशमंदी, जिस पर दे पानी फिरा । धनवान कई निर्धन बने, शराबके परतापसे ॥ २ ॥ बकते २ हँस पडे और, चौकके फिर रो उठे । बेहोश हो हथियार ले, शराबके परतापसे ॥ ३ ॥ चलते २ गिर पडे, कपडा हटा निर्लज्ज बने । मख्खियें भिनक मुंह पर करे, शराबके परतापसे ॥ ४ ॥ जेवर को लेवे खोल लुचे, ले जेबसे पैसे निकाल । कुत्ते देवे मूत मुह पर, शराबके परतापसे ॥७॥ इन्सानको करते अदल जो, हजारकी रक्षा करें । खुदकी रक्षा नहीं बने, शराबके परतापसे ॥ ५ ॥ कम उमरमें मर गये, कई राज्य राजोंका गया । यादवोंका क्या हुआ इस, शराबके परतापसे ॥ ७ ॥ नशेसे पागल बने, पुलिशभी लेवे पकड । कानूनसे मिलती सजा, शराबके परतापसे ॥ ८ ॥ आठ आने वह कमावे, खर्च रुपयेका करे । चोरीको फिर वह करे शराब के परतापसे ॥ ९ ॥ जैन वैष्णव मुसलमान, अंजीलमेंभी है मना । कई रोगी बनगये, शराबके परतापसे ॥ १० ॥ चौथमल कहे छोडदे तूं, मानले प्यारे अजीज । आराम कोई पाता नहीं, शराबके परतापसे ॥ ११ ॥

---

६७ गजल-परनार निषेधपर

चाल पूर्ववत्

लाखों कामी पिट चुके, परनारके परसंगसे । मुनिराज सब कहा, परनारके परसंगसे ॥ टेर ॥ दीपककी लौ रूप पड़ पतंग मरता है सही । ऐसे कामी कट मरे, परनारके परसंगसे ॥ १ ॥ पर नारका जो हुस्न है मानो आमिक छुयके सा । तन धन सब को हामते, परनार के परसंगसे ॥ २ ॥ झूठे निवाल पर ललचाना, इन्सानको लाजिम नहीं । मुजाह गर्मीसे सड़े, परनारके परसंगसे ॥ ३ ॥ ताजीरात सरकारी कानूनमें, लिखा दफा । सजा हाकिमसे मिले, परनारके परसंगमें ॥ ४ ॥ जैन शास्त्रोंमें मना, मनुस्मृति देखलो कुरान बाइबलमें लिखा परनारके परसंगमें ॥ ५ ॥ रावण कीचक मार गए, द्रौपदी सीताके वास्ते । भवीरथ मर नरक गया, परनारके परसंगसे ॥ ६ ॥ अहर बुरी तलवारसे अबन मुस्लिम बद कारन । हजरत अलीपर बहानेकी परनारके परसंगसे ॥ ७ ॥ कृष्णका कुत्ता काम्ता, कत्ल नर नर को करे । पलमें मोहब्बत टूटती । परनारके परसंगसे ॥ ८ ॥ किसलिये पैदा हुआ, अय भइया कुछ सोच तू । कहे चौथमल अब सम कर, परनारके परसंगसे ॥ ९ ॥

---

६८ गजल (बद सोबत निषेधपर.)

चाल पूर्ववत्

अगर चाहे आराम तो जाहिलकी सोबत छोडदे । मानले नसीहत मेरी, जाहिलकी सोबत छोडदे ॥ टेर ॥ अगर अक्कमंद है, होशियार जो है तू दिला । भूलके अखत्यार मत कर, जाहिलकी सोबत छोडदे ॥ १ ॥ जाहिलसे मिलता मत रहे, मानिंद शक्कर सीरके । भाग मुआफिक तीरके, जाहिलकी सोबत छोडदे ॥ २ ॥ दुश्मनभी अक्कमंद बेहतर, होवे जाहिल दोस्तके । परहेजगारी है भली, जाहिल की सोबत छोडदे ॥ ३ ॥ फैलबद के जाहिलोंमें, नेकी तो मिलती नही । सिवा कोलबदके नहीं सुने, जाहिल की सोबत छोड़दे ॥ ४ ॥ रहम दिलका पाकपन, इबादतभी तर्क हो । ईमानभी जावे बिगड जाहिलकी सोबत छोडदे ॥ ५ ॥ जाहिल तो आखिर ए दिला, दोजखके अन्दर जायगा । नेक आकबत कम बने, जाहिलकी सोबत छोडदे ॥ ६ ॥ नशा पीना जुल्म करना, लडना लेना नींदका । गरूर आदत जाहिलोंकी, जाहिलकी सोबत छोडदे ॥ ७ ॥ जाहिलपनकी दवा मियां, लुकमानके घरमें नहीं । सिविल सर्जनके हाथ क्या, जाहिलकी सोबत छोड़दे ॥ ८ ॥ गुरुके प्रसादसे कहे चोथमल तूं कर निगाह । आलिमकी सोबत कर सदा, जाहिलकी सोबत छोडदे ॥ ९ ॥

६९ गजल [कुसप] फूट निषेधपर

चाल पूर्ववत्

लाखों घर गारत हुए, इस फूटके परतापसे। सभ्य गया इस देशसे, इस फूटके परतापसे ॥ टेर ॥ हुक्म हुनर इमान इज्जत, हमदर्दी सब कर विदा। हिंसक पूर्ण फलभा पन, इस फूटके परतापसे ॥ १ ॥ जहां सम्प वहां सम्पत्ति, जहां फूट वहां सम्प कहां। अजब लीला होगई इस फूटके परतापसे ॥ २ ॥ मोहताज दौलतमन्द हुए कइ राज्य राजोंका गया। इण्डिया बरबाद हुआ, इस फूटके परतापसे ॥ ३ ॥ पड़ी फूट ग्रामपक घर, भाई भिन्नभिन्न जुदा हुआ। स्वार्थ राक्षस होगये इस फूटके परतापसे ॥ ४ ॥ भाई कौरव पांडवोंमें, युद्ध कराया फूटने। महल कुंवर कौशिक छोड़े इस फूटके परतापसे ॥ ५ ॥ पृथ्वीराज चौहान जयचन्द के लड़ाई हो गई। था राज्य यवनोंने लिया, इस फूटके परतापसे ॥ ६ ॥ फूट जातिमें घुसी लूट दुश्मन दी मचा टूट गये सब कायदे, इस फूटके परताप से ॥ ७ ॥ सम्पमें जो फायदे, सब जानते इन्सान हैं। मगर खुदगर्ज नहीं मिटे, इस फूटके परतापसे ॥ ८ ॥ एक दूसरे मिला तो आंख होता है गरम। आपस में राय लेते नहीं, इस फूटके परतापसे ॥ ९ ॥ सब मुल्कोंका भी सिरताज, भारत होगा फिर। अब अजाजों याद आया, फूटके परतापसे ॥ १० ॥ मायमल कहे नव जवानो, सम्प अभ्यास करो। धन धमकी कर रहा हो, इस फूटके परतापसे ॥ ११ ॥

७० गजल खामोशपर,

चाल पूर्ववत्

महावीरका फरमान है, खामोश बेहत्तर चीज है। दिल पाक रखनेके लिये खामोश बेहत्तर चीज है ॥ टेर ॥ शांति कहो चाहे क्षमा, और गम भी इसका नाम है। दोस्त जहा तेग बने, खामोश बेहत्तर चीज है ॥ १ ॥ जोश खाके बिजली दरियावके अदर पडी, नुकसान कुछ होता नहीं, खामोश बेहत्तर चीज है ॥२॥ खामोश खजर देखकर, दुश्मनकी ताकत न चले। बिन काष्टके पावक जैसे, खामोश बेहत्तर चीज है ॥३॥ तपमें ऋषि युद्धमें हरी, श्रेष्ठ वैश्रमण दानमें। अरिहंतोंकी यह वीरता, खामोश बेहत्तर चीज है ॥ ४ ॥ खामोश कर श्रीरामने, वनवास का रास्तालिया। गजसुकमालने केवल लिया, खामोश बेहत्तर चीज है ॥ ५ ॥ खामोशसे राजा परदेशी, स्वर्गके अन्दर गया। खंधक मुनि मुक्ति गये, खामोश बेहत्तर चीज है ॥ ६ ॥ ज्ञान ध्यान तप दया, और सर्व गुणोकी खान है। तारीफ फैले मुल्कमें, खामोश बेहत्तर चीज है ॥ ७ ॥ पाप होवे भस्म जैसे, शीतसे सब्जी जले। चौथमल कहे ए दिला खामोश बेहत्तर चीज है ॥ ८ ॥

---

७१ गजल उपदेशपर.

आकबतके वास्ते कहना हमारा फर्ज है। मर्जी तुम्हारी मानना, कहना हमारा फर्ज है ॥ टेर ॥ मुसाफिर खानेमें आके

गरूर करना छाडदे । नेकी करले ऐ सनम कहना हमारा फर्ज है ॥ २ ॥ किसका मसीला है यहां, दिलमें जरा तू गौर कर । तू यादमें उसके रहे, कहना हमारा फर्ज है ॥ ३ ॥ भदम करले ए बशोंका, अहसानकर कोई और पर । रहम दिलमें ला जरा, कहना हमारा फर्ज है ॥ ४ ॥ देता नसीहत बांथमल, करले इबादत चित्रस । चार दिनका कुरन है, कहना हमारा फर्ज है ॥५॥

मराठी भाषाके कुछ पद

७२ प्रभुस्तुति

आधी नमितो मी आदिनाथ जिनेश्वर राया लोका मद मत्सरता मोम आणि ही माया ॥ प्रभुमाठीं झिजवा तनु आपुलीकाया ॥ नका सार्ड् व्यास मनाचा, तुम्ही, तो तारी हो । आधी० ॥ १ ॥ काय करोंस जन्मुनि पापा । या संसारा सर्व खोटा प्रपंच मायाचा हा पसारा ॥ बसा स्वमासमध्ये मिळल राज्य फारमारा, जागे हाउनि पाहतां कोठे नस तो थारा ॥ प्रभुचरणीं ठवा प्रीति, तुम्हा सा तारी हर ॥ आधी० ॥ २ ॥ धमशास्त्रामध्ये प्रम मधा ठवावें, असें सांगल आपल गुरु राम धनावें पापी ढिंगक आकांमधी भिउनि चालावें ॥ प्रभु तुम्हां ता, तारी हा ॥ आधी ॥ ३ ॥ या मांव प्रभुचें नाम नमोदित घ्यावें, हें भजनामृत सर्व जनांनीं प्यावें, हें अहंकारा मूळ दूर टाकावें ॥ प्रभु तुम्हां ता, तारी हो ॥ ४ ॥ नमि रामकृष्ण हा भक्त असे प्रभु माथा, देऊनि सद्बुद्धि नाथ

करी विघ्नाचा, मम हृदयामध्यें वास असो प्रभु साचा, ॥ प्रभु-तुह्मां, तो, तारी हो ॥ आर्धा० ॥ ५ ॥

---

७३ प्रभुस्तुति.

(थोर तुझे उपकार आई थोर० इस चालमे)

देव जिनेश्वर हो, वंदूं देव जिनेश्वर हो ॥ टेर ॥
देव जिनेश्वर, तो परमेश्वर, सकलां सुखकर हो ॥ १ ॥ हरि-हर ब्रह्मादिक तुज सारे, नमितो सुरेश्वर हो ॥ २ ॥ गणधर मुनिवर सेवति नित्यही, ध्यान निरंतर हो ॥ ३ ॥ बालदास प्रभु नमुनि मांगतो, तोडि भवांतर हो ॥ देव० ॥ ४ ॥

---

७४ हितोपदेश.

[वनजाराकी चालमे.]

सोड मना अविचारा, धरी सारासार विचारा ॥ टेर ॥
दुर्बुद्धि महा विपरीत, सवे क्रोधादिक अघटीत ॥ देतील दुःख अनिवारा ॥ धरी० ॥ सद्बुद्धि जगीं उत्तम, करी विवेकावरी प्रेम ॥ सुख शांति तया आधारा ॥ धरी० ॥ २ ॥ घे निवडुन सारें सार, जिन नाम सत्य आधार, करी बालदास निरधारा॥ धरी० ॥ ३ ॥

---

७५ हितोपदेश

[चाल माट मधुनिनवा शारद, इस चालमें]

दुर्मिळ नरजन्म असा लाभुनि नरा, हाय तुवां विफल असा दवडिला नरा ॥ टेर ॥

गेला किती सांग ईश चिंतनीं ? ध्येय कवण ठविलेंस सांग निज मनीं; धर्मासि काय मिळविण्यास दिवस यामिनी, भोगा विण काय अन्य देखि उत्तरा ॥ दुर्मिळ० ॥ १ ॥ दंग किंवा क्षणभंगुर वैभवार्जनीं, डोळे क्षण नच रमा काम सेवनीं, अविचार घोर काय, असे सांग पाहुनी, मानुनि केवि सुखा प्राप्ति मी नरा ॥ दुर्मिळ०॥ २ ॥ भोग नव्हे रोग घोर दश्री आपदा सोडुनि हे चि, चित्तीं ठवा जिनपदा, मग्नी जो थिर सुखदा मोक्ष संपदा, दत्तात्रय वंदि तया सुचि गुणाकरा ॥ ४ ॥

---

७६ हितशिक्षा

(कव्वालीके चालम)

सुख मान विरसे रुद्रतु सोची संगति धरू नका, नरदेहाला यउनि प्राण्या ! दुष्ट वासा धरू नको ॥ टेर ॥

भंगी धर्मी मटकी सटकी यांच्या संगतीं बसू नका, विकट वाट वहिवाट नमाची धोपट मार्गा सोडू नका संसारा मधीं पस आपुला टगाप भटकस फिरू नका परधन परनार मांस पाहुनि चित्त भ्रमू हे देऊ नको आणि नम्रता सदा असावी,

राग कोणावर-धरूं कनां, नास्तिकपणांत शिरुनि जनाचा बोल आपणा घेउं नको. भले भलाई कर कांही पण अधर्ममार्गी शिरूं नको ॥

[चाल] माय बापावर रुसूं नको, दूर एकला बसूं नको, व्यवहरामधिं फसूं नको, कधीं रिकामा असूं नको, ॥ नर दे० ॥ १ ॥ वर्म काढूनि शरमायाला उणे कोणाला बोलूं नको, बुडवाया दुसऱ्याचा धंधा करुनि हेवा भटूं नको, मी, मोठा शहाणा, धनाढ्यहि, गर्व भार हा वाहूं नको, एकाहुनि एकचढी जगा मधिं, थोर पणाला मिरवु नको, हिमायतीच्या बळें गरिब गुरिबाला तूं घुरकाउं नको, दो दिवसाची जाइल सत्ता अपयश माथा घेउं नको, बहुत कर्ज बाजार होउनि, बोज आपला दवडूं नको, स्नेहासाठीं पदरमोडकर परंतु जामिन होउं नको ॥

[चाल] विडा पैजाचा उचलूं नको, उणी तराजू तोलूं नको, गहाण कोणाचा डुबवूं नको, असल्यावर भीख मागूं नको, नसल्यावर सांगणें कशाला गांव तुझा भिड धरूं नको ॥ नर दे० ॥ २ ॥ उगीच निंदा स्तुति कोणाची, स्वहिता साठीं करूं नको, वरी खुशामत शहाण्याचीही, मूर्खाची ती मैत्री नको, कष्टाची बरि भाकरी, तुपसाखरेची चोरी नको, आल्या अतिथि मुठभर द्यावा, मागेंपुढें पाहुं नको, दिली स्थिति देवानें तींतचि मानी सुख कधिं विटूं नको, असल्या गांठी धन संचयकर, सत्कार्या व्यय हटूं नको, आतां तुझेंही गोष्ट सांगतों, सत्कार्या ओसरूं नको, सत्कीर्ति नौबतीचा डंका गाजे मग शंकाच नको ॥

[चाल] सुविचारा फांटरू नको सत्संगत अंतरूं नको, दैवाला अनुसरू नको, प्रभु भजना विसरूं नको, ग वयाम मनव फंदीचे फटके मागें पुढें सरू नको ॥ नर देहा० ॥ ३ ॥

---

७७ हितोपदेश

(भाव पाप मद मत्सर मानिन्मना, इस चालमें)

कष्ट देता फार दृढ विषय वासना, द्रव्य पुत्र, मू, कलत्र सब यातना ॥ टेक ॥

पाहें कष्ट होति किती या धनार्जना रात्र दिवस फार सोच द्रव्य रक्षणा, नष्ट जाहल्याहि कष्ट तेंचि द मना, आदि मध्य दुःख अंत ही धनपणा ॥ कष्ट० ॥ १ ॥ हाड, मांस स्नायु रक्त, यांचि बनविली प्रायशः कि चालित जाण पंचभूतली, मूढ नरें तींच सुन्दर पुतळि मानिली तीस म्हणत चंद्रमुखी हरिण लोचना ॥ २ ॥ स्त्रिय होति आइ बाप वंश न आहला, जन्मल्यावरीहि दुःख दृढ स्नेहासा, रोग युक्त व्यसन मस्त मृत्यु आहला, पुन जन्म दुःख हाइ बघ किती असा ॥ कष्ट० ॥ ३ ॥ नाग मस्त फण रसाला पसरली साउली, मूषकांनी जगे मुग्ध घाट लागली, प्राण हारि होय क्षीण तरि नच्छ मती न ग विषय सुख होइ न मना ॥ ४ ॥ हाट पाहुनि मा स पान मागत, वेरि जाण प्राण होय विषयसुख ते

जेवली सुख असूनि चित्त दूर धांवतें, सांगतसे कृष्णसूत निज सुहृज्जना ॥ कष्ट० ॥ ५ ॥

---

७८ जंबूजीका स्तवन.

[जिल्लाकी चालमें]

जंबू कहे मानले रे जाया ! मत ले संयम भार ॥ टेर ॥
राजगृही ना वासियाजी, जंबू नाम कुमार ॥ ऋषभदत्तनाडा कराजी, भद्रा मात उदार ॥ जंबू० ॥ १ ॥ सुधर्मा स्वामि पधारियाजी, राजगृही के मांय ॥ कोणिक वंदन चालियोजी, जंबू वंदनने जाय ॥ जंबू० ॥ २ भगवत वाणी वागरीजी, वरषे अमृतधार ॥ वाणी सुण वैरागियाजी, जाण्यो अथिर संसार ॥ ॥ ३ ॥ घर आई माता कनेजी, वांदें वारंवार ॥ आज्ञा दो मोरी माताजीरे, लेवूं संयम भार ॥ ४ ॥ ए आठों-ही कामणीरे जंबू, अपछरने उणिहार ॥ परणीने किम परिहरो जंबू, किणविध निकले जमवार ॥ ५ ॥ ए आठोंही कामणीरे जाया, तुझ विन विलखी थाय ॥ रमिया ठमिया विन नहींरे जाया, यांरो वदन कमल कुमलाय ॥ ६ ॥ मतिहीणो कोई मानवी ए माता, मिथ्या मति भरपूर ॥ रूप रमणी सूं राचतां ए माता, होवे सुरगति दूर ॥ ७ ॥

माता म्हारी सांभलो ए जननी, लेवूं संयम भार ॥ टेर ॥
पाल पोस मोटो कियो जंबू, इम किम दो छिटकाय ॥
मात पिता मेलो जीवतां जंबू, थाने दया नहीं आवे काय.

लाख चौरासी योनिना ए माता, जीव कह्या छ अनेक ॥ ८ ॥
मनुष्यगति दया पालजू ए माता, आणी चित्त विवेक ॥ ९ ॥
ज्यूं ओवाने लोकदा र आया, तू मुझ प्राण आधार ॥
तुम विन म्हारो कुल सूना रे, आया, जननी गे राख जमार ॥ १० ॥
रत्नजडितका पिंजरा ए माता, सूवा तो जाण फंद ॥
काम भोग संसारना ए माता ज्ञानी बताया भूटा फंद ॥ ११ ॥
पांच महाव्रत पालना रे आया, मेरू जितनो भार ॥
दोष बयालीस टालनरे आया लेणा सूझतो आहार ॥ १२ ॥
पंचमहाव्रत पालसूं र माता चलसूं खांडनी धार ॥
दोष बयालीस टालडूं ए माता, लेसूं सूझतो आहार ॥ १३ ॥
संयम मारग चालेगो र जंबू, करणो उग्र विहार ॥
विण अपराध मारणार जंबू, नहीं ह सुख लिगार ॥ १४ ॥
चन्द्र विना किसी चांदनी र आया तारा विन रात ज्यों अंधार ॥
कंत विना किसी कामिणीरे आया, झूर वारंवार ॥ १५ ॥
मात पिता मेल्यो मिल्यो माता मिलियो अनंती वार ॥
तारण समरथ का नहीं, ए माता, पुत्र पोता परिवार ॥ १६ ॥
दीपक विना मन्दिर कामा र जंबू पुत्र विना परिवार ॥
धीर विना किसी धनधीर जंबू झूरे नार तिवार ॥ १७ ॥
माहमती करो मोरी मातजी ए माता मोह किया बंधे कर्म ॥
श्रावक मताय इम बयू करा ए माता करो जिनआग धर्म ॥ १८ ॥
ए आठोंही कामणी र आया, सुण मिलमा मणार ॥
प्रभात थक पाछी पछ्याग जंबू लीजो संयम भार ॥ १९ ॥
ए आठोंहा कामणीर माता, समझाई करा एक राम ॥
जिनजीरा धर्म आराध्या ए माता संयम लसां धार माथ ॥ २० ॥

मात पिताने तारियारे, जंबू, तारी छे आठोंही नार, सासू सु-
सराने तारीया रेजंबू. ताऱ्या प्रभव आदि परिवार ॥ २१ ॥
जंबू भला चेतियारे, जाया भल लीधो संयम भार ॥ टेर ॥
पांचसौ सत्ताईस जणासूं जंबू, लीधो संयम भार ॥ ग्यारह
जीव मुक्ते गया जंबू, वर्त्या जयजयकार ॥ जंबू०॥ २२ ॥

---

७९ नेमिनाथजीकी जान.

(लावणी चालमें.)

नेमजीकी जानवनी भारी, देखनको आवे नरनारी ॥ टेर ॥
बहुतसे घोडे और हाथी, मनुष्यकी गिनती नहीं आती ॥
ऊँटपर ध्वजा जो फरीती, धमकसे धरती थरीती ॥
समुद्र विजयजीके लाडले, नेम कुवरजी नाम ॥
राजलदेको आये परनवा, उग्रसेनके धाम ॥
प्रसन्न भई नगरी सब सारी, ॥ नेमजीकी० ॥ १ ॥
कसूंबल वागा अतिभारी, कानमें कुंडल छवि न्यारी ॥
किलंगी तुर्रा, सुखकारी । माल, गल मोतियनकी डारी ॥
काने कुंडल झिगमिगे, शीश मुकुट सुखकार ॥
करोड भानुकी वनी ओपमा, शोभा-अधिक-अपार ॥
वाजरहे बाजे टकसारी ॥ नेमजीकी० ॥ २ ॥
छूटे रहे होका सरनाई, व्याहमें आये बडे भाई ॥
झरोखे राजल दे आई, जानको देखत सुखपाई ॥
उग्रसेनजी देखके, मनमें करे विचार ॥
बहुत जीवको करी एकठा, वाडा भऱ्या अपार ॥

करी सब भोजनकी त्यारी ॥ नेमजीकी० ॥ ३ ॥

नेमजी तोरणपर आये, पशु जीव सबही कुरलाये ॥
नेमजी वचन यह फरमाये, पशुजीव काहेको लाये ॥
इनको भोजन होयगा, जान वास्ते येह ॥
यह वचन सुन नेमजी, थरहर कंपी देह ॥
भावसे चढगये गिरनारी ॥ नेमजीकी० ॥ ४ ॥

पीछेसे राजल द आई, हाथ फिर पकड्यो हे माई ॥
कहाँ तू जाय मोरी जाई और वरहूँ सुखदाई ॥
मर तो वर एकही, होगये नेम कुमार ॥
और वर वांछूं नहीं करोड करो उपचार ॥
दीक्षा फिर राजुलने धारी ॥ नेमजीकी ॥ ५ ॥

महली सबही समझावे, हिये राजलके नहीं मावे ॥
जगत सब झूठो दरसावे, मेरे मन नेमकवर भावे ॥
ताख्या कंकण डोरडा, ताख्यो नवसर हार ॥
काजल टीकी पानसुपारी, छाड्यो सब सिणगार ॥
करी अब संयमकी त्यारी ॥ नेमजीकी ॥ ६ ॥

तज्या सब सोल सिणगारा, आभूषण रत्नजडित सारा ॥
लग मोहे सबही दुसखारा छोडकर चली सब परिवारा ॥
मात पिता परिवारको तजतां न लागी वार ॥
रहनेमा समझायके जाय चढी गिरनार ॥
मूरती छोडी सा प्यारी ॥ नेमजीकी० ॥ ७ ॥

दया दिल पशुवनकी आई त्याग अब कीनो छिनमांही ॥
सिद्धगिरनार आई पशुके बंधन छुडवाई ॥

नेम, राजल गिरनारपे, कीनो अविचल ध्यान ॥
'नवलमल' यह करी लावणी, उपनो केवल ज्ञान ॥
जिन्होंकी-क्रिया शुद्ध-सारी ॥ नेमजीकी० ॥ ८ ॥

---

८० पार्श्वजिन स्तवन.

(तावड़ा धीमो पड़जारे, इस गीतकी चालमें).

काज सिद्ध करदो मेरारे, तेवीसमा, जिनराज, काज सिद्ध करदो मेरारे ॥ टेर ॥

काशी देश बणारसी नगरी, अश्वसेन तिहांराय ॥ वामा राणी है गुण खानी, जिनके कूंखे आय ॥ लिया है जन्म शुभ वेलारे ॥ तेवीसमा० ॥ १ ॥ मात पिता मन हरखिया सरे पाम्या सुख सवाय ॥ इन्द्रादिक मिल महोत्सव कीनों, मेरु पर्वत ले जाय ॥ गावतां गीत घनेरारे ॥ तेवीसमा० ॥ २ ॥ एक दिवस गंगाजीपे आया, माताजीके लार ॥ नाग नागणी जलतां देख्या, तापसके दरबार ॥ लोक बहु हो रह्या भेलारे ॥ तेवीसमा० ॥ ३ ॥ कोण नाग जलता लकडमें, हमको आंख दिखाय ॥ तब प्रभु लकड फोड बताया, देखे दुनियां आय॥ वृथा है तपना तेरारे ॥ तेवीसमा० ॥ ४ ॥ नाग नागिणी बाहिर काढ्या, मेल्या स्वर्ग मझार ॥ धरणेन्द्र पद्मावती हुआ, सुण्यो मंत्र नवकार ॥ उठालिया तापस डेरारे ॥ तेवीसमा० ॥ ५ ॥ कमठमर हुआ मेघमाली, प्रभुजी हुए अणगार ॥ मेह वरषायो प्रभु नहीं चलिया, रचियो फंद अपार ॥ कमठ मन हुआ अचंभेरारे ॥ तेवीसमा० ॥ ६ ॥ धरणेंद्र पद्मावती आया

करी सब भोजनकी त्यारी ॥ नमजीकी० ॥ ३ ॥
नेमजी तोरणपर आये, पशु जीव सबही कुरलाय ॥
नमजी वचन यह फरमाय, पशुजीव काहेका लाये ॥
इनको भोजन होयगा, जान वास्ते येह ॥
यह वचन सुन नेमजी, व्यवहार कर्यो देह ॥
भावसे चढगये गिरनारी ॥ नेमजीकी० ॥ ४ ॥
पीछेसे राजल द आई, हाथ फिर पकड्या है माई ॥
कहां तू जाय मोरी जाई और वरहूं सुखदाई ॥
मर तो वर एकही, होगये नेम कुमार ॥
और वर वोर्‌यु नहीं करवा करम उपचार ॥
दीक्षा फिर राजुलने धारी ॥ नमजीकी० ॥ ५ ॥
महली सबही समझाय, फिर राजलके नहीं भाव ॥
जगत सब झूठो दरसाव, मरे मन नेमकवर भाव ॥
तोड्या ककण डोरडा, तोड्या नवसर हार ॥
काजल टीकी पानसुपारी, छोड्या सब सिणगार ॥
करी अब संयमकी त्यारी ॥ नेमजीकी ॥ ६ ॥
तज्या सब सोल सिणगारा, आभूषण रत्नजडित सारा ॥
लग मोहे सबही सुखकारा छोडकर चली सब परिवारा ॥
मात पिता परिवारको, तजतां न लागी वार ॥
रहनेमी समझायके आप चढी गिरनार ॥
मूरती मोठी मा प्यारी ॥ नेमजीकी० ॥ ७ ॥
दया दिल पशुवनकी आई त्याग अब कीनो छिनमांही ॥
नमिजिनगिरनारे आई, पशुके बंधन छुडवाई ॥

नेम, राजल गिरनारपे, कीनो अविचल ध्यान ॥
'नवलमल' यह करी लावणी, उपनो केवल ज्ञान ॥
जिन्होंकी–क्रिया बुद्ध–सारी ॥ नेमजीकीं० ॥ ८ ॥

---

८० पार्श्वजिन स्तवन.

(तावड़ा धीमो पड़ाजारे, इस गीतकी चालमें)

काज सिद्ध करदो मेरारे, तेवीसमा, जिनराज, काज सिद्ध करदो मेरारे ॥ टेर ॥

काशी देश वणारसी नगरी, अश्वसेन तिहांराय ॥ वामा राणी है गुण खानी, जिनके कूंखे आय ॥ लिया है जन्म शुभ वेलारे ॥ तेवीसमा० ॥ १ ॥ मात पिता मन हरखिया सरे पाम्या सुख सवाय ॥ इन्द्रादिक मिल महोत्सव कीनों, मेरु पर्वत ले जाय ॥ गावतां गीत घनेरारे ॥ तेवीसमा० ॥ २ ॥ एक दिवस गंगाजीपे आया, माताजीके लार ॥ नाग नागणी जलतां देख्या, तापसके दरबार ॥ लोक बहु हो रह्या भेलारे ॥ तेवीसमा० ॥ ३ ॥ कोण नाग जलता लक्कड़में, हमको आंख दिखाय ॥ तब प्रभु लक्कड फोड वताया, देखे दुनियां आय ॥ वृथा है तपना तेरारे ॥ तेवीसमा० ॥ ४ ॥ नाग नागिणी बाहिर काढ्या, मेल्या स्वर्ग मझार ॥ धरणेन्द्र पद्मावती हुआ, सुण्यो मंत्र नवकार ॥ उठालिया तापस डेरारे ॥ तेवीसमा० ॥ ५ ॥ कमठमर हुआ मेघमाली, प्रभुजी हुए अणगार ॥ मेह बरषायो प्रभु नहीं चलिया, रचियो फंद अपार ॥ कमठ मन हुआ अचेरारे ॥ तेवीसमा० ॥ ६ ॥ धरणेंद्र पद्मावती आया

आमण अधर उठाय ॥ उपसर्ग टारयो प्रभुजीका, माया जिम दिश जाय ॥ गावता गुण प्रभुकेरारे ॥ सेवीसमा० ॥ ७ ॥ पार्श्व कवल पामिया सरे, सीरथ थाप्या च्यार ॥ साधु साध्वी भावक भाविका, इणमें फरक न लिगार ॥ जगतमें किया उद्धार, ॥ सेवीसमा० ॥ ८ ॥ नाग नागिणी तिम तुम तान्या, तिम प्रभु हमको तार ॥ हिमतरामसुत कनी रामकी, अर्जी सा भवभार मिटादो भव भव केरारे ॥ सेवीसमा० ॥ ९ ॥

---

८१ दशारणभद्रराजा स्तवन

('कांकणीका केलडे,')

वीर जिन वंदन को चाल्या, दशारण भद्र बडेरायां ॥ टेर ॥
पधान्या वीर जिणंद भारी, दशारण नंगरीके मांरी ॥
मुनीश्वर चौदे सहस्र लारी, अर्जिका छत्तीस हजारी ॥
समवशरण देवां रच्यो, बैठा श्री जिनराज ॥
इन्द्र इन्द्राणी सेवाकरे, पाम्या हर्ष उल्लास ॥ वीर० ॥१॥
सुवर राजेन्द्र मणी लागी, वीर जिन आय उतन्या बागी ॥
आवंणो दर्शनके कामे करूं सजाई बहु साजे ॥
हाथी, घोडा, रथ पालखी पायदलरो परिवार ॥
भाई, बेटा उमराव, अंतेउर सबको लीधा लार ॥ वीर ॥२॥
अठारह सहस्र गज गाजे घुडला लख चौवीस छाजे ॥
एकवीस सहस्र रथ ओती, पालखी एक सहस्र मोहती ॥
हाथी घूमे घुडला हिसे रथ को झणकार ॥

पायदल मुखके आगले, बोले जयजयकार ॥ वीर० ॥ ३॥
पांचसौ अंतेउर लारे, करत हैं नव नव सिणगारे ॥
पहरिया रत्नजडित गहणा, वाजतां वाजंत्री वयणा ॥
छत्र चामर ढुलावता, चाल्या मध्य बाजार ॥
राय आपको आडम्बर देखी, गर्व कर्यो तिणवार ॥ वी० ४ ॥
स्वर्गसे इन्द्रभी आया, भेटिया श्रीजिनका पाया ॥
ज्ञानसे सर्व बात जाणी, दशारण भद्र बडो मानी ॥
मान उतारण कारणे, इन्द्र दियो आदेश ॥
एक ऐरावत ऐसो लावो, ज्यूं गले गर्व विशेष ॥ ५ ॥
चौसठ सहस्र गज छाजे, गगनबीच ऊभाही गाजे ॥
एकेकको ऐसो रूप आयो, सुणतां आश्चर्य पायो ॥
एक एकके मुख पांचसौ, मुख मुखपे आठदन्त ॥
दंत दंत आठ बावड़ी, जिणमें कमल महंत ॥ वीर० ॥ ६ ॥
पांखड़ी लाख लाख ज्यांके, नाटक पडे बत्तीस ताके ॥
इन्द्रको इन्द्रासन सोहे, कर्णिका ऊपर मन मोहे ॥
जिणपर इन्द्र विराजिया, लारे सहु परिवार ॥
दशारण भद्रजी देखके, गर्व गल्यो तिणवार ॥ ७ ॥
चिंतत अपने दिलमांही, बडाई किसविध रहे भाई ॥
इन्द्रसे जीतूं मैं नाहीं, करू उपाय कठा तांई ॥
अवसर देख संयम लियो, दशारण भद्र नरेन्द्र ॥
तुरत आई उतावलो, पगे लाग्यो शक्रेन्द्र ॥ वीर० ॥ ८ ॥
इन्द्र इम मुनिवरसे बोले, नहीं कोई आपतणे तोले ॥
और तो शक्ति घणी म्हारे, देवतो दीक्षा नहीं धारे ॥

धन्यहो मुनिरायजी, तुम राख्यो मान अखंड ॥
वार वार गुण गावता, इंद्र गया गगनके मध्य ॥ ९ ॥

मुनीश्वर संयम शुद्धपाले दाप सह आतमका गाल ॥
मिटाया जन्म मरण फेरा आतमा अटल हुआ डेरा ॥
गुरु देव प्रसादसे, सुणजो भविषण लोक ॥
जो करणी साची करो तो मिलसे शिवपुर थोक ॥ १० ॥

संवत उगणीसो सोहे, साल तेतीसकी मन मोहे ॥
आसोज सुदि पंचम गुरुवारी, गावें हीरालाल हितकारी ॥
दया हाकोतीके विषे, कोटो मोटो शहर ॥
चौमासो कियो रामपुरामें च्यार संतकी लेर ॥ वीर० ॥ ११ ॥

---

८२ डिगरी ।

(ख्यालकी चालमें)

मरी अदालत प्रभुकी कीजिए, जिन शासन नायक, मुक्ति मानेकी डिगरी दीजिए ॥ टेर० ॥

सुद चेतन मुद्दई बना है, आठों कर्म मुद्दाला ॥
'दया' रास्ता मुक्ति मागका धोखा देकर टालाजी ॥ १ ॥
'तप' कागज इस्टांप मंगाया, लेखन क्षमा विचारी ॥
मन्साम ध्यान मजमून बनाकर अर्जी आन गुजारीजी ॥ २ ॥
म जाता था मुक्ति मारगमें, कर्मोंने आ घेरा ॥
भावा देकर गाढ सुलाया, लूटलिया सब डेराजी ॥ ३ ॥
पट्टूत खराब किया कर्मोंने, चौरासीके मांही ॥

दुःख अनंता पाया मैंने, अंतपार कछु नाहीं जी ॥ ४ ॥
सच्चे मिले, वकील कानूनी, पंचमहाव्रतधारी ॥
सूत्र देख मैं सोदा कीना, तब मैं अरजी डारी जी ॥ ५ ॥
पांचों समिति, तीनों गुप्ति, ये आठों गवाह बुलाओ ॥
शील अग्रेसर वडा चौधरी, उनको पूछ मंगाओ जी ॥ १७ ॥
आठ मुद्दाले हाजिर, ऊभे, मोह मुखत्यार बुलाये ॥
चार कषाय और आठों मदको, साथ गवाहमें लायेजी ॥ ८ ॥
हमने नहीं भरमाया इसको, यह मेरे घर आया ॥
करजा लेकर हमसे खाया, ऐसा फरेब रचायाजी ॥ ९ ॥
विषय भोगमें रमिया चेतन, घाटा नफा नहीं जाना ॥
करजदार जब लारे लागे, तब लागा पछताना जी ॥ १० ॥
हाजिर खडे गवाह हमारे, पूछिए हाल जो सारा ॥
बिना लिये करजा चेतनसे, कैसे करें किनाराजी ॥ ११ ॥
चेतन कहे अदालत मांही, सुनो शासन सिरदार ! ॥
इमानदार है गवाह हमारे, जाने सब संसारजी ॥ १२ ॥
मै चैतन अनाथ प्रभुजी, कर्मोंवश हुआ भारे ॥
जीव अनन्ते राह चलतेको, लूट चौरासीमें डारेजी ॥ १३ ॥
घडे वडे पंडित इन लूटे, ऐसा दम बताया ॥
धर्म कहा और पाप कराया, ऐसा करज चढायाजी ॥ १४ ॥
हिंसामांहीं धर्म बताया, तपस्या सेती डिगाया, ॥
इन्द्री सुखमें मगन बनाया, झूठा जाल फैलायाजी ॥ १५ ॥
ऐसा करो इन्साफ प्रभुजी, अपील होने नहीं पावे ॥

धन्यहो मुनिरायजी, तुम राख्यो मान अखंड ॥
वार वार गुण गावतो, इंद्र गया गगनक मध्य ॥ ९ ॥

मुनीश्वर संयम शुद्धपाले दाप सहु आतमका टाले ॥
मिटाया जन्म मरण फेरा आतमा अटल हुआ तेरा ॥
गुरु देव प्रसादसे, सुणजो भवियण लोक ॥
जो करसी साची करो तो मिलसे सगला थोक ॥ १० ॥

संवत उगणीसो सोहे, साल तेतीसकी मन मोहे ॥
आसोज सुदि पंचम गुरुवारी, गावे हीरालाल हितकारी ॥
देश हाडोतीके विषे, कोटो मोटो शहर ॥
चौमासो कियो रामपुरामें प्यार सबकी लेर ॥ धीर० ॥ ११ ॥

---

८२ डिगरी ।

(ख्यालकी चालमें)

मरी अदालत प्रभुजी कीजिए, जिन शासन नायक, मुक्ति जानेकी डिगरी दीजिए ॥ टेर० ॥

सुद चेतन मुद्दई बना है, आठों कर्म मुदायला ॥
दावा ' रास्ता मुक्ति मार्गका धोखा देकर टालाजी ॥ १ ॥
' तप ' कागज इस्टांप मंगाया, लेखन क्षमा विचारी ॥
मन्नाम ध्यान मजमून बनाकर अर्जी आन गुजारीजी ॥ २ ॥
म जाता था मुक्ति मारगमें, कर्मोंने आ घेरा ॥
धोखा देकर राह भुलाया, लूटलिया सब डेराजी ॥ ३ ॥
बहुत खराब किया कर्मोंने, चौरासीके मांही ॥

दुःख अनंता पाया मैंने, अंतपार कछु नाहीं जी ॥ ४ ॥
सच्चे मिले, दकील कानूनी, पंचमहाव्रतधारी ॥
सत्र देख मैं सोदा कीना, तव मैं अरजी डारी जी ॥ ५ ॥
पांचों समिति, तीनों गुप्ति, ये आठों गवाह बुलाओ ॥
शील अग्रेसर वडा चौधरी, उनको पूछ मंगाओ जी ॥ १७ ॥
आठ मुद्दाले हाजिर, ऊभे, मोह मुखत्यार बुलाये ॥
चार कषाय और आठों मदको, साथ गवाहमें लायेजी ॥ ८ ॥
हमने नहीं भरमाया इसको, यह मेरे घर आया ॥
करजा लेकर हमसे खाया, ऐसा फरेब रचायाजी ॥ ९ ॥
विषय भोगमें रमिया चेतन, घाटा नफा नहीं जाना ॥
करजदार जब लारे लागे, तब लागा पछताना जी ॥ १० ॥
हाजिर खडे गवाह हमारे, पूछिए हाल जो सारा ॥
विना लिये करजा चेतनसे, कैसे करें किनाराजी ॥ ११ ॥
चेतन कहे अदालत मांही, सुनो शासन सिरदार ॥
इमानदार है गवाह हमारे, जाने सब संसारजी ॥ १२ ॥
मै चेतन अनाथ प्रभुजी, कर्मोवश हुआ भारे ॥
जीव अनन्ते राह चलतेको, लूट चौरासीमें डारेजी ॥ १३ ॥
बडे वडे पंडित इन लूटे, ऐसा दम बताया ॥
धर्म कहा और पाप कराया, ऐसा करज चढायाजी ॥ १४ ॥
हिंसामांहीं धर्म बताया, तपस्या सेती डिगाया, ॥
इन्द्री सुखमें मगन बनाया, झूठा जाल फैलायाजी ॥ १५ ॥
ऐसा करो इन्साफ प्रभुजी, अपील होने नहीं पावे ॥

हलुकर्मी चेतन हो जावे, जन्म मरण मिटजावेजी ॥ १६ ॥
ज्ञान दर्शन करी मुन्सफी, दोनोंको समझाया ॥
चेतनकी डिगरी करदीनी,-कर्मोंका करज बतायाजी ॥ १७ ॥
असल करज जो था कर्मोंका, चेतन सेती दिलाया ॥
ध्रुव संयम जब कीनी जमानत, आगेका दुःख मिटायाजी १८
आश्रव छाड सम्बरको धारा तपस्यामें चित्त लावे ॥
सर्व्वी करज अदा कर चेतन, सीधा मुक्तिमें आवेजी ॥ २० ॥
शुद्ध संयम जब बना जमानत, चेतन डिगरी पाई ॥
फागण सुदि दशमी दिन मंगल, उगणीसौ आठामांई जी ॥ २०

श्री पार्श्वनाथ स्वामीका-छंद

[तोटक वृत्त]

जय जय जग नायक पार्श्वजिनं। प्रणताखिल मानव देव गणं ॥ जिन शासन मंडन पार्श्व जयो सुख दर्शन देख आनंद भयो ॥ १ ॥ अश्वसेन कुलांबर भानुनिभं नव हस्त शरीर हरित प्रतिमं, धरणेन्द्र सुसेवित पादयुगं, सुरासुर कांति सदा सुभगं ॥ २ ॥ निज रूप-विनिर्जित रंभ पति, वदना द्युति शारद सोम्यमति ॥ नयनांबुज दिस विशालवरा, तिलकुसुम भिभिम नासा प्रवरा ॥ ३ ॥ रसनामृतकंद समान सदा, दशनावलि अनार कलि सुखदा ॥ अधराज्य विद्रुम रंग धन जय पुरुषादाणी पार्श्वजिनं ॥ ४ ॥ अतिचारु मुकुट

मस्तक दीपे काने कुंडल रवि शशि जीपे ॥ तुझ महिमा महि मंडळ गाजे, नित पंच शब्द वाजा वाजे ॥ ५ ॥ सुर किन्नर विद्याधर आवे, नर नारी तोरा गुण गावे ॥ तुझने सेवे चोसठ इंद्र सदा, तुझ नामे नावे कष्ट कदा ॥ ६ ॥ जे सेवे तुझने भाव घणे नव निधि थाय घर तेह तणे ॥ अड्वडिआ तूं आधार कह्यो, समरथ साहिब में आज लह्यो ॥ ७ ॥ दुखियाने सुख-दायक तूं दाखे, अशरणने शरणे तूं राखे ॥ तुम नामे संकट विकट टळे, विछडिया व्हाला आय मिळे ॥ ८ ॥ नटचिट लंपट दूरे नासे, तुझ नामें चोर चुगल त्रासे ॥ रण राऊल जय तुझ नाम थकी सघळे आगळ तुझ सेव थकी ॥ ९ ॥ यक्ष राक्षस किन्नर सवी उरगा, करी केसरी दावानळ विहगा ॥ वध बंधन भय सघळा जावे, जे एकमने तुझने ध्यावे ॥ १० ॥ भूत प्रेत पिशाच छळी न सके, जगदीश तवा भिध जाप थके ॥ महोटा जोटींग रहे दूरे, दैत्यादिकना तूं मद चूरे ॥ ११ ॥ डायणि सायणि जाय हटकी, भगवंत थाय तुझ भजन थकी ॥ कपटी तुझ नाम लिया कंपे, दुरजन मुखथी जीजी जंपे ॥ १२ ॥ मानी मच्छराळा मुह मोडे, ते पण आगळथी कर-जोडे ॥ दुरमुख दुष्टादिक तूंही दमे, तुझ नामे म्होटा मलेच्छ नमे ॥ १३ ॥ तुझ नामें माने नृप सघळा, तुझ जश उज्वळ जिम चंद्रकळा ॥ तुझ नामे पामे ऋद्धि घणी, जय जय जगदी-श्वर त्रिजगधणी ॥ १४ ॥ चिंतामणि काम सवी पासे, हय गय रथ पायक तुझ नामें ॥ जनपद ठकुराई तूं आपे, दुर्जन जननां द्रारिद्र कापे ॥ १५ ॥ निर्धनने तूं धनवान् करे, तूं तूंठयो कोठार भंडार भरे ॥ घर पुत्र कलत्र परिवार घणो, ते सहु

हलुकर्मी चेतन हो जावे, जन्म मरण मिटजावेजी ॥ १६ ॥
ज्ञान दर्शन करो मुनसफो, दोनोंको समझाया ॥
चेतन्को डिगरी करदीनी, कर्मोंका करज बताया जी ॥ १७ ॥
असल करज जो था कर्मोका, चेतन सेती दिलाया ॥
शुद्ध संयम जब कीनी अमानत, आगेका दुःख मिटायाजी १८
आश्रव छोड सम्वरको धारो, तपस्यामें चित्त लावो ॥
जल्दी करज अदा कर चेतन, सीधा मुक्तिमें जावोजी ॥ २० ॥
शुद्ध संयम जब बना अमानत, चेतन डिगरी पाई ॥
फागण सुदि दशमी दिन मंगल, उगणीसौ आठामांई जी॥२

श्री पार्श्वनाथ स्वामीका छंद

[तोटक वृत्त]

जय जय जग नायक पार्श्वजिनं, प्रणताखिल मानव देव गणं ॥ जिन शासन मंडन पार्श्व जयो तुम दर्श देख आनंद भयो ॥ १ ॥ अश्वसेन कुलांबर भानुनिभं नव हस्त शरीर हरित प्रतिभं, धरणेन्द्र सुसेवित पादयुगं, मर मासुर कांति सदा सुभगं ॥ २ ॥ निज रूप–विनिर्जित रंभ पति, मदनो धुति नारद साम्यमति ॥ नयनांबुज दित विशालतरा, तिलकुसुम सन्निभ नासा प्रवरा ॥ ३ ॥ रसनामृतकंद समान सदा, दशनावलि आकार कलि सुखदा ॥ अधराहण विद्रुम रंग घनं जय पुरुषादाणी पार्श्वजिनं ॥ ४ ॥ अतिचारु मुकुट

हित कामी ॥ २७ ॥ करुणाकर ठाकुर तूं म्हारो, निशिवासर नाम जपूं थारो ॥ सेवक सूं परम कृपा करजो, वालेशर वंछित फळ देज्यो ॥ २८ ॥ जिनराज सदा तूं जयकारी, तुम्ह मूर्ति अति मोहनगारी ॥ मुगत महल में तूं राजे, त्रिभुवन ठकुराइ तुझ छाजे ॥ २९ ॥ इम भाव भले जिनवर गायो, वामा सुत देखी बहु सुख पायो ॥ रवि शशि मुनि संवत्सर रंगे, जय देव सूरिमां ही सुख रंगे ॥३०॥ जय पुरुपादाणी पार्श्व प्रभो, सकलार्थ समिहित देहि विभो ॥ बुध हर्ष रुचि विजयाय मुदा, तव लब्धि रुचि सुख थाय सदा ॥ ३१ ॥

---

८३ श्रीपार्श्वनाथ स्वामीका छंद.

आपणे घर बेठां लील करो, निज पुत्र कलत्र सूं प्रेम धरो ॥ तुमे देश देशांतर कांई दोडो, नित्यपास जपो श्री जिन रूडो ॥ १ ॥ मनवंछित सघळां काज सरे, शिर ऊपर छत्र चामर ढले, कलमल आगळ चाले घोडो ॥ नित्य० ॥ २ ॥ भूत प्रेत दैत्य पिशाच बळी, सायणि ने डायणि जाय टळी ॥ छळ छिद्र न कोई लागे जोरो ॥ नित्य० ॥ ३ ॥ एकांतर ताव सियोदाहु, ओषध विण जाये क्षण मांहु ॥ नवि दूखे मांथुं पग गोडो ॥ नि० ॥ ४ ॥ कंठ माळ गड गुंबड सघळा, तस उदर रोग टळे सगळा ॥ पीडा न करे फिन गळ फोडो ॥नि० ॥ ५ ॥ जागतो तिर्थंकर पास पहु, एम जाणे सघळो जगत सहु ॥ ततक्षण अशुभ कर्म तोडो ॥ नित्य० ॥ ६ ॥ पास

महिमा तुम नाम तणो ॥१६॥ माणि माणिक मोता रत्न अरमा, मोवन भूषण बहु सुघट घड़ाया ॥ वली पहेरण नवरग व धणा, तुम नाम नविरहे कांई मणा ॥ १७ ॥ बैरी विरुआ नवि थाके भक, वली चोर चुगल मनथा चमक ॥ छल छिद्र कदा केहना नलग, जिनराज सदा तुम ज्योति जग ॥ १८ ॥ ठग ठाकुर साविषरहर कंप, पांखडी पण का नावि फरक । तुम्बरादिक बहु नामी आये, मारग तुम जपतां जय थाये ॥ १९ ॥ जड मूरख जे मति हीन थली, अज्ञान तिमिर तस जाय टली ॥ तुम समरणथी बाधा थाए पंडित पद पामी पूजाए ॥ २० ॥ खस खांसी खयन पीडा नास, दुरबळ मुख दीन पणुं नासे ॥ गड गुंबड कुष्ट जिक सबळा, तुम जाप रोग समे सबळा ॥ २१ ॥ गहिला गुंगा बहिर थ जिके; तुम ध्यान गत दु:ख थाय तिके ॥ तनु कांति कळा सुविशेष बधे तुम समरण ई नवनिधि सघे ॥ २२ ॥ कारि केसरी आरोध्य वन भया जल जळण जळोदर भए भया ॥ रोगण सघला सवी जाय टळी, तुम नामें पामे रंगरळी ॥ २३ ॥ ॐ ह्रीं अर्ह श्री पार्श्वनमो नमिऊण अक्षरा हुए दमा ॥ चिंतामणि मंत्र जिक ध्याय, तिण घर दिन दिन दोलत थाये ॥ २४ ॥ त्रिकरण शुद्ध ज अराधे, तस जस कीर्ति जगमां वाधे ॥ बली कामित काम सब साधे, समिहित चिंतामणि तुम्ह लाभे ॥२५॥ मद मच्छर मनथी दूर तजे, भगवंत भलीपर जइ भजे ॥ तस घर कमला किल्लोल करे, वळिराज्य रमणि बहु लीला वर ॥ २६ ॥ भव तारक तारक ई भासा सज्जन मन गति मति नो दाता ॥ मात तात सहोदर तू स्वामी ।शिव दायक नायक

हित कामी ॥ २७ ॥ करुणाकर ठाकुर तूं म्हारो, निशिवासर नाम जपूं थारो ॥ सेवक सूं परम कृपा करजो, वालेशर वंछित फळ देज्यो ॥ २८ ॥ जिनराज सदा तू जयकारी, तुझ मूर्ति अति मोहनगारी ॥ मुगत महल मे तूं राजे, त्रिभुवन ठकुराई तुझ छाजे ॥ २९ ॥ इम भाव भले जिनवर गायो, वामा सुत देखी बहु सुख पायो ॥ रवि शशि मुनि संवत्सर रंगे, जय देव सूरिमांगी सुख संगे ॥ ३० ॥ जय पुरुषादाणी पार्श्व प्रभो, सकळार्थ समिहित देहि विभो ॥ बुध हर्ष रुचि विजयाय मुदा, तव लब्धि रुचि सुख थाय सदा ॥ ३१ ॥

---

८३ श्रीपार्श्वनाथ स्वामीका छंद.

आपणे घर बेठां लील करो, निज पुत्र कलत्र सूं प्रेम धरो ॥ तुमे देश देशांतर कांई दोडो, नित्यपास जपो श्री जिन रूडो ॥ १ ॥ मनवंछित सघळां काज सरे, शिर ऊपर छत्र चामर ढले, कलमल आगळ चाले घोडो ॥ नित्य० ॥ २ ॥ भूत प्रेत दैत्य पिशाच वळी, सायणि ने डायणि जाय टळी ॥ छळ छिद्र न कोई लागे जोरो ॥ नित्य० ॥ ३ ॥ एकांतर ताव सियोदाहु, औषध विण जाये क्षण मांहु ॥ नवि दूखे मांथुं पग गोडो ॥ नि० ॥ ४ ॥ कंठ माळ गड गुंबड सबळा, तस उदर रोग टळे सगळा ॥ पीडा न करे फिन गळ फोडो ॥ नि० ॥ ५ ॥ जागतो तिर्थंकर पास पहु, एम जाणे सघळो जगत सहु ॥ ततक्षण अशुभ कर्म तोडो ॥ नित्य० ॥ ६ ॥ पास

वाणारसी पुरा नगरी, तिहां उदया जिनवर उदय करी ॥
समय सुंदर कहे कर जोड़ी ॥ नित्य० ॥ ७ ॥

---

८४ श्रीशांतिनाथ स्वामीका छंद

शारद माय नमुं शिरनामी, हुं गुण गाउं त्रिभुवनके स्वामी ॥ शांति शांति जपे सब कोई, ते घर शांति सदा सुख होई ॥१॥ शांति जपीने कीजे कामा, सोही काम हुवे अभिरामा ॥ शांति जपी परदेश सिधावे, ते कुशले कमला लेई आवे ॥ २ ॥ गर्भ थकी प्रभु मारि निवारी, शांतिजी नाम दिया हितकारी ॥ जे नर शांति तणा गुण गावे, ऋद्धि अचिंती ते नर पावे ॥ ३ ॥ जे नरकुं प्रभु शांति सहाई ते नरकुं कछु आरति नाहीं ॥ जो कछु वंछे सोही पूरे दुःख दारिद्र मिथ्या मति चूरे ॥ ४ ॥ अलख निरंजन ज्योति प्रकाशी, घटघट अंतर के प्रभु वासी ॥ स्वामी स्वरूप कह्यु नाव जाय कहतां मुझ मन अचरज थाय ॥ ५॥ डार दिये सबही हथियारा, जीत्या मोह तणा दळ सारा ॥ नारी तजी शिववधू रंग राच्यो, राज तज्या पण साहिब साचो ॥ ६ ॥ महा बळवंत कहीजे देवा, कायर कुंथु न एक हणेवा ॥ ऋद्धि सकळ प्रभु पास लहीजे भिक्षा आहारी नाम कहीजे ॥ ७ ॥ निंदक पूजक सम भायक, पण सेवककुं है सुख दायक ॥ तजी परिग्रह हुवा जगनायक, नाम अतिथि सब सिद्धि लायक ॥ ८ ॥ शत्रु मित्र सम चित्त गणीजे नाम दया अधिकत मणीजे ॥ सकळ जीव हितवंत कहीजे, सेवक जाणी महापद दीजे ॥ ९ ॥ सायर जेसा होत गंभीरा

दूषण एक न मांहे शरीरा, मेरु अचळ जिम अंतर जामी, पण न रहे प्रभु एकुण ठामी ॥ १० ॥ लोक कहे जिनजी सब देखे, पण सुपनो प्रभु कबहु न पेखे ॥ रीस विना बावीश पर्रीसा, सेना जीती ते जगदीशा ॥ ११ ॥ मान विना जग आण मनाई, माया विना शिवसुं लय लाई, लोभ विना गुण राशि ग्रहिजे, भिक्षु भावे त्रिगडो सेविजे ॥ १२ ॥ निर्ग्रंथपणे शिर छत्र धरावे, नाम यति पण चमर ढुळावे ॥ अभयदान दाता सुख कारण, आगळ चक्र चले अरिदारण ॥ १३ ॥ श्रीजिनराज दयाळ भणीजे, कर्म सबीको मूळ खणीजे ॥ चउविह संघ तीरथ थापे, लच्छी घणी देखे नवि आपे ॥ १४ ॥ विनयवंत भगवंत कहावे, नांहि कीसीकूं शीश नमावे ॥ अकंचनको विरुद धरावे, पण सोवन पद पंकज ठावे ॥ १५ ॥ राग नहीं पण सेवक तारे, द्वेष नही निगुणा संग वारे ॥ तजी आरंभ निज आतम ध्यावे, शिव रमणीको साथ चलावे ॥ १६॥ तेरी महिमा अद्भुत कहिए, तेरा गुणको पार न लहिए ॥ तूं प्रभु समरथ साहेब मेरा, हुं मन मोहन सेवक तेरा ॥ १७ ॥ तूंरे त्रिलोक तणो प्रतिपाळ, हुंरे अनाथ ने तुंरे दयाळ ॥ तूं शरणागत राखन धीरा, तूं प्रभु तारक छे वड वीरा ॥ १८ ॥ तूंही समोवड भागज पायो, तो मेरो काज चढ्योरे सवायो ॥ कर जोडी प्रभु वीनवुं, तमसुं, करो कृपा जिनवरजी अमसुं ॥ १९ ॥ जनम मरणना भय निवारो, भव सागरथी पार उतारो ॥ श्रीहत्थिणापुर मंडळ सोहे, त्यां श्री शांति सदा मन मोहे ॥ २० ॥ पद्म सागर गुरुराय पसाया, श्रीगुण

सागरक मन माया ॥ जे नर नारी एक चित गावे, ते मन वांछित निश्चय पावे ॥ २१ ॥ इति ॥

---

८५ श्री गौतम स्वामीका छंद

वीर जिणसर केरा शिष्य, गौतम नाम जपो निशदिश ॥ जो कीजे गौतमनो ध्यान, तो घर विलसे नवे निधान ॥ १ ॥ गौतम नामें गिरिवर चढे, मन वंछित हियडे सपजे गौतम नामें नावे राग, गौतम नामें सर्व संयोग ॥ २ ॥ जे वैरी विरुआ वंकडा, तस नामें नावे ढुकडा ॥ भूत प्रेत नवि मंडे प्राण ते गौतमना करूं वखाण ॥ ३ ॥ गौतम नामें निर्मळ काय, गौतम नामें वाधे आय ॥ गौतम जिनशासन शिणगार, गौतम नामें जयजयकार ॥ ४ ॥ शाळ दाळ सुरहा घृत गोळ, मन वंछित कापडे तंबोळ ॥ घर सुघरणी निर्मळ चित्त, गौतम नाम पुत्र विनीत ॥ ५ ॥ गौतम उग्यो अविचळ भाण गौतम नाम जपो जग जाण ॥ म्होटा मंदिर मेरु समान, गौतम नाम सफळ विमाण ॥ ६॥ घर मयगळ घोडानी जोड वारु पहोंचे वंछित कोड ॥ महियल माने मोटा राय जो तूठे गौतमना पाय ॥ ७॥ गौतम प्रणम्यां पातिक टळे, उत्तम नर नी संगत मळे ॥ गौतम नामें निर्मळ ज्ञान गौतम नामें वाधे वान ॥ ८ ॥ पुण्यवंत अवधारो सहु, गुरु गौतमना गुण छे बहु ॥ समय सुन्दर कहे करजोड, गौतम तूठे संपत्ति कोड ॥९॥

---

८६ श्री सोले सतीका छंद.

आदि आदि जिनवर वंदी, सफळ मनोरथ कीजिए ॥ प्रभाते उठी मंगळिक कामे, सोळे सतीना नाम लीजिए ॥ १ ॥ बाळकुमारी जगहितकारी, ब्राम्ही भरतनी बेनडीए ॥ घट घट व्यापक अक्षर रूपे, सोळ सतीमां जे वडीए ॥ २ ॥ बाहुबळ भगिनी सतीय शिरोमणी, सुंदरी नामें ऋषभ सुताए ॥ अंक स्वरूपी त्रिभुवन मांहे, जेह अनोपम गुण जुताए ॥ ३ ॥ चंदन बाळा बाळपणेथी, शीयळवती शुद्ध श्राविकाए ॥ अड-दना बाकुला वीर प्रतिलाभ्या, केवळ लह्यो व्रत भाविकाए ॥ ४ ॥ उग्रसेन धुया धारिणी नंदनी, राजेमती नेम वल्लभा ए जोबन वेषे कामने जीत्यो, संजम लई देव वल्लभाए ॥ ५ ॥ पंच भरतारी पांडव नारी, द्रुपद तनया वखाणीए ॥ एकसौ आठे चीर पुराणा शीयळ महिमा तस जाणीये ए ॥ ६ ॥ दशरथ नृपनी नारी निरुपम, कौसल्या कुळ चंद्रिकाए शीयळ सलुणी राम जनेता, पुण्य तणी प्रनाळिकाए ॥ ७ ॥ कोसंबिक ठामे संतानिक नामे, राज्य करे रंग राजियो ए ॥ तस घर घरणी मृगावती सती, सुर भुवने जश गाजियो ए ॥ ८ ॥ सुळशा साची शीयळ न काची, राची नहीं विषया रसेए ॥ मुखडो जोतां पाप पलाए, नाम लेतां मन उल्लसे ए ॥ ९ ॥ राम रघुवंशी तेहनी कामिनी, जनकसुता सीता सतीए ॥ जग सहु जाणी धीज करंता, अनळ शीतळ थयो शीयळथी ए ॥ १० ॥ सुरनर वंदित शीयळ अखंडित शिवा शिव पद गाम-नीए । जेहने नामे निर्मळ थइए, बलीहारी तस नामनी ए ॥ ११ ॥ कांचे तातणे चालणी बांधी, कुआथकी जळ काढीयुं

ए ॥ कलंक उतारवा सतीय सुभद्रा, चपा बार उघाडीयु ए ॥ १२ ॥ हस्तीनागपुरे पांडु रायनी, कुंता नामे कामिनी ए ॥ पांडव माता दसे दशारनी बेहन पतिव्रता पद्मिनी ए ॥ १३ ॥ शीलवती नामे शीलव्रत धारिणी, त्रिविधे तहने वंदीये ए ॥ नाम जपंता पातिक जाए ॥ दर्शणे दुरित निकंदी ए ॥ १४ ॥ निपधा नगरी नळ नरींदनी दमयंती तस गेहनी ए ॥ सकट पडतां शीयळ राख्युं त्रिभुवन कीर्ति जेहनी ए ॥१५ अनग अजीता जग जन पूजीता, पुफचुलाने प्रभावती ए ॥ विश्व विख्याता कामित दाता, सोळमी सती पद्मावती ए ॥ १६ ॥ वीरे भाखी शास्त्रे साखी; उदय रतन भाखे मुदा ए ॥ पोउगतां जे नर भणसे, ते लसे सुख सपदा ए ॥ १७ ॥

---

८७ श्री नवकारका छंद प्रारंभ

(दोहा)

वछित पूरे विविध पर, श्री जिनशासन सार ॥ निश्चे श्री नवकार नित जपतां जय जयकार ॥ १ ॥ अडसठ अक्षर अधिक फळ नवपद नव निधान ॥ वीतराग स्व मुख वद, परमेष्टि प्रधान ॥ २ ॥ एकज अक्षर एकज चित्त, समर्यो संपत्ति थाय ॥ संचित सागर सातनां, पातिक दूर पलाय ॥३॥ सकळ मंत्र शिर मुकुट मणि, सद्गुरु भाषित सार ॥ सो भवियां मन शुद्धशुं नित जपीए नवकार ॥ ४ ॥

(छंद हाटकी.)

नवकार थकी श्रीपाळ नरेसर, पाम्यो राज्य प्रसिद्ध ॥ श्मशान विषे शिव नाम कुमरनो, सोवन पुरिसो सिद्ध ॥ नव लाख जपंतां नरक निवारे, पामे भवनो पार ॥ सो भवियां भत्ते; चोखे चित्ते, नित जपिए नवकार ॥ १ ॥ बांधी वड-शाखा शिके वेसी, हेठळ कुंड हुताश ॥ तस्करने मंत्र समप्यों श्रावके, उडयो ते आकाश ॥ विधि रीत जप्यॉ विषधर, विष टाळे ढाळे अमृत धार ॥ सो० ॥ २ ॥ बीजोरा कारण राय महाबळ, व्यंतर दुष्ट विरोध ॥ जेणे नवकारे हत्या टाळी, पाम्यो यक्ष प्रतिबोध नव लाख जपंतां थाये जिनवर, इसो छे अधिकार ॥ सो० ॥ ३ ॥ पल्लीपति शीख्यो मुनिवर पासे, महामंत्र मन शुद्ध ॥ परभव ते राजसिंह पृथवीपति, पाम्यो परीगळ ऋद्ध ॥ ए मंत्र थकी अमरापुर पहोंच्यो, चारुदत्त सुविचार ॥ सो० ॥ ४ ॥ संन्यासी काशी तप साधंतो, पंचाग्नि परजाळ ॥ दीठो श्री पास कुमारे पन्नग, अधबलतो ते टाळ ॥ संभळाव्यो श्री नवकारस्वयं मुख, इंद्रभुवन अवतार ॥ सो० ॥ ५ ॥ मन शुद्धे जपतां मयणासुंदरी, पामी प्रिय संयोग ॥ इण ध्याने कष्ट टळ्युं उंबरनुं, रक्तपितनो रोग ॥ निश्चेसु जपतां नवनिधि थाये, धर्मतणो आधार ॥ सो० ॥६॥ घटमांही कृष्ण भुजंगम घाल्यो, घरणी करवा घात ॥ परमेष्टि प्रभावे, हार फूलनो वसुधामांही विख्यात ॥ कमळावतीये पिंगळ कीधो, पापतणो परिहार ॥ सो० ॥ ७ ॥ गयणांगण जाती राखी ग्रहीने, पाडी बाण-प्रहार ॥ पद पंच सुणंता पांडुपति घर, ते थई कुंता नार ॥ ए मंत्र अमुलक महिमा मं-

ए ॥ कलंक उतारवा सतीय सुभद्रा, चपा बार उघाडीयु ए ॥ १२ ॥ हस्तीनागपुरे पांडु रायनी, कुंता नामे कामिनी ए ॥ पांडव माता दसे दशारनी, बेहन पतिव्रता पद्मिनी ए ॥ १३ ॥ शीलवती नामें शीलव्रत धारिणी, त्रिविधे ताहने वंदीय ए ॥ नाम जपता पातिक जाए ॥ दर्शणे दुरित निकंदी ए ॥ १४ ॥ निषधा नगरी नळ नरींदनी दमयंती तस गेहनी ए ॥ सकट पडतां शीयळज राख्युं त्रिभुवन कीर्ति जेहनी ए ॥१५ अनग अजीता जग जन पूजीता, पुफचुलाने प्रभावती ए ॥ विश्व विख्याता कामित दाता, सोळमी सती पद्मावती ए ॥ १६ ॥ वीरे भाखी शास्त्रे साखी, उदय रतन भाखे मुदा ए ॥ पोडगतां जे नर भणसे, ते लेसे सुख संपदा ए ॥ १७ ॥

---

८७ श्री नवकारका छंद प्रारंभ

(दोहा)

वंछित पूर विविध पर, श्री जिनशासन सार ॥ निश्च श्री नवकार नित जपतां जय जयकार ॥ १ ॥ अडसठ अक्षर अधिक फळ नवपद नवे निधान ॥ वीतराग स्वयं मुख बद, पंचपरमेष्टि प्रधान ॥ २ ॥ एकज अक्षर एकत्र चित्त, समर्यां संपति थाय ॥ संचित सागर सातनो, पातिक दूर पळाय ॥३॥ सकळ मंत्र शिर मुकुट मणि, सद्गुरु भाषित सार ॥ सो भवियां मन शुद्धस, नित्य जपिए नवकार ॥ ४ ॥

८८ श्री शांतिनाथका छंद.

नगर हथिणापुर अति रे भलो, जिहां जन्म्या तिर्थंकर त्रिभुन तिलो ॥ राय परुप्यो जैन खरो, श्री शांति जिनेश्वर शांति करो ॥ १ ॥ सर्वारथसिद्ध थकीरे चवी, तव देश नगरमां शांति हवी ॥ शांतिजी नाम दियो सखरो श्री शांति० ॥ २ ॥ विश्वसेन पिता अचिरा रे माया, जेणे चौदे सुपन महोटां रे पाया ॥ जनम्या, तीर्थंकर अमिय झरो, श्री शांति ॥ ३ ॥ छप्पन कुमारिका उल्लास घणो, जेणे जनम महोच्छव कर्यो कुमर तणो ॥ चोसठ इंद्र आवी कळश भरो. श्री शांति० ॥ ४ ॥ फेर भणावी बहोतेर कळा, जेणे सहस्र चौसठ परणी महिला ॥ छेखंड साध्या एणीय परो. श्री शांति० ॥ ५ ॥ सहस पंचोतेर वरस कह्या. चक्रवर्तिपणे घर वास रह्या ॥ पछे मिटाई दियो सगळो झगडो, श्री शांति० ॥ ६ ॥ एक सहस पुरुष साथे शिक्षा, श्रीजिनवरजीए लीधी दीक्षा ॥ पछे सुर नर आवी पाय पडो, श्री शांति० ॥ ७ ॥ एक मास लगे छदमस्थ रह्या, शुदि पोष नवमी दिन केवळ लह्या ॥ भरणी नक्षत्र प्रभात खरो, श्री शांति० ॥ ८ ॥ प्रभुए मोहजाळ सवि कापी, चतुर्विध संघ तीरथ थापी ॥ चौथो दूसम सूसम आरो, श्री शांति० ॥ ९ ॥ बासठ सहस-मुनिराज थया, वळी सहस नव्यासी हुई आजियां ॥ प्रभु तारोने वळी आप तरो, श्री शांति० ॥ १० ॥ दोय लाख नेवु सहस श्रावक गुणी, त्रण लाख त्याशी सहस श्राविका सुणी ॥ और चतुर्विध संघ खरो, श्री शांति० ॥ ११ ॥ चार हजार उहिनाणि जति, वळी त्रणशे हुवा विपुलमति ॥ नेवु गणधरनो

दिर, मवदुःख भंजनहार ॥सो०॥ ८ ॥ कपडे न सबक बारा काइया, शकट पोचसौ मान ॥ दीधे नवकार गमा इबताक विलस अमर विमान ॥ ए मंत्र थकी संपति वसुधा तळे, वि लसे जैन विहार ॥ सो० ॥ ९ ॥ आगे चोवीशी हुई अनंती होसे वार अनंत ॥ नवकार तणी कोई आदि न जाणे इम भाखे अरिहंत ॥ पूरव दिशी चारे आदि प्रपचे, समर्यां संपति सार ॥ सो० ॥ १ ॥ परमेष्टि सुर पद ते पण पामे, जे कृत कर्म कठोर ॥ पुंडरगिरि ऊपर प्रतख पेख्यो, मास्वर न एक मोर ॥ सद्गुरुने सन्मुख विधि समरतां, सफळ जनम संसार ॥ सो० ॥ ११ ॥ शूळीकारोपण तस्कर कीधो, लोहखरा पर सिद्ध ॥ तिहां शेठे नवकार सुणाव्या, पाम्यो अमरनी ऋद्ध ॥ शेठेने घर आवी विघ्न निवार्या, सुर करी मनोहार ॥ सो० ॥ ॥ १२ ॥ पंच परमेष्टि ज्ञानज पंच, पंच दान चारित्र ॥ पंच सज्झाय महाव्रत पंच, पंच सुमति समकित ॥ पंच प्रमाद विषय तजो पंच, पाळो पंचाचार ॥ सो० ॥ १३ ॥

(कळश छप्पय)

नित्त जपिए नवकार, सार संपति सुखदायक ॥ शुद्ध मंत्र ए शाश्वतो, इम जंपे श्री जगनायक ॥ श्री अरिहंत सुसिद्ध, शुद्ध आचार्य भणीजे ॥ श्री उवज्झाय सुसाधु, पंच परमेष्टि थुणीजे ॥ नवकार सार संसार छे, कुशललाभ वाचक कहे ॥ एक चित्त आराधतां विविध ऋद्धि वांछित लहे ॥ १४ ॥

---

८८ श्री शांतिनाथका छंद.

नगर हथिणापुर अति रे भलो, जिहां जन्म्या तिर्थंकर त्रिभुन तिलो ॥ राय परुप्यो जैन खरो, श्री शांति जिनेश्वर शांति करो ॥ १ ॥ सर्वारथसिद्ध थकीरे चवी, तव देश नगरमां शांति हवी ॥ शांतिजी नाम दियो सखरो श्री शांति० ॥ २ ॥ विश्वसेन पिता अचिरा रे माया, जेणे चौद सुपन महोटां रे पाया ॥ जनम्या, तीर्थंकर अमिय झरो, श्री शांति ॥ ३ ॥ छप्पन कुमारिका उल्लास घणो, जेणे जनम महोच्छव कर्यो कुमर तणो ॥ चोसठ इंद्र आवी कळश भरो. श्री शांति० ॥ ४ ॥ फेर भणावी वहोतेर कळा, जेणे सहस्र चौसठ परणी महिला ॥ छेखंड साध्या एणीय परो. श्री शांति० ॥ ५ ॥ सहस पंचोतेर वरस कह्या. चक्रवर्तिपणे घर वास रह्या ॥ पछें मिटाई दियो सगळो झगडो, श्री शांति० ॥ ६ ॥ एक सहस पुरुप साथे शिक्षा, श्रीजिनवरजीए लीधी दीक्षा ॥ पछे सुर नर आवी पाय पडो, श्री शांति० ॥ ७ ॥ एक मास लगे छदमस्थ रह्या, शुदि पोप नवमी दिन केवळ लह्या ॥ भरणी नक्षत्र प्रभात खरो, श्री शांति० ॥ ८ ॥ प्रभुए मोहजाळ सवि कापी, चतुर्विध संघ तीरथ थापी ॥ चौथो दूसम सूसम आरो, श्री शांति० ॥ ९ ॥ बासठ सहस-मुनिराज थया, वळी सहस नव्यासी हुई आजियां ॥ प्रभु ता रोने वळी आप तरो, श्री शांति० ॥ १० ॥ दोय लाख नेवु सहस श्रावक गुणी, त्रण लाख त्याशी सहस श्राविका सुणी ॥ और चतुर्विध संघ खरो, श्री शांति० ॥ ११ ॥ चार हजार उहिनाणि जति, वळी त्रणशे हुवा विपुलमति ॥ नेवु गणधरनो

पाप हरो श्री शांति० ॥ १२ ॥ चार हजार प्रयसों रे कया मुनि केवळ लहीने मुगति गया ॥ ६ हजार मुनिवैक्रेय धरो, श्री शांति० ॥ १३ ॥ चोवीसों वादी भारी, वळी आठसो चौद पूरवधारी ॥ आठ करमशुं जाई लडो, श्री शांति० ॥ १४ ॥ नवपदवी मोटी रे कही, जेणे एकण भवमां ते लही ॥ एमो भरियो पुण्य घडो, श्री शांति० ॥ १५ ॥ पा लाख कुमर सावपणे वळि अधलाख वरस रया राज्यपणे ॥ एक लाख वरपनो सर्व घडो, श्री शांति० ॥ १६ ॥ चाळीस धनुष ऊंची रे देही, वळि हेमवरणी उपमा रे कही ॥ दीठ दिश दरिसाव ठरो, श्री शांति० ॥ १७ ॥ जो नाम धरावो श्रावक यति, तो अनाचार सेवो रे मती ॥ परभव सेंती काई डरा, श्री शांति० ॥ १८ ॥ त्रिविध त्रिविधे जीव मविरे हणा, ए उपदेश छे जिनराज तणो ॥ मार्ग बताव्यो शुद्ध खरा, श्री शांति० ॥ १९ ॥ आ जीव रायते रंक थयो वळि नरक निगोदमां बहुरे रया ॥ रडवडियो जिम गेंद दडो, श्री शांति० ॥ २० ॥ चार गतिनां र दु ख कयां, जीवे, अनती अनंति वार लह्यां ॥ पधी रया तिम तस घडा, श्री शांति० ॥ २१ ॥ श्रद्धा सहित तुमे तप तपो, भव्य जीवो सदु जुम आप जपा ॥ मार्ग मळ्या छे निपट खरो श्री शांति० ॥ २२ ॥ संथारा एक मास तया, सम्मेतशिखर सिद्ध ठाम मया ॥ नवमां मुनिसुं मुगति वरा, श्री शांति० ॥ २३ ॥ मृग लछन सेंसी ध्यान रया, श्री शांति जिनवर मुगति गया ॥ पछ भर दियो मर्णा जन्म मरा, श्री शांति० ॥ २४ ॥ तुम नाम लिया हवे काज सरे, तुम नाम मुगति महेल मह ॥

तुम नामे शुभ भंडार भरो, श्री शांति० ॥ २६ ॥ ऋषि जयमलजीए एह विनति कही, प्रभु तोरा गुणनो पार नहीं ॥ मुझ भव भवना दुःख दूर हरो, श्री शांति० ॥ २७ ॥ इति. ॥

---

८९ श्री शांतिनाथ स्वामीका छंद.

शांतीनाथजीको कीजे जाप, क्रोड भवानां नाटे पाप ॥ शांतिजिनेश्वर म्होटा देव, सुरनर सारे जेहनी सेव ॥ १ ॥ दुःख-दारिद्र जावे दूर सुख संपति पामे भरपूर ॥ ठग फांसीगर जावे भाग, बळती होवे शीतळ आग ॥ २ ॥ राजलोकमां कीर्ति घणी, शांति जिनेश्वर माथे धणी ॥ जो ध्यावे प्रभुजीनुं ध्यान, राजा देवे अधिको मान ॥ ३ ॥ गडगुंबड पीडा मिट जाय, देखी दुश्मन लागे पाय ॥ सघळो भाग्यो मननो भर्म, पाम्या समकित काटया कर्म ॥ ४ ॥ सुणो प्रभु मोरी अरदास, हुं सेवक तुमे पूरो आश ॥ मुझमन चिंतित कारज करो; चिंता आरति विघ्न ज हरो ॥ ५ ॥ मेटो म्हारा आळ, जंजाळ, प्रभु मुझने तूं नयण निहाळ ॥ आपनी कीर्ति ठामो ठाम, प्रभु सुधारो म्हारा काम ॥ ६ ॥ जो नर नित्य प्रभुजीने रटे; मोत्या विद फूला कटे ॥ चेप लावण दोनों झड जाय, विण औषध कट जावे छांय ॥ ७ ॥ शांतिनाथना नामथी आंख्या निर्मल थाय, धुन्ध पटल जाला कट जाय ॥ कमळो पिल्यो झड झड पडे, शांति जिनेश्वर शाता करे ॥ ८ ॥ गरमी व्याधि मिटावे रोग, सयण मित्रनो मिळे संयोग ॥ एहवा देव न दीसे और, नहीं चाले दुश्मन को जोर ॥ ९ ॥ लुंटारा सब जावे नास, दुर्जन मिट होवे

निजदास ॥ शांतिनाथनी कीर्ति घणी, कृपा करो तुमे त्रिभुवन धणी ॥ १० ॥ अरज करूछु जोडी हाथ आपस नहीं हाई कानें पाय ॥ देखी राखा स्म,पोते आप, काटो प्रभुजी म्हारां पाप ॥ ११ ॥ मुझ मन चींतित करिये काज राखो प्रभुजी म्हारी लाज ॥ तुम सम जग मांही नहीं कोय, तुम मजवार्थी शाता होय ॥ १२ ॥ तुम पास चले नहीं मरकी रोग, तार तेजरो नांखो सोक ॥ मरी मिटाई कीधी प्रभु शांत तुम गु णनो नहीं आय अंत ॥ १३ ॥ तुमने समरे साधु सती तुमने समरे जोगी जती ॥ काटा संकट राखो मान, अविचळ पदनो आपा स्थान ॥ १४ ॥ संवत अठारे चोराणु जाण, देश मा ळवो अधिक वखाण ॥ शहर जावरा चैतर मास, हु प्रभु तुम चरणांकोदास ॥ १५ ॥ ऋषि रघुनाथजी कीधो छद, काटा प्रभुजी म्हारा फद ॥ हु जोडू प्रभुजीने हाट, मुझ आरति चिंता सगलीकाट ॥ १६ ॥

---

९० बडी साधु वदना

नमु अनत चौवीसी, ऋषभादिक महावीर; आय क्षेत्रमां घाली धर्मनीसीर ॥ १ ॥ महा अतुलबलीनर, शूरवार ने धीर तीर्थ प्रवर्तावी पहोंत्या भवजल तीर ॥ २ ॥ श्रीमंधर प्रमुख जघन्य तीर्थकर वीस; छे अढीद्वीपमां, जयवंता जग दीश ॥ ३ ॥ एक सौने सित्तर, उत्कृष्टा पदे जगदीश; धन्य ह्याटाप्रभुजी, तेहने नमाऊं शीश ॥ ४ ॥ केवली दोय कोडी

उत्कृष्टा नव क्रोड मुनि दोयसहस्र कोडी, उत्कृष्टा नव सहस्र क्रोड ॥ ५ ॥ विचरे विदेहे, महोटा तपस्वी घोर, भावे करी वंदूं, टाले भवनी खोड ॥ ६ ॥ चोवीसा जिननना सघळा ए गणधार; चोदसोने बावन, ते प्रणमूं सुखकार ॥ ७ ॥ जिन शाशन नायक, धन्य श्री वीर जिणंद; गौतमादिक गणधर वर्त्ताव्यो आणंद ॥ ८ ॥ श्री ऋषभदेवना भरतादिक सौ पूत; जिनमत दीपावी, सघळा मोक्ष पहुंत ॥ १० ॥ श्री भरतेश्वरना, हुवा पाटोधर आठ, आदित्य जगादिक, पहोंत्या शिवपुर वाट ॥ ॥ ११ ॥ श्री जिन अतरना, हुवा पाट असंख्य; मुनि मुक्ति पहोंत्या, टाली कर्मनो चक्र ॥ १२ ॥ धन्य कपिल मुनिवर, नमि नमूं अणगार; जेणे ततक्षण त्याग्यो, सहस्र रमणी परिवार ॥ १३ ॥ मुनिवर हरकेशीचित मुनीश्वर सार, शुद्ध संयम पाली, पाम्या भवनो पार ॥ १४ ॥ वली इखुकार राजा, घर कमळावती नार; भगु ने जसा तहनो दोय कुमार ॥ १५ ॥ छहो छति रिद्धि छांडीने, लीधो संयम भार; इम अल्पकालमां पाम्या मोक्षद्वार ॥ १६ ॥ वली संजती राजा, हिरण आहिडे जाय; मुनिवर गद भाली, आण्यो मारग ठाय ॥ १७ ॥ चारित्र लेईने, भेट्या गुरुना पाय; क्षत्री राज ऋषीश्वर, चर्चा करी चित्त लाय ॥ १८ ॥ वळी दशे चक्रवर्ति, राज्य रमणी ऋद्धि छोड; दशे मुक्ति पहात्या, कुलने सोभाचहोड ॥ १९ ॥ इण अवसर्पिणीमां, आठ राम गया मोक्ष वलभद्र मुनीश्वर, गया, पंचमें देवलोक ॥ २० ॥ दशार्णभद्र राजा, वीर वांद्या धरी मान; पछे इंद्र हठायो, दियो छकाय अभेदान ॥ २१ ॥ करकंडु प्रमुख, चारे प्रत्येक बोध, मुनि मुक्ति पहोंत्या, जतिया

निजदाम ॥ शांतिनाथनी कीर्ति घणी, कृपा करो तुमे त्रिभुवन धणी ॥ १० ॥ अरज करूंछुं ओडी हाथ आपधू नहीं कर्ते छानी वात ॥ देखी राखा मन पासे आप, काटा प्रभुजी म्हारां पाप ॥ ११ ॥ मुझ मन चींतित करिये काज राखो प्रभुजी म्हारी लाज ॥ तुम सम जग मांही नहीं कोय, तुम मजवाथी शाता होय ॥ १२ ॥ तुम पास चले नहीं मरकी राग, तार तजरो नांखो ताक ॥ मरी मिटाओ कांची प्रभु शांत तुम गु णना नहीं आवे अंत ॥ १३ ॥ तुमने समरे साधु सती तुमने समर जोगी जती ॥ काटो संकट राखो मान, अविचल पदनो आपो स्थान ॥ १४ ॥ सवत अठारे चोराशु जाण, देश मा ळवो अधिक वखाण ॥ शहर जावरा चैतर मास, हुं प्रभु तुम चरणांकादास ॥ १५ ॥ ऋषि रघुनाथजी कीवो छंद, काटो प्रभुजी म्हारा फंद ॥ हु जोडू प्रभुजीनी वाट, मुझ आरत चिंता सगलीकाट ॥ १६ ॥

---

९० बडी साधु वदना

नमु अनत चोवीसी, ऋषभादिक महावीर; आर्य खेत्री घर्मनीसीर ॥ १ ॥ महा अतुलबलीनर, शूर तीर्थ प्रवर्तावी पहोंत्या भवजल तीर ॥ २ ॥ पुरा अयन्त तीर्थंकर थाय, दे अढीद्वीपमां, जयवं तन ॥ ३ ॥ एक सौन मिचर, उत्कृष्ट पद अगर्दी हाटाप्रभुजी, अहन नमाऊं शीश ॥ ४ ॥ स्यसी द

बीजा पण मुनिवर, भगवतीमां अधिकार ॥ ३८ ॥ श्रेणिकना बेटा' मोटा मुनिर मेघ; तजी आठ अंतेउरी, आण्यो मन संवेग ॥ ३९ ॥ वरिपें व्रत लेईने, बांधी तपनी तेग; गया विजय विमाने, चवि लेसे शिव वेग ॥ ४० ॥ धन्य थावर्चा पुत्र, तजी बत्तीसे नार; तेनी साथे निकल्या, पुरुष एक हजार ॥ ॥ ४१ ॥ सुकदेव संन्यासी, एक सहस्र शिष्य लार; पंचसयस्ं सेलक, लीधो संयमभार ॥ ४२ ॥ सर्व सहस्र अढाई, घणा जीवोंने तार; पुंडरगिरी ऊपर, कियो पादोपगमन संथार ॥४३॥ आराधिक हुईने, कीधो खेवो पार; हुवा मोटा मुनिवर, नाम लिया निस्तार ॥ ४४ ॥ धन्य जिनपाल मुनिवर, दोय धनावा साध; गया प्रथम देवलोके, मोक्ष जासे आराध ॥ ४५ ॥ श्री मल्लिनाथना छे मित्र, महाबल प्रमुख मुनिराय; सर्वे मुक्ति सिद्धाव्या मोटी पदवी पाय ॥ ४६ ॥ वलि जितशत्रुराजा, सुबुद्धि नामें प्रधान, पोते चारित्र लेईने, पाम्या मोक्ष निधान ॥४७॥ धन्य तेतली मुनिवर, दियो छकाय अभेदान; पोटिला प्रतिबोध्या, पाम्या केवलज्ञान ॥ ४८ ॥ धन्य पांचों पांडव, तजी द्रौपदी नार, स्थिरवरनी पासे, लीधो संयम भार ॥ ४९ ॥ श्री नेमिवंदननो, एहवो अभीग्रह कीध; मास मासखमण तप, शत्रुंजय जई सिद्ध ॥ ५० ॥ धर्मघोष तणा शिष्य, धर्मरुचि अणगार; किडियोनी करुणा, आणी दया अपार ॥ ५१ ॥ कडवा तुंबानो कीधो सघळो आहार; सर्वार्थसिद्ध पहोंत्या, चवि लेसे भवपार ॥ ५२ ॥ वली पुंडरीक राजा, कुंडरीक डिगियो जाण; पोते चारित्र लेईने, न घाली धर्ममां हाण ॥ ॥ ५३ ॥ सर्वार्थसिद्ध पहोंत्या, चवि लेसे निर्वाण; श्री ज्ञाता-

कर्म महा जोध ॥ २२ ॥ धन्य महोटा मुनिवर, मृगापुत्र ज गाय; मुनिवर अनाथी, जीत्या रागने रीस ॥ २३ ॥ वली समुद्रपाल मुनि, राजिमति रहनेम; केशीने गौतम, पाम्या शिवपुर क्षेम ॥ २४ ॥ धन्य विजयघोष मुनि, जयघोष वली जाण; श्री गर्गाचार्य, पहोंत्या छ निर्वाण ॥ २५ ॥ श्री उत्तराध्ययनमां, जिनवरे कर्या वखाण; शुद्ध मनसें ध्यावो, मनमें धीरज आण ॥ २६ ॥ वली खदक संन्यासी, राख्यो गौतम स्नेह; महावीर समीप पंच महाव्रत लेह ॥ २७ ॥ तप कठिन करीने, झोंसी आपणी देह; गया अच्युत देवलोकें, चवी लेस भव छेह ॥ २८ ॥ वली ऋषभदत्त मुनि, शेठ सुदर्शन सार; शिवराज ऋषीश्वर, धन्य गांगेय अणगार ॥ २९ ॥ शुद्ध संयम पाली, पाम्या केवल सार; ए चारे मुनिवर, पहोंत्या मोक्ष मझार ॥ ३० ॥ भगवंतनी माता, धन्य धन्य सती देवानंदा; वली सती जयंति, छोड दिया घरफंदा ॥ ३१ ॥ सती मुक्ति पहोंत्या, वली ते वीरनी नंद; महा सती सुदर्शना घणी सतियोना वृंद ॥ ३२ ॥ वली कार्तिक शेठे, पडिमा वही शूरवीर; जम्या मोरा उपर, तापस बल्ती खीर ॥ ३३ ॥ पछी चारित्र लीधो, मत्री एक सहस्र आठ धीर; मरी हुआ शक्रेंद्र, चवी लेस भव तीर ॥ ३४ ॥ वली राय उदायन, दियो भाणेजने राज; पछी चारित्र लईनें, साया आतम काज ॥ ॥ ३५ ॥ गंगदत्तमुनि आणंद तरणतारण जहाज; कुशल मुनि राह दिया घणान माझ ॥ ३६ ॥ धन्य सुनक्षत्र मुनि वर, सर्वानुभूति अणगार; आराधिक हुईने, गया देवलोक मझार ॥ ३७ ॥ चरिमुक्ति जाम, वर्गी सिंह मुनीश्वर सार;

बीजा पण मुनिवर, भगवतीमां अधिकार ॥ ३८ ॥ श्रेणिकना बेटा मोटा मुनिर मेघ; तजी आठ अंतेउरी, आण्यो मन संवेग ॥ ३९ ॥ वरिषें व्रत लेईने, बांधी तपनी तेग; गया विजय विमाने, चवि लेसे शिव वेग ॥ ४० ॥ धन्य थावर्चा पुत्र, तजी बत्तीसे नार; तेनी साथे निकल्या, पुरुष एक हजार ॥ ॥ ४१ ॥ सुकदेव संन्यासी, एक सहस्र शिष्य लार; पंचसयसुं सेलक, लीधो संयमभार ॥ ४२ ॥ सर्व सहस्र अढाई, घणा जीवोंने तार; पुंडरगिरी ऊपर, कियो पादोपगमन संथार ॥४३॥ आराधिक हुईने, कीधो खेवो पार; हुवा मोटा मुनिवर, नाम लिया निस्तार ॥ ४४ ॥ धन्य जिनपाल मुनिवर, दोय धनावा साध; गया प्रथम देवलोके, मोक्ष जासे आराध ॥ ४५ ॥ श्री मल्लिनाथना छे मित्र, महाबल प्रमुख मुनिराय; सर्वे मुक्ति सिद्धाव्या मोटी पदवी पाय ॥ ४६ ॥ वलि जितशत्रुराजा, सुबुद्धि नामें प्रधान, पोते चारित्र लेईने, पाम्या मोक्ष निधान ॥४७॥ धन्य तेतली मुनिवर, दियो छकाय अभेदान; पोटिला प्रतिबोध्या, पाम्या केवलज्ञान ॥ ४८ ॥ धन्य पांचों पांडव, तजी द्रौपदी नार, स्थिरवरनी पासे, लीधो संयम भार ॥ ४९ ॥ श्री नेमिवंदननो, एहवो अभीग्रह कीध; मास मासखमण तप, शत्रुंजय जई सिद्ध ॥ ५० ॥ धर्मघोष तणा शिष्य, धर्मरुचि अणगार; किडियोनी करुणा, आणी दया अपार ॥ ५१ ॥ कडवा तुंबानो कीधो सघळो आहार; सर्वार्थसिद्ध पहोंत्या, चवि लेसे भवपार ॥ ५२ ॥ वली पुंडरिक राजा, कुंडरिक डिगियो जाण; पोते चारित्र लेईने, न घाली धर्ममा हाण ॥ ॥ ५३ ॥ सर्वार्थसिद्ध पहोंत्या, चवि लेसे निर्वाण; श्री ज्ञाता-

मुझमां, जिनवर कन्या वखाण ॥ ५४ ॥ गौतमादिक कुमार, सगा अठारे आत; सर्व अधक विष्णु सुत, धारणी ज्यांरी मात ॥ ५५ ॥ वली आठ अक्षउरी, काढी दावानी बात; पा रिख लेईने, कीधा मुक्तिनो साथ ॥ ५६ ॥ श्री अनेक सेनाद क, छहों सहोदर भ्रात; वसुदेवना नंदन, देवकी ज्यांरी मात ॥ ५७ ॥ भदिलपुर नगरी, नाग गाहावई जाण; सुलसा घर वधिया, सांभली नेमिनी वाण ॥ ५८ ॥ तस्रां बत्तीस बत्तीस अंतेउरी, निकलिया छिटकाय, नल कुबेर समाणा, भेट्या श्री नेमिना पाय ॥ ५९ ॥ करी छठ छठ पारणां, मनमें वैराग्य लाय; एक मास संथार मुक्ति बिराज्या जाय ॥ ६० ॥ वली दारुण सारण, सुमुख दुमुख मुनिराय; वली कुमर अनाधृष्ट, गया मुक्तिगढ मांय ॥ ६१ ॥ धन्य वसुदेवना नंदन, धन्य धन्य गजसुकुमाल; रूपे अति सुंदर, कलावत वय बाल ॥ ६२ श्री नेमि समीप, छोड्यो मोह जंजाल; भिक्षुनी पडिमा गया मशाण महाकाल ॥ ६३ ॥ देखी सोमिल क्रोप्या, मस्तक बांधी पाल; खेरना खीरा, शिर ठविया असराळ ॥ ६४ ॥ मुनि नजर न खंडी, मेटी मननी झाल ॥ परिषह सहीने, मु क्ति गया तत्काल ॥ ६५ ॥ धन्य जाली मयाली उवयाला दिक साध; सांबने प्रद्युमन, अनिरुद्ध साधु अगाध ॥ ६६ ॥ वली सचनेमि दृढनेमि, करणी कीधी बाध; दशे मुनि मुगते पहोंच्या, जिनवर वचन आराध ॥ ६७ ॥ धन्य अर्जुनमाली, कर्मो कदाग्रह दूर; वीरपे व्रत लईने, सत्यवादी हुवा शूर ॥ ॥ ६८ ॥ करी छठ छठ पारणा; क्षमा करी भरपूर, छे मासां मांही, कर्म किया चकचूर ॥ ६९ ॥ कुमर अइमुत्त, दीठा

गौतम स्वाम; सुणी वीरनी वाणी, कीधो उत्तम काम ॥७०॥ चारित्र लेईने, पहोंत्या शिवपुर ठाम, धुर आदि मकाई, अंत अलक्ष मुनि नाम ॥ ७१ ॥ वळी कृष्णरायनी, अग्रमहिषी आठ; पुत्र वहु दोय, संच्या पुण्यना ठाठ ॥ ७२ ॥ यादवकुल सतियां टाळी दुःख उच्चाट, पहोंत्या शिवपुरमें, ए छे सूत्रनो पाठ ॥ ७३ ॥ श्रेणिकनी राणी कालियादिक दश जाण, दशे पुत्र वियोगे, सांभळी वीरनी वाण ॥ ७४ ॥ चंदनवालापे संजम लेई हुवा जाण; तप करी देह झोंसी, पहोंत्या छे निर्वाण ॥ ७५ ॥ नंदादिक तेरे, श्रेणिक नृपनी नार; सघळी चंदनवालापे, लीधो संजम भार ॥ ७६ ॥ एक मास संथारे, पहोंत्या मुक्ति मझार; ए नेवु जणानो, अंतगडमां अधिकार ॥ ७७ ॥ श्रेणिकना वेटा जालियादिक तेवीस; वीरपे व्रत लेईने, पाल्यो विश्वावीस ॥ ७८ ॥ तप कठिन करीने, पूरी मन जगीश, देवलोके पहोंत्या, मोक्ष जासे तज रीस ॥७९॥ काकंदिनो धन्नो, तजी वत्तीसे नार; महावीर समीपे, लीधो संजम भार ॥ ८० ॥ करी छठ छठ पारणां, आयंबिल उछित अहार; श्री वीरे वखाण्या, धन्य धन्नो अणगार ॥ ८१ ॥ एक मास संथारे; सर्वार्थसिद्ध पहोंत; महाविदेह क्षेत्रमां करशे भवनो अंत ॥ ८२ ॥ धन्नानी रीते, हुवा नवेही संत; श्री अनुत्तरोववाइमां, भांखी गया भगवंत ॥ ८३ ॥ सुवाहु प्रमुख पांच पांचसौ नार; तजी वीरपे लीधां, पंच महाव्रत सार ॥ ॥ ८४ ॥ चारित्र लेईने, पाल्यो निरतिचार, देवलोके पहोंत्या- सुखविपाके अधिकार ॥ ८५ ॥ श्रेणिकना पौत्रा, पौमादिक हुवा दश, वीरपे व्रत लेईने, काढयो देहनो कस ॥ ८६ ॥

सयम आराधी, देवलोकमां जई यश, महाविदेह क्षेत्रमां, मो क्ष जास लेई अश ॥ ८७ ॥ वसुदेवना नंदन, निषधादिक कुमार; तसी पचास पचास अते उरी त्याग दियो संसार ॥८८॥ सहु नेमि समीप, चार महाव्रत लीधा; स्वार्थसिद्धि पहोंत्या होसे विदेह सिद्ध ॥ ८९ ॥ धन्नो ने शालिभद्र मुनीश्वरोनी जोड, नारीना बंधन तत्क्षण नाख्यां तोड ॥ ९० ॥ घरकुटुंब कबीलो, धन कंचननी कोड, मास मास खमण तप, टाळस भवनी खोड ॥ ९१ ॥ श्रीसुधर्मास्वामीना शिष्य, धन्य धन्य जंबूस्वाम; तजी आठ अंतेउरी मातापिता धन धाम ॥ ९२ ॥ प्रभवादिक तारा, पहोंत्या शिवपुर ठाम, सूत्र प्रवर्तावी, जग मां राख्यु नाम ॥ ९३ ॥ धन्य ढंढण मुनिवर कृष्णरायना नंद, शुद्ध अभिग्रह पाली टाळी दियो भव फंद ॥ ९४ ॥ वली खंधक ऋषिनी, देह उतारी खाल, परीषह सहीने, भव फेरा दिया टाळ ॥ ९५ ॥ वली खंधक ऋषिना, हुवा पांचसें शिष्य घाणीमां पिल्या, मुक्ति गया तजी रीस ॥ ९६ ॥ संभूतिविजय शिष्य भद्रबाहु मुनिराय; चौदे पूरवधारी, चंद्रगुप्त आण्यो ठाय ॥ ९७ ॥ वळी आर्द्रकुमार मुनि स्थू लीभद्र नंदिषेण अरणिक अइमुत्तो मुनिश्वरोनी श्रेण ॥९८॥ चोवीसे जिनना मुनिवर, संख्या अठावीस लाख; उपर सहस्र अडतालीस, सूत्र परंपरा भाख ॥ ९९ ॥ कोई उत्तम वांचो, मूंढ जयणा राख; उघाडे मुख बोल्यां पाप लागे इम भाख ॥ ॥ १०० ॥ धन्य मरुदेवी माता, ध्याया निर्मळ ध्यान; गज होदे पाया निर्मळ केवलज्ञान ॥ १०१ ॥ धन्य आदरनी पुत्री ब्राह्मी सुंदरी दोय, चारित्र लेईने, मुक्ति गयां सिद्ध होय॥१०२॥

चौवीसे जिननी वडी शिष्यणी चौवीस; सती मुक्ति पहोंत्यां पूरी मन जगीस ॥ १०३ ॥ चोवीसे जिननी, सर्व साधवी सार, अडतालीस लाख ने आठसौ सित्तर हजार ॥ १०४ ॥ चेडानी पुत्री, राखी धर्मसूं प्रीत; राजेमति विजया, मृगावती सुविनीत ॥ १०५ ॥ पद्मावती मयणरेहा, द्रोपदी दमयंती सीत; इत्यादिक सतियां, गई जमारो जीत ॥ १०६ ॥ चोवीसे जिनना साधु साधवी सार; गया मोक्ष देवलोके हृदय राखो धार ॥ १०७ ॥ इण अढीद्वीपमां, घरडा तपस्वी बाल; शुद्ध पंच महाव्रत धारी, नमो नमो त्रि काल ॥ १०८ ॥ ए जतियो सतियोनां, लीजे नित प्रति नामः शुद्धे मन ध्यावो, एह तरणनो ठाम ॥ १०९ ॥ ए जतियो सतियांसूं, राखो उज्वल भाव; एम कहे ऋषि जयमलजी, एह ज तरणनो दाव ॥ ॥ ११० ॥ संवत अठारेने, वरष सातो सिरदार; गढ जोलोरमां एह कह्यो अधिकार ॥ १११ ॥

---

९१ भक्तामर स्तोत्र।

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा-मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम् ॥ सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-वालंबनं भवजले पततां जनानाम् ॥ १ ॥ यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा-दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः स्तोष्ये किलाहमपितं प्रथमं जिनेंद्रम् ॥ २ ॥ बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ, स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ॥

प्रथम आराधी, देवलोकमां जई एथ, महाविदेह क्षेत्रमां, मोक्ष जासे तेह अथ ॥ ८७ ॥ बलभद्रना नंदन, निषधादिक हुवा बार; वली पचास पचास; अते उरी त्यागा दियो संसार ॥८८॥ सहु नेमि समीपे, चार महाव्रत लीधा; स्वार्थसिद्धि पहोंत्या, हासे विदेह सिद्ध ॥ ८९ ॥ धनो ने शालिभद्र मुनीश्वरानी जाड, नारीना बंधन ततक्षण नाख्यां तोड ॥ ९० ॥ घरकुडुव कबालो धन कंचननी क्रोड, मास मास खमण तप, टालसे भवनी खोड ॥ ९१ ॥ श्रीसुधर्मास्वामीना शिष्य, धन्य धन्य जंबूस्वाम; वली आठ अंतेउरी मातपिता धन धाम ॥ ९२ ॥ प्रभावादिक तारा, पहोंत्या शिवपुर ठाम, सूत्र प्रवर्तावी, जग मां राख्युं नाम ॥ ९३ ॥ धन्य ढंढण मुनिवर कृष्णरायना नंद, शुद्ध अभिग्रह पाली टाली दियो भव फंद ॥ ९४ ॥ वली खंधक ऋषिनी, देह उतारी खाल, परीषह सहीने, भव फेरा दिया टाल ॥ ९५ ॥ वली खंधक ऋषिना, हुवा पांचसौं शिष्य घाणीमां पिल्या, मुक्ति गया तजी रीस ॥ ९६ ॥ संभूतिविजय शिष्य भद्रबाहु मुनिराय; चौदे पूरवधारी, चन्द्रगुप्त आण्या ठाय ॥ ९७ ॥ वली आर्द्रकुमार मुनि स्थूलीभद्र नंदिषेण अरणिक अइमुत्तो मुनिश्वरोनी जग ॥९८॥ चोवीसे जिनना मुनिवर, सख्या अठावीस लाख; उपर सहस्र अडतालीस सूत्र परंपरा भाख ॥ ९९ ॥ कोई उत्तम वांचो, मूंढ जपणा रात; उघाडे मुख बोल्यां पाप लागे इम भांख ॥ ॥ १०० ॥ धन्य मरुदेवी माता, ध्यायो निर्मळ ध्यान; गज होद पाया निर्मळ केवलज्ञान ॥ १०१ ॥ धन्य आदेश्वरनी पुत्री ब्राह्मी सुंदरी दोय; चारित्र लेईने मुक्ति गयां सिद्ध होय॥१०२॥

रगनेत्रहारि, निःशेषनिर्ज्झितजगत्त्रितयोपमानम् ॥ बिंबं कलंक-
मलिनं क्व निशाकरस्य, यद्वासरे भवति पांडुपलाशकल्पम्
॥ १३ ॥ संपूर्णमंडलशशांककलात्रलाप-शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं
तव लंघयंति ॥ ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं, कस्तान्निवा-
रयति संचरतो यथेष्टम् ॥ १४ ॥ चित्रं किमत्र यदि ते त्रिद-
शांगनाभिर्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ॥ कल्पांतका-
लमरुता चलिताचलेन, किं मंदराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्
॥ १५ ॥ निर्धूमवर्त्तिरपवर्भिततैलपूरः, कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं
प्रकटीकरोषि ॥ गम्यो न जातु मरुतां चलताचलानां, दीपोऽ-
परस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥ १६ ॥ नास्तं कदाचिदुपया-
सि न राहुगम्यः, स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगंति ॥ नांभो-
धरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः, सूर्यातिशायिमहिमासि मुनींद्रलोके
॥ १७ ॥ नित्योदयं दलितमोहमहांधकारं, गम्यंनराहुवदनस्य
न वारिदानाम् ॥ विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पमकांति, विद्यो-
तयज्जगदपूर्वशशांकबिंबम् ॥ १८ ॥ किं शर्वरीषु शशिनाह्नि
विवस्वता वा, युष्मन्मुखेंदुदलितेषु तमस्सु नाथ ॥ निष्पन्नशा-
लिवनशालिनि जीवलोके, कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः
॥ १९ ॥ ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं, नैव तथा
हरिहरादिषु नायकेषु ॥ तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैव तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥ २० ॥ मन्ये वरं हरि-
हरादय एव दृष्टा, दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ॥ किंवीक्षि-
तेन भवता भुवि येन नान्यः, कश्चिन्मनो हरति नाथ भवांत-
रेऽपि ॥ २१ ॥ स्त्रीणां शतानि शतशो जनयंति पुत्रान्, नान्या
सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ॥ सर्वा दिशो दधति भानु सहस्र

बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिंब मन्य कइच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥ ३ ॥ वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र शशांककान्तान् कस्ते क्षम सुरगुरुप्रतिमोऽपिबुद्ध्या ॥ कल्पांतकालपवनोद्धतनक्रचक्रं को वा तरीतुमलमंबुनिधिं भुजाभ्याम् ॥ ४ ॥ सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश, कर्तुं स्तवंविगतशक्तिरपि प्रवृत्त ॥ प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्यमृगो मृगेंद्रं, नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥ ५ ॥ अल्पश्रुत श्रुतवतां परिहासधाम, त्वद्भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान्माम् ॥ यत्कोकिल किल मधौ मधुरं विरौति तच्चारुचाम्रकलिकानिकरैकहेतु ॥ ६ ॥ त्वत्संस्तवेन भवसंततिसंनिबद्धं, पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ॥ आक्रांतलोकमलिनीलमशेषमाशु सूर्यांशुभिन्नमिवशार्वरमंधकारम् ॥ ७॥ मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद मारभ्यते तनु धियापि तव प्रभावात् ॥ चेता हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु, मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिंदुः ॥ ८ ॥ आस्तां तव स्तवन मस्तसमस्तदोषं, त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हंति ॥ दूरे सहस्रकिरण कुरुते प्रभैव, पद्माकरेषुजलजानि विकासभांजि ॥ ९ ॥ नात्यद्भुतं भुवनभूषणभूत नाथ भूतैर्गुणैर्भुविभवंत मभिष्टुवंत ॥ तुल्या भवंति भवतो ननु तेन किं वा, भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥ १० ॥ दृष्ट्वा भवंतमनिमेष विलोकनीयं, नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षु ॥ पीत्वा पय शशिकरद्युतिदुग्धसिंधो , क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥ ११ ॥ यैः शांतरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं, निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत ॥ तावंत एव खलुतेऽप्यणवः पृथिव्यां, यत्ते समानमपरं नहि रूपमस्ति ॥ १२ ॥ वक्त्रं क्व ते सुरनरा

पादौ पदानि तव यत्र जिनेंद्र धत्तः, पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयंति ॥३२॥ इत्थं यथा तव विभूतिरभूजिनेंद्र, धर्मोपदेशविधौ न यथा परस्य ॥ यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतांधकारा, तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ॥ ३३ ॥ श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल–मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम् ॥ ऐरावताभमिभमुद्धतमापतंतं, दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥ ३४ ॥ भिन्नेभकुंभगलदुज्ज्वलशोणिताक्त–मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभाग ॥ बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि, नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥ ३५ ॥ कल्पांतकालपवनोद्धतवह्निकल्पं, दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम् ॥ विश्वं जिघत्सुमिव संमुखमापतंतं, त्वन्नाम कीर्तन जलं शमयत्यशेषम् ॥ ३६ ॥ रक्तेक्षणं समदकोकिलकंठनीलं, क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतंतम् ॥ आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशंक–स्त्वन्नाम नागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥ ३७ ॥ वल्गत्तुरंगगजगर्जितभीमनाद–माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् ॥ उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं, त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥ ३८ ॥ कुंताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह–वेगावतारतरणातुरयोधभीमे ॥ युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा–स्त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभंते ॥ ३९ ॥ अंभोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र, पाठीनपीठभयदोल्बणवाडवाग्नौ ॥ रंगत्तरंगशिखरस्थितयानपात्रा–स्त्रासं विहाय भवत स्मरणाद् व्रजंति ॥ ४० ॥ उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्ना, शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः ॥ त्वत्पादपंकजरजोऽमृतदिग्धदेहा, मर्त्या भवंति मकरध्वज तुल्यरूपाः ॥ ४१ ॥ आपादकंठमुरुशृंखलवेष्टितांगा, गाढं बृहन्निगडको-

रश्मिं, प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥ २२ ॥ त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांसमादित्यवर्णममलं तमसः परस्तात् ॥ त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयंति मृत्युं नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनींद्र पंथाः ॥ २३ ॥ त्वामव्ययं विभुमचिंत्यमसंख्यमाद्यं ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनंगकेतुम् ॥ योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदंति संतः ॥ २४ ॥ बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्, त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात् ॥ धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात्, व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥ २५ ॥ तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ, तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय ॥ तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय, तुभ्यं नमो जिनभवोदधिशोषणाय ॥ २६ ॥ को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषैस्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश ॥ दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः, स्वप्नांतरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥ २७ ॥ उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख-माभाति रूपममलं भवतो नितांतम् ॥ स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमो वितानं बिंबं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥ २८ ॥ सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे, विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ॥ बिंबं वियद्विलसदंशुलतावितानं तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥ २९ ॥ कुंदावदातचलचामरचारुशोभं, विभ्राजते तव वपुः कलधौतकांतम् ॥ उद्यच्छशांकशुचिनिर्झरवारिधार-मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौंभम् ॥ ३० ॥ छत्रत्रयं तव विभाति शशांककांत-मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम् ॥ मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥ ३१ ॥ उन्निद्रहेमनवपंकजपुंजकांति-पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ ॥

लेख संग्रह.

बचाओ बचाओ जल्दी-बचाओ इस डूबती हुई जातिको जल्दीसे बचाओ।

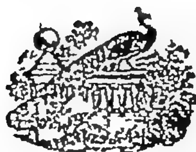
ऐ क़ौम उठ।

ऐ कौम जाग अब तेरे सोनेके दिन गये।
मखमलके तकिये और बिछौनोंके दिन गये॥
मुँह हाथ आठ नव बजे धोनेके दिन गये।
वो खिल्वतें[1] वो मेहफिलें होनेके दिन गये॥
वो किस्से मिट गये, वो जमाना बदल गया।
वो वक्त हो चुका है, वो साया भी ढल गया॥
देखो तो गैर कौमोंने क्या पाया पाया है।
जो हो न सकता था वोही करके दिखाया है॥
रहे रहे कर अपना पांव, कहां तक बढ़ाया है?
उठता न था जो बोझ, वह सर पर उठाया है॥
अब नाम है तो उनका है, इज्जत तो उनकी है।
हशमत[3] है गर तो उनकी हुकूमत तो उनकी है॥
उजड़ी हुई जो बस्ती है, आबाद कीजिए।
उठिए जरा सी हिम्मतो इमदाद कीजिए॥
भूले हुए फिसानेको फिर याद कीजिए।

---

१ एकान्त. २ दर्जा, ३ प्रभाव. ४ बात.

ष्टिनिघृष्टजंघा ॥ त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरंतः सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवंति ॥ ४२ ॥ मत्तद्विपेंद्रमृगराजदवानलाहि–संग्रामवारिधिमहोदरबंधनोत्थम् ॥ तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव, यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥ ४३ ॥ स्तोत्रस्रजं तव जिनेंद्र गुणैर्निबद्धां, भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम् ॥ धत्ते जनो य इह कंठगतामजस्रं, तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मी ॥ ४४ ॥ इति भक्तामरस्तोत्रं ॥



वाले (लडकियोंके मां, बाप, भाई, नाना, काका, मामा, आदि) खास तोरण पर व्याहके खास दिन या तिथि पर अड कर रुपये वसूल करते हैं, नहीं दिये जाते हैं तो बरात (जान) को वापिस ही लौटना पडता है, क्या यह बात जातिके गौरवको घटाने वाली कुछ कम है? यदि तुम इस बातको झूठ मानते हो तो मैं एक ही नहीं, सैकडों उदाहरण इसके तुम्हारे सामने रख सकता हूं। रुपये भी कुछ कम नहीं लिये जाते हैं; १५-१५-२०-२०-२५-२५ हजार तक कीमत आ पहुंची है, दो तीन हजार तो कोई हिसाबमें भी नहीं पकडते है। कहो, गरीबोंका अब क्या होना है? वह तुह्मारे नाम को रोते हैं, रात दिन मनही मन तुम्हें दुराशीश देते हैं, इससे तुम्हारी अवश्य दुर्गति होनेवाली है; क्योंकि तुम जातिमें लीडर (अग्रसर) मुखिया कहलाते हो; सर पंच बजते हो; फिर अपना कर्तव्य समझकर इसका कुछ भी प्रबन्ध नहीं करते हो। जातिके गरीबोंकी इस समय बडी नाजुक स्थिति है। वे विचारे, तुमही बताओ कि ८-८-१०-१०-१५-१५ हजार रुपये व्याहके लिए कहांसे लावें? और कैसे वे गृहस्थी बनें? कैसे अपना जीवन सुखसे व्यतीत करें? कैसे सदाचारी बने रहें। "अपने जाति भाइयोंके खूनके पीनेवालो" मस्त हुए क्यों पडे हो? मुझे मालूम है तुम स्वयं दुराचारी हो इससे तुम अपने जाति भाइयोंको भी दुराचारी बनाना चाहते होगे किन्तु इस पापका प्रायश्चित एक दिन तुमको अवश्य करना पडेगा। अरे, फिर देखो, इस लडकीके रुपये लेनेके रिवाजसे सैकडों नहीं हजारों भाई जातिमें कुंवारे बैठे हुए हैं।

याचद मदद है मुझे, आज़ाद कीजिए ॥
तालीमको दो मदद भी, इसरके वास्ते ।
चन्दे लगादो दूसरी, नेमाके वास्ते ॥
(इसलामसे

ऐ ओसवाल जातिके वीरो !

क्या तुम्हें अभी तक मालूम नहीं है कि—हम क्या कर रहे हैं और क्या करना चाहिए ? क्या तुम लोगोंका यही कर्त्तव्य है कि जिस जातिमें तुम पैदा हुए हो उसकी दुर्दशा अपने नेत्रोंसे देखना ? उसे मिट्टीमें मिलने देना ? उसके सुधारके लिए उसकी उन्नतिके लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं करना, हाथ पांव तक न हिलाना ? उसे यों ही मरने देना ? उसकी चिकित्साके लिए—उसके सब रोग मिटानेके लिए तैयार नहीं होना ? जागो आँखें खोलो, जरा चारों ओर नजर उठा कर तो देखो कि क्या हो रहा है ? देखो, आज इस ओसवाल जातिमें कन्याविक्रयका बाजार बहुत चढ़ा बढ़ा है । हजारों दुर्घटनाएँ प्रति दिन इसके प्रतापसे सुननेमें आती हैं । हमारे जाति भाइयोंको इसके नेग किये जाते हैं बड़ी ही निर्लज्जता और बेशर्मीके साथ रुपये लिये जाते हैं । लोगोंने कन्या विक्रयको एक खास व्यापार—आजीविका मान रक्खा है, पहले तो यह कहीं गुप्त रीतिसे होता रहता था, मगर अब तो यह साफ चौड़े मैदानमें सबके सामने होने लगा है, रुपया गिन

५—आठ पगड़ी,

घाले (लडकियोंके मां, बाप, भाई, नाना, काका, मामा, आदि) खास तोरण पर ब्याहके खास दिन या तिथि पर अड कर रुपये वसूल करते हैं, नही दिये जाते है तो वरात (जान) को वापिस ही लौटना पडता है, क्या यह बात जातिके गौरवको घटाने वाली कुछ कम है? यदि तुम इस बातको झूठ मानते हो तो मैं एक ही नहीं, सैकडों उदाहरण इसके तुम्हारे सामने रख सकता हूं। रुपये भी कुछ कम नहीं लिये जाते हैं; १५-१५-२०-२०-२५-२५ हजार तक कीमत आ पहुंची है, दो तीन हजार तो कोई हिसावमें भी नहीं पकडते है। कहो, गरीवोंका अव क्या होना है? वह तुह्मारे नाम को रोते है, रात दिन मनही मन तुम्हें दुराशीश देते हैं, इससे तुम्हारी अवश्य दुर्गति होनेवाली है; क्योंकि तुम जातिमें लीडर (अग्रसर) मुखिया कहलाते हो; सर पंच बजते हो; फिर अपना कर्तव्य समझकर इसका कुछ भी प्रबन्ध नही करते हो। जातिके गरीवोंकी इस समय वडी नाजुक स्थिति है। वे विचारे, तुमही वताओ कि ८-८-१०-१०-१५-१५ हजार रुपये व्याहके लिए कहांसे लावें? और कैसे वे गृहस्थी वनें? कैसे अपना जीवन सुखसे व्यतीत करें? कैसे सदाचारी वने रहे। "अपने जाति भाइयोंके खूनके पीनेवालो" मस्त हुए क्यों पडे हो? मुझे मालूम है तुम स्वयं दुराचारी हो इससे तुम अपने जाति भाइयोंको भी दुराचारी वनाना चाहते होगे किन्तु इस पापका प्रायश्चित एक दिन तुमको अवश्य करना पडेगा। अरे, फिर देखो, इस लडकीके रुपये लेनेके रिवाजसे सैकड़ो नहीं हजारों भाई जातिमें कुंवारे वैठे हुए है।

हजारों रण्डुयें पड़े हुए हैं। इससे जातिकी जन संख्या भी प्रतिदिन घटती जा रही है। इस राक्षसी रिवाजसे अब वृद्ध विवाहने भी खूब जोर पकड़ा है। २ २ ३ ३ ४ ४ ब्याह (परण) लेने पर, साठ २ सत्तर २, अस्सी २ वर्षोंके हो जाने पर, २-२ ३ ३ लड़के लड़कियाँ, पोते, पोतियोंके होने पर भी वृद्ध महोंसे १०—१२ वर्षकी लड़कीके साथ ब्याह लगाते हैं जो उनके अवस्थाके हिसाबसे देखी जावे तो बेटीके बराबर होती है। आगे वे वृद्ध थोड़े ही समयमें मर जाते हैं, पीछे वह बिचारी रहती है यौवनावस्थामें आती है तब प्रायः नाई, ब्राह्मण, नौकर—चाकर, मुसलमान आदि नीच जातियोंसे या अपने ही घरवालोंसे श्वसुर, जेठ, देवर, भाई, बट आदिकों से छुप २ कुकर्म करती है। जब गर्भ रह जाता है तब सरकार तक न्याय पहुंचता है फिर तुम उसे जातिके बाहर कर लेते हो। फिर वह मतोभ्रष्ट व्रतोभ्रष्ट होकर वेश्या बनकर रहती है। या किसीके साथ चली जाती है। अगर कितने ही काल तक वे बूढे महाराज जीते भी रहते होंगे तो भी क्या हुआ? कहां, १२ १३ १४ १५ वर्षकी कन्या और कहां ६०—७०—८० वर्षके बूढ़े वर महात्मा। क्या उनसे उसकी कामाग्नि शांत हो सकती है? हरगिज नहीं। फिर वह क्या करती है? व्यभिचार! स्पष्ट शब्दोंमें कहूं तो [यदि—तुम व्यभिचारमें नहीं समझते हो तो] औरोंसे अपनी कामाग्नि शान्त करवाती है। इससे क्या होता है? प्रथम तो परम पवित्र शीलव्रतका भंग होता है दूसरा गर्भ रहने पर वर्णसंकर औलाद पैदा होती है। जिससे आगे व अपने धर्मका, कर्मको,

बूढे बडोंके नामको डुबा देती है । क्या इस प्रकार बुरे रिवाजको भी तुम मिटाना नहीं चाहते हो? धिक्कार! धिक्कार!! धिक्कार!!!

बाल्यविवाह ।

इसी प्रकर तुम्हारी जातिमें बाल्यविवाह भी प्रतिदिन हजारोंकी संख्यामें होता है । कई बेजोड विवाह भी होते हैं । देखो, बाल्यविवाहसे क्या अनर्थ हो रहा है—लडके लडकियोंका बचपनमें ही विवाह कर देनेसे शीघ्र ही वे वीर्यहीन हो जाते हैं । उनके शरीरका सगठन मजबूत और सुन्दर नहीं होने पाता, वे वीर्यकी कमीसे निस्तेज, कान्तिहीन बुद्धिहीन निरुत्साही होकर रहते हैं, उनमें न तो व्यावहारिक कामोंको करनेकी ठीक शक्ति रहती है और न धार्मिक कामोंको । वे एक मुर्देकी तरह संसारमें जीते हैं, उनका जीवन संसारमें भार रूप रहता है इस बाल्य विवाह आदि दुष्कर्मोंसे ही आज समाजमें लाखों मनुष्य वीर्य दुर्बलताकी प्रबल बीमारीसे मर रहे है । क्षय, दम, मंदाग्नि, बद्धकोष्ठ आदि अनेक रोगोंके शिकार बने हुए हैं, ऐसे लोगोंकी जो सन्तान होती है वह भी प्राय: उपर्युक्त गुणोंकी धारक ही होती है । यही कारण [बाल्यविवाह ही] है कि आज समाजमें कोई नररत्न पैदा नहीं होता, कोई भाग्यशाली जन्म नहीं लेता, जो इस डूबती हुई जातिकी व धर्मकी नावको पार लगा दे । समाजको एकबार तो फिर ऊँचा ला दे—समाजकी बुराइयोंको सर्वथा मिटा दे; समाजको सुखी नीरोगी दिव्य, पवित्र बना कर रखदे । इस बाल्य विवाहसे ही हजारों लडकोंकी अकाल मृत्यु होती

ई और विधवायें बढती हैं। कहां तक इससे होनेवाली हानि योंको गिनाऊँ? गिनाना मेरी शक्तिके बाहर है। बस इतना ही याद रक्खो कि बालविवाहने समाजकी जडको निर्बल कर दिया है। यह अनकानेक अनर्थोंकी खान है।

अब बेजोड विवाहको लीजिए। इस बेजोड विवाहसे समाजमें व्यभिचार ज्यादह ज्यादह बढता हुआ चला आ रहा है। दुर्गतिका मार्ग साफसीधा हो रहा है। पुरुषोंका एकपत्नी व्रत और स्त्रियोंका पतिव्रत भ्रत हृष रहा है। इत्यादि कई छोटी बडी कुरीतियां तुम्हारे समाजमें भर गई हैं। अरे महानुभावो, तुम लोग जाग्रत क्यों नहीं होते हो? हम तुम्हें बार २ पुकार २ कर कह रहे हैं, मान जाओ। और इन कुरीतियोंको मिटा देनेके लिए एकदम तैयार हो जाओ। अब विलम्बका काम नहीं है। थोडा बहुत भी स्वार्थ त्याग करो, जातिकी भलाईकी ओर ध्यान दो।

ओ ओसवाल जातिके धनाढ्यो!

तुम क्या कर रहे हो? तुम अपने धनको व्यर्थ क्यों लुटा रहे हो? ओसर मौसर ब्याह शादियोंमें रंडियाँ नचानेमें, आतिशबाजीके उडानेमें, कई तरहकी फिजूल कुप्रथाओंमें आवश्यकताके ऊपरान्त इस धनका धुआँ क्यों उठा रहे हो? अर देखो तुम लोग नाना प्रकारके दुष्कर्मोंसे इस धनको पैदा करते हो और फिर इसको बुरे कामोंमें ही–नरकादि गतियोंका बंध बांधनेमें ही व्यय करते हो यह हमें बडा दुःख है। ऐसा

करना तुम्हें हरगिज लाजिम नहीं नहीं है। इस धनसे तुम चाहो तो हजारों पाठशालाएँ, खुल सकती है, हजारों, अनाथालय बन सकते हैं, हजारों विधवाश्रम तैयार हो सकते हैं, सैकडों गुरुकुल खुल सकते हैं। हजारों प्राणिसंरक्षणी संस्थाएं बन सकती हैं, लाखों जीवोंको अभयदान दिया जा सकता है। हजारों, धर्मशालाएं, जातीय संस्थाएं चल सकती हैं। हजारों धर्मोपकरण, लाखों प्रवचन छपाकर संसारमें बाँटे जा सकते हैं। इस धनसे मोक्ष तक मिल सकती है [जो मिलना सबसे कठिन है] और तो क्या कहूं ? परन्तु भाइयो, तुम इस धनका दुरुपयोग कर रहे हो यह देख मेरा हृदय वडा ही संतप्त है। धनका सदुपयोग करना सीखो। जात्युन्नति व धर्मोन्नतिमें इस धनको लगाओ जिससे तुम इस जन्म और परजन्ममें सुखी होओ।

* * * *

ओ ओसवाल जातिके विद्वानो ! तथा कुछ लिख पढ़नेवाले भाइयो ! !

तुम गुप चुप क्यों बैठे हो ? उठो अपनी शक्तिको प्रगट करो। तुमने जो महान् परिश्रम करके ज्ञान प्राप्त किया है उससे समाजका कल्याण करो। समाजको सच्चे सुखका मार्ग बतलाओ अपने जातिसहोदरोंको ज्ञान दान दो, भूले हुओंको फिर मार्ग पर लाओ। उनके कल्याणके लिये तन मनसे परिश्रम करो। तुम जितने जातिमें पढे लिखे हो सब एकमत होकर परस्पर की ईर्षाग्निको त्याग कर बडे जोर शोर से चारों

ओर जात्युन्नतिका आंदोलन मचाओ। अवसर मिलाय मत लो, तुम्हें चाहे कोई भला कहे चाहे बुरा; तुम अपना कर्तव्य करते जाओ, अपने दृढ निश्चय पर डटे रहो, विचलित मत होओ। हर जगह अपने २ मापणों लेखों द्वारा समाजमें चेत करतेही रहो। तुम अपनी आवाजको बन्द मत करो; चिल्लाते ही रहो; चाहे कोई सुने या न सुने। मैं विश्वासके साथ कहता हूं कि–इस प्रकार के निरन्तर प्रयत्न से २५–५० वर्षोंमें इस जातिका अवश्य अच्छा रूपान्तर हो जायगा। वह सुधर जायगी, फिरसे यह उन्नत होगी, फिरसे इसका तेज चारों ओर चमकने लग जायगा।

* * * * *

ओ ओसवाल जातीक गरीबो!

तुम भी कुछ करसकते हो या नहीं? मेरा तो सिद्धान्त है कि–तुम सबसे ज्यादह कार्य कर सकते हो। हां, तुम्हारे पास आर्थिक बल नहीं है यह मैं जानता हूं तो भी क्या हुआ; तुम्हारे लिए भी कई काम पड़े हुए हैं उन्हें तुम करो। तुम जातीय कार्योंमें धन नहीं दे सकते हो तो मत दो। परन्तु शरीरसे कुछ जाति सेवा बजाना स्वीकार करो, स्वयं सेवक बनो, वर्षभरमें एक, दो महीना जाति सेवाका कार्य किया करो। अपनी अपनी जातीय संस्थाओं में जाकर रहा करो धार्मिक संस्थाओंमें रहा करो। मेनेजर, पढ़ाके निरीक्षक, उपदेशक आदिका कार्य किया करो। अपने प्रान्तोंमें घूम २ कर सभाएँ क्या है? उन्नति क्या है?

सुधार क्या है ? समाजकी हालत क्या है ? इत्यादि लोगोंको समझाते रहो । दूसरोंसे संस्थाओंको द्रव्यकी मदद भी दिलाते रहो । संस्थाओंके प्रस्तावोंका–ठहरावोंका सर्वत्र प्रचार करते रहो । अपने जाति भाइयोंको हर काममें–रोगावस्थामें–दु:खावस्थामें मदद पहुँचाते रहो । उनसे प्रेम करते रहो, वात्सल्य भाव बतलाते रहो ।

तुम यों मत समझो कि–हम गरीब हैं क्या कर सकते हैं जो कुछ करेंगे हमारी जातिके धनाढ्यही करेंगे हम तो बहुत छोटे हैं । नहीं, भाइयों, तुम्हारा समुदाय सबसे बडा है, धनाढ्योंका समुदाय थोडा है । तुम सब एक होकर जो कार्य करने लगोगे उसमें धनाढ्योंको शामिल होनाही पडेगा । तुम्हारे बिना उनका कार्य एक पल भर भी नहीं चल सकता । वे धनाढ्य, और बडे हैं तो तुम्हारे पीछे ही हैं । जिस दिन वे तुमसें अलग होंगे उस दिन उनकी मिट्टी खराब होनेमें कोई सन्देह नहीं है । क्या मजाल है कि तुम्हारे बिना उनका सब कारोबार चल सके ? क्या तुम अपने देश या विलायतके मजूर पक्षको नहीं जानते हो, उनका मत सबसे ज्यादह रहता है । और वे कई कार्य कर रहे हैं । उठो, तुम्हारे करने योग्य कार्योंका विचार कर उनके करनेमें लगो ।

* * * *

ओ ओसवाल जातिके धर्मगुरुओ–साधुओ !

तुममें भी कुछ दम है या नहीं ? तुममें भी कुछ शक्ति है या नहीं ? क्या तुम समाजकी रोटियोंको खा खा कर व्यर्थ

ओर जात्युन्नतिका आंदोलन मचाओ । क्षणभर विश्राम मत लो, तुम्हें चाहे कोई भला कहे चाहे बुरा; तुम अपने कर्तव्य करते जाओ, अपने दृढ निश्चय पर डटे रहो, विचलित मत होओ । हर जगह अपने २ भाषणों लेखों द्वारा समाजको सचेत करतेही रहो । तुम अपनी आवाजको बन्द मत करो; चिल्लाते ही रहो; चाहे कोई सुने या न सुने । मैं विश्वासके साथ कहता हूं कि-इस प्रकार के निरन्तर प्रयत्न से २५-५० वर्षोंमें इस जातिका अवश्य अच्छा रूपान्तर हो जायगा । वह सुधर जायगी, फिरसे यह उन्नत होगी, फिरसे इसका तेज चारों ओर चमकने लग जायगा ।

* * * * *

ओ धामवाल जातीक गरीबो !

तुम भी कुछ करसकते हो या नहीं ? मेरा तो सिद्धान्त है कि-तुम सबसे ज्यादह कार्य कर सकते हो । हां, तुम्हारे पास आर्थिक बल नहीं है यह मैं जानता हूं तो भी क्या हुआ; तुम्हारे लिए भी कई कार्य पड़े हुए हैं उन्हें तुम करो । तुम जातीय कार्योंमें धन नहीं दे सकते हो तो मत दो । परन्तु शरीरसे कुछ जाति सेवा बजाना स्वीकार करो, स्वयं सेवक बनो, वर्षभरमें एक, दो महीना जाति सेवाका कार्य किया करो । अपनी अपनी जातीय संस्थाओं में जाकर रहा करो धार्मिक संस्थाओंमें रहा करो । मैनेजर, पढाई निरीक्षक, उपदेशक आदिका काय किया करो । अपने प्रान्तोंमें घूम २ कर सभाएँ क्या हैं ? उन्नति क्या है ?

सुधार क्या है? समाजकी हालत क्या है? इत्यादि लोगोंको समझाते रहो। दूसरोंसे संस्थाओंको द्रव्यकी मदद भी दिलाते रहो। संस्थाओंके प्रस्तावोंका-ठहरावोंका सर्वत्र प्रचार करते रहो। अपने जाति भाइयोंको हर काममें-रोगावस्थामें-दुःखावस्थामें मदद पहुँचाते रहो। उनसे प्रेम करते रहो, वात्सल्य भाव बतलाते रहो।

तुम यों मत समझो कि-हम गरीब हैं क्या कर सकते है जो कुछ करेंगे हमारी जातिके धनाढ्यही करेंगे हम तो बहुत छोटे है। नहीं, भाइयों, तुम्हारा समुदाय सबसे बडा है, धनाढ्योंका समुदाय थोडा है। तुम सब एक होकर जो कार्य करने लगोगे उसमें धनाढ्योंको शामिल होनाही पडेगा। तुम्हारे विना उनका कार्य एक पल भर भी नहीं चल सकता। वे धनाढ्य, और बडे हैं तो तुम्हारे पीछे ही हैं। जिस दिन वे तुमसें अलग होंगे उस दिन उनकी मिट्टी खराब होनेमें कोई सन्देह नहीं है। क्या मजाल है कि तुम्हारे बिना उनका सब कारोबार चल सके? क्या तुम अपने देश या विलायतके मजूर पक्षको नहीं जानते हो, उनका मत सबसे ज्यादह रहता है। और वे कई कार्य कर रहे हैं। उठो, तुम्हारे करने योग्य कार्योंका विचार कर उनके करनेमें लगो।

* * * *

ओ ओसवाल जातिके धर्मगुरुओ-साधुओ!

तुममें भी कुछ दम है या नहीं? तुममें भी कुछ शक्ति है या नहीं? क्या तुम समाजकी रोटियोंको खा खा कर व्यर्थ

हराम ही करते रहोगे या कुछ कर दिखलाओगे? अरे सोचो तुमने गुरुपद धारण किया है; गुरुओंके क्या २ कार्य होते हैं उनको तो जरा याद करो, क्या गुरुओंका यही कार्य है कि समाजकी दुर्दशाको अपने नत्रोंसे देखते रहना? क्या गुरुओं का यही कार्य है कि समाजको अज्ञानताके कीचडमें पड़ा रहने देना? क्या गुरुओंका यही कार्य है समाजकी कुरीतियोंको न हटाना? क्या गुरुओंका यही कार्य है कि समाज सुधारके कामोंमें पाप बतलाना? क्या गुरुओंका यही कार्य है कि अपनी २ पूजा प्रतिष्ठा श्लाघा कराने में ही लगे रहना? क्या गुरुओंका यही कार्य है कि सम्प्रदायों के झगडोंमें पडे रहना और हमारे भाइयोंको परस्पर लडाते रहना? क्या गुरुओंका यही कार्य है कि समाजको समयानुकूल शिक्षा न देना? क्या गुरुओंका यही कार्य है समाज पर अपवित्रता और मूर्खताका कलंक चढाते रहना? क्या गुरुओंका यही कार्य है कि समाजके अनाथ बच्चोंका, निराधार विधवाओंका, निस्सहाय भाइयोंको नष्ट भ्रष्ट होने देना! उनके लिए अनाथालय, गुरुकुल विधवाश्रम आदि स्थापित नहीं करवाना! यदि ये कार्य सुधार नहीं है तो तुम इनके विपरीत प्रयत्न क्यों नहीं करते हो?

* * * *

ओ महात्माओं!

तुमही लोगोंकी लापरवाहीसे समाजका अध पतन हुआ है। तुमही लोगोंकी अज्ञानतासे समाज भी आज अज्ञान हुआ

है। तुमही लोगोंके मलीन विचारोंसे सभाजमेंभी मलीन विचार प्रगट हुए हैं। तुमही लोगोंकी फूटसे समाजमें भी आज इसका प्रबल प्रकोप दिखाई देता हैं। जो कुछ समाज व धर्म की हानि हो रही है उन सबका मुख्य कारण आपही लोग हैं। समाज और धर्म तुम्हारेही आश्रित रहा हुआ है। इसलिए तुम्हें अपने कर्तव्य पहचानने चाहिए। और समयकी ओर ध्यान दे कार्य करने चाहिए। सभी कार्य, शभी नियम, सभी प्रथाएँ हरएक समयमें एकसे लाभदायक नहीं हो सकते। समय समयमें उनमें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता हुआ करती है। जिस समाजके मुखिया, संचालक, धर्मगुरु ऐसा नहीं करते है वे अन्तमें पछताते हैं, सब खो बैठते है।

आप लोग कहेंगे कि "हमें ये बातें मत कहिए; हम तो अपनी आत्मोन्नति कर रहे हैं, हमने इसी लिए चारित्र लिया है।" महात्माओ! ये कहना आपका बिन विचारका है, जैसा आत्मोन्नति करना आपका कर्तव्य है वैसा समाजोन्नति, समाजकी भलाई बुराईकी ओर भी ध्यान देना आपका कर्तव्य है। आत्मोन्नति और समाजका सुचारु रूपसे संचालन करते रहना इसी लिए आपका जन्म है। यदि ऐसा नहीं है तो धर्मोपदेश करनेकी क्या जरूरत है? चेला चेली मूंडनेकी क्या जरूरत है? एक ग्रामसे दूसरे ग्राम घूमते रहनेकी क्या जरूरत है? पुस्तक पन्ना आदि धर्मोपकरण रखनेकी क्या जरूरत है? आत्मोन्नति तो मौनव्रत धारण कर एकान्तमें—वनों, पहाडों, जंगलों आदिमें रहनेसे भी हो सकती है। सांप्रत समयमें आप लोगोंके पीछे कई प्रकारके—प्रापंचिक कार्य लगे हुए देखे जाते

हरामें ही करते रहोगे या कुछ कर दिखलाओगे ? अरे सोचो तुमने गुरुपद धारण किया है! गुरुओंके क्या २ कार्य होते हैं उनको तो जरा याद करो, क्या गुरुओंका यही कार्य है कि समाजकी दुर्दशाको अपने नत्रोंसे देखते रहना ? क्या गुरुओं का यही कार्य है कि समाजको अज्ञानताके कीचडमें पडा रहने देना ? क्या गुरुओंका यही कार्य है समाजकी कुरीतियोंको न हटाना ? क्या गुरुओंका यही कार्य है कि समाज सुधारके कार्योंमें पाप बतलाना ? क्या गुरुओंका यही कार्य है कि अपनी २ पूजा मतिष्ठा म्लाघा कराने में ही लगे रहना ? क्या गुरु ओंका यही कार्य है कि सम्प्रदायों के झगडोंमें पडे रहना और हमारे, भाइयोंको परस्पर लडाते रहना ? क्या गुरुओंका यही कार्य है कि समाजको समयानुकूल शिक्षा न देना ? क्या गुरु ओंका यही कार्य है समाज पर अपवित्रता और मूर्खताका कलंक चढाते रहना ? क्या गुरुओंका यही कार्य है कि समा जके अनाथ बच्चोंको, निराधार विधवाओंको, निस्सहाय भाइयोंको नष्ट भ्रष्ट होने देना ? उनके लिए अनाथालय, गुरु कुल विधवाश्रम आदि स्थापित नहीं करवाना ? यदि ये कार्य तुम्हारे नहीं है तो तुम इनके विपरीत प्रयत्न क्यों नहीं करते हो ?

* * * *

ओ महात्माओं !

तुम्हरी लोगोंकी लापरवाहीसे समाजका आज पतन हुआ है। तुम्हरी लोगोंकी अज्ञानताने समाज भी आज अज्ञान हुओ

एकासे लाभ.

'एका' शब्दका अर्थ यह होता है कि सम्प अर्थात् संसारमें सम्पसे रहना परमोत्तम बात है। सम्पसे बडे बडे कार्य सिद्ध होते हैं। यदि सम्पको ही उन्नतिका जन्मस्थान मानकर मुनि, श्रावक, देशनिवासी, अन्य बंधु सम्पकी ओर विशेष ध्यान देवें तो निःसन्देह समझ लेना चाहिये कि—अब हमारी वा हमारी जाति वा हमारे समाज वा हमारे देशकी उन्नति होना कुछ दूर नहीं है। देखिये! 'प्रशिया' हिंदुस्थानके छोटे हिस्सेसे भी छोटा हिस्सा है। परन्तु वही प्रशिया विद्या और सम्पके प्रतापसे जर्मनीकी शोभाको बढा रहा है। इसलिये ऐसा उत्तम सम्प, जो कि हरतरहका उपकार करनेवाला और हर प्रकारसे प्रशंसाका बढानेवाला है उसकी तरफ ध्यान न देना मानो हमारा दुर्भाग्य है!! सम्प करतेसमय पहिले थोडा परिश्रम पडता है परन्तु अन्तमें उस सम्पसे रस मिलता है, लाभ प्राप्त होता है। उससे क्या क्या परिणाम निकलते हैं इसको आप खुद जानने लगेंगे—इसके कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं। सच्चा सम्प वही है कि—जो प्रतिकूलतासे भी अनुकूलताका काम लेवे, हानिकारकको भी लाभकारक बनावे और विपत्तिका फल सम्पत्तिरूपमें दिखावे। अस्तु! यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो हमारा धर्म सब धर्मोंसे पवित्र और ऊंचा है, इस धर्मको प्रथमसेही

हैं वे फिर क्यों हैं ? उन्हें भी छोड़कर रहिए । मगर, साधुओ, ये सब तुम्हारी बहानेबाजी है—आत्मोन्नतिका आग्रह ढोंग है । तुमसे न तो पूरी आत्मोन्नति ही बन आती है और न समाजोन्नति धर्मोन्नति ही । मैं इस बातको नहीं मानता । आत्मोन्नति सिर्फ असली मार्ग तो तुम्हें ही है । क्या चारित्र (साधु होकर) लेकर परस्पर लड़ना लड़ाना आत्मोन्नति है ? क्या तुम उस साधुका आहार मत दो, उसे वन्दना नमस्कार मत करो वे साधु—साधु नहीं हैं, तू मेरा श्रावक है, दूसरे साधुओंके पास मत जा, इस प्रकार कहते रहनेका नाम आत्मोन्नति है ? क्या एकही परमात्माके अनुयायी होकर भिन्न भिन्न प्ररूपणा प्रवर्तना रखना आत्मोन्नति है ? क्या रागद्वेषके फन्दोंमें रातदिन फँसे रहना आत्मोन्नति है ? क्या क्रोध, काम, मान माया, मोहके रखनेका नाम आत्मोन्नति है ? छोड़ दो, इन आत्मोन्नतिके ढोंगको छोड़ दो । या सच्ची आत्मोन्नति दिखा ओ या हमारे कथनपर ध्यान दो और समयानुकूल आत्मोन्नति समाजोन्नति दोनों करते रहो । या दोनोंही तुमसे न हो सके तो समाजोन्नतिका विरोध करना छोड़ दो । चुपचुप देखते रहो कि क्या क्या होता है, जमाना क्या २ रंग बदलता है । किस तरह करवटें करता है, देखते रहो । तटस्थ हो जाओ । ५

☞ यदि हमारी बातें तुम्हें पसन्द हो तो इस डूबती हुई जातिकी नैयाको पार लगाओ ! — ।

मुनि परमानन्द जैन—निस्पृह

संवत्सरी एक होगी ? हमारे श्रावक शिष्यगण शीतला, गधा, गेडी, कुंभारका चाक, कुगुरु कुदेव कुधर्मका पूजन नमन करना त्यागेंगे ? कन्याविक्रय आदि कुप्रथाओंका काला मुंह करेंगे ? भोजक [सेवक] लोक जो जैन होकर जैनमार्गपर आरूढ नहीं हैं इनका भी कभी विचार करेंगे ? जैनियोंकी एक कॉन्फरन्स सभा, पंचायत होगी ? लोंकागच्छीय यति जो अपनी समाचारी छोडकर विपरीत व्यवहार कर रहे हैं वे भी कभी फिर अपनी असली समाचारीको पकडकर चलेंगे ? जैनियोंके घरोंमें जैन विधिसे संस्कार होंगे ? सत्यनारायण, गणेशचतुर्थी चांद्रायण व्रत आदि मिथ्यात्वियोंके निर्माण कियेहुए व्रतोंके फन्दसे छूटेंगे ? परम पवित्र एक नमस्कार मंत्रको स्थिर चित्तसे ध्यावेंगे ? उसका महत्त्व समझेंगे ? जैन श्वेतांबर, दिगंबर, मंदिरमार्गी, स्थानकवासी, तेरह पन्थी, चौदह पन्थी, बीस पन्थी तारण पन्थी आठ कोटि, छ कोटि, नवकोटि इत्यादि शाखाओंका भी कभी प्रलय (विनाश) होगा ?

परन्तु यह सब उपर्युक्त अभिलाषाएँ हमें स्वमवत् दिखती हैं क्यों कि कुसम्प (फूट] महाराजने हमारे यहां जबर जमाव (डेरा) डाला है—यहां तक कि—कोई कहता है स्थानकवासी झूठा, कोई कहता है मंदिर मार्गी । कोई कहता है दिगम्बर, और कोई कहता है श्वेतांबर झूठा । कोई कहता है हम गर्मजल अच्छी कृत्य नहीं करते तो कोई कहता हैं हम धावन नहीं लेते । कोई कहता है हम स्थानकमें नहीं ठहरते, कोई कहता है हम दुकानोंमें नहीं रहते । कोई कहता हैं हम साबुनसे वस्त्र नहीं प्रक्षालन करते, कोई कहता है मैले वस्त्र रखनेसे प्रायश्चित्त आता

राजा महाराज स्वीकार करते आये हैं । जितने तीर्थंकर, मुनि इस धर्ममें हुए हैं वे सब प्रायः राजवंशीय क्षत्री थे और अब भी जो जैन श्रावक हैं उनका जन्म भी राजवंशसे है और कुछ समय पहले यह धर्म सम्पूर्ण आर्यावर्तमें विराजमान था। और इस धर्मके तत्त्व भी इतने गहन और स्याद्वादशैलीयुक्त हैं कि-बड़े बड़े विद्वान भी (स्वामी शंकराचार्य जैसे) बिना जैनगुरुके क्या मजाल है कि-समझकर रहस्य बता सकें।

इस धर्मके जो साधु उपदेशक हैं-उनकी दिनचर्या रात्रिचर्या मुनिवृत्तिके नियम आदि हमारे वीर भगवानने इस प्रकार बनाये हैं कि उन मुताबिक चलनेसे साधु किसीको अप्रिय और दुःखदायी मालूम न हो। परन्तु महा शोक है कि जब यह धर्म ऐसा शुद्ध, निष्पक्षपाती है, तब इसकी यह दशा क्यों' कि आज हिंदुस्थानमें ३१ करोड मनुष्य रहते हैं जिनमें जैन धर्मानुयायी जन (जैन नाम धरानेवाले) सिर्फ बारह ही लाख हाय! हाय! आज यह शब्द लिखते मेरी लेखनी थर थर कांपती है और मेरे नेत्रोंमेंसे अश्रुधारा (पचास करोड जैन से आज १२ लाख तक नौबत आ गुजरी इससे) बहती है और मेरी वाणीमेंसे बार-बार यह उद्गार निकलते हैं कि हे शासन नायक देव! हमारे धर्मकाभी कभी उदय होगा' हमारी एक ही करनी एक ही रहनी एकही आचार विचार एकही वेष एकही आदेश उपदेश एकही गच्छ एक ही समुदाय एक ही आचार्य होंगे? हम सब जैनमुनि परस्पर अति प्रेमसे हाथसे हाथ मिलाकर मिलेंगे? एक नयाही सम्पूर्ण आचार विचारका संशोधन करेंगे? और वो भी शुभ दिन आवेगा कि सबही

एका [सम्प] नहीं है, संगति नहीं है और मित्रता नहीं है, जब हमारे विचार आपसे और आपके विचार हमसे अच्छे प्रकार एक हो जायँ क्योंकि जहां सुमति है वहां सम्पत्ति है, जहां सुमति नहीं वहां सम्पत्ति भी नहीं के तुल्य है, इस लिये एका करना परमोत्तम और परमावश्यकीय है।

अब सम्पके विषयमें कुछ थोडेसे उदाहरण देकर इस लेख को समाप्त करूंगाः—

(१) देखो! जिस घरमें चार भाई हैं और वे एकही जगह एकही विचार-सम्पसे रहते है और कार्य करते हैं तो संसारमें उसकी वाहवाही [शोभा] होती हैं, इज्जत बढती है, "बंधी मूठी लाखकी" कहावतके अनुसार लक्ष्मीकी शतगुणी झलक दीखती है, वैरी दुश्मन भी डरता रहता है, क्योंकि वह ऐसा विचारता है कि मै अकेला हूँ और ये चार है, इनसे कभी फतह नहीं पाऊंगा यदि वेही भाई अलग अलग हो जाय तो लोग भी नाम रखने लगते हैं, इज्जतमें कमी आ जाती है, लक्ष्मीका भी भरम खुल जाता है, शत्रुभी सबल हो जाता है. इत्यादि बहुतसे दुःख उठाने पड़ते है।

(२) जो शाक तरकारी बनाई जाती है उसमें यदि लोण मिर्च मसाले न डाले जाय तो वह स्वादिष्ट नहीं होती है। और जो उसमें भी अच्छी तरह लोण मिर्च आदि पदार्थ डाल कर बनाई जाय तो अधिक स्वादवाली होगी, और खानेके समय ठीक प्रतीत होगी। इसी तरह आप भी सब मिलकर रहेंगे, कार्य करेंगे तो जनसमाजको विशेष प्रिय और अच्छे लगेंगे।

है। कोई एकही रंगमें दो बार प्रतिक्रमण करता है। कोई कायोंत्सर्गमें ४।८।१६।२ ।४० लोगस्सका ध्यान करता है। कोई चार ही लोगस्सका ध्यान करता है। कोई उदयतिथि मानता है और कोई अस्ततिथि। कोई कहता है साधुओंको टिकट लिफाफे रखना, और कागज चिट्ठी लेख वगैरह लिखना और छपाना चाहिये, कोई कहता है नहीं कोई कोई साधु पक्खी संवत्सरी सम्बन्धी खमत खामणा अर्थात् क्षमा याचना भी नहीं करते हैं। यदि कहीं अकस्मात् एकसे दूसरा साधु मार्गमें दोखपड़े तो एक सौकदम, और दूसरा दोसौ कदम दूर भागता है। अब कहिये! जब हमारे धर्मकी यह स्थिति है तब हमारी मनेच्छायें आकाशके पुष्पवत् नहीं हैं तो और क्या है?

हे समाजके नेताओ! पूज्यपाद मुनिवरो! आचार्यो! धर्म रक्षको! धर्मोपदेशको! धर्मगुरुओ! आवधानिको! मागधी संस्कृतके ज्ञाताओ! विद्याके समाष्ठियो! उन्नतिके इच्छुको! समाज सुधारको! (मेरे वचन आपको अवश्य कटु लगेंगे यह मैं भली भांति जानता हूं परन्तु " बुरे लगत सिखा वचन मनमें सोचहु आप। कडुवी औषधि बिन पिये, मिटत न तन का ताप " यही बात मनमें लाकर कहता हूं। यदि आप उक्त बातोंकी मतमदता नहीं मिटाओगे तो आपके धर्मका बहुतसा तो नाश हो गया है, और किंचित् मात्र शेष रहा है वो भी अल्प ही कालमें हो जायगा। मैं आपका नम्र कटु दोनों प्रकारके वाक्य प्रहार देता हूं, यदि द्वितीय भेदकी सत्ता [पुरुषार्थ] आपमें प्रस्तुत हो तो उठो! कमर बांधो! ध्वस्त [सेव] होनेके लिए घोर परिश्रम करो! जबही ये व्याधियां दूर होंगी।

धनका सदुपयोग ।

धनोपयोगः सत्पात्रे यस्यैवास्ति स पण्डितः ।
गुरुशुश्रूषणे चायुः चित्तं सज्ज्ञानचिन्तने ॥

साम्प्रतमें अपने जैनसमाजकी जितनी धार्मिक संस्थाएँ हैं उनको श्रीमन्तोंकी ओरसे जितना उदार आश्रय मिलना चाहिये उतना बिल्कुल न मिलनेसे द्रव्यके अभावसे वे अच्छी अच्छी समाजोन्नतिकारक संस्थाएँ बराबर नहीं चलती हैं; सबब यह है कि–जो धनसम्पन्न श्रावक है उनमेंसे बहुतसे ऐसे हैं कि समाजके हितके विषयमें पूर्णरूपतः चिन्तारहित हैं।

समाजके बारेमें मनुष्योंके मनमें चिन्ता, वात्सल्य, हितबुद्धि, ममत्व और निष्कपट प्रेम जागृत रहनेसे धर्मकी, जातिकी और देशकी उन्नति हो सकती है ।

वर्त्तमान कालमें समाजसुधारके लिये किन बातोंकी आवश्यकता है? और समाजकी उन्नतिके लिये क्या क्या करना श्रेष्ठ है? सुधार किस रीतिसे होगा? ऐसे ऐसे उपाय विचारने सोचने देखनेकी अत्यन्त जरूरत है। इस प्रकार विचार जब हमारे धनाढ्य श्रावक करेंगे तभी बडी बडी बोर्डिंगें खुलेंगी, जीवदया प्रचारक संस्थाएँ स्थापित होंगी, कई साप्ताहिक पाक्षिक मासिकपत्र हमें पढनेको मिलेंगे, और शास्त्रसभा, अनाथाश्रम, प्रशंसनीय पुस्तकालय, स्कॉलरशिप–फंड प्रगट होंगे।

(३) बन्दर पशु कितने छोटे होते हैं परन्तु जब वे एका कर आ पड़ते हैं तब बड़े बड़े बलवान् मनुष्योंको परास्त कर देते हैं ।

(४) कच्चा सूत किसी कामका नहीं है परन्तु उसका बहुतसे तार इकट्ठा कर रस्सी बना ली जाय तो जबरदस्त हाथी भी बंध सकता है। और भी कई कार्य उससे होते हैं ।

(५) जिस राज्यमें एका है वह राज्य बहुत दिनोंतक टिकता है ।

(६) बहुमत सरकारभी मंजूर करती है ।

[७] एका कर व्यापार करनेसे अतिशय लाभ मिलता है । देखो! रॉली ब्रदर्स और रेलवे कंपनियोंको!

इन उपर्युक्त उदाहरणोंसे आप जान गये होंगे कि एकासे क्या लाभ है । फिर एकबार याद दिलाता हूं कि एका [सम्प कीजिये, कुसम्पको दूर भगाइये । इत्यलम् ।

—मुनि परमानन्द जैन ।

जोरी खाली हो जाती है और हाथमें तंगी आ जाती है। हाय हाय कैसा अन्याय है !

विवाहमें पान सुपारीमे जितने पैसे व्यर्थ व्यय करते है उतने यदि धार्मिक फंडमे अलग निकालें तो प्रतिवर्ष हजारों रुपये इकट्ठे होना कुछ वडी बात नहीं है।

हे धनाढ्य श्रावको! विचार करो!! विचार करो!!! अपने समाजकी उन्नति करनेमें जब तुमहीं मदद न दोगे तो दूसरा कौन देगा? समाज सुधारकी तरफ नजर भी नहीं करते हो, यह कितना अन्धेर है!

मारवाड [राजपूताना] में जोधपुर, बीकानेर, नागोर, नयाशहर, (ब्यावर) पाली वगैरह शहरोंमें हमारे स्थानकवासी श्रावकोंका वडा जोरशोर है, जिनमें अभीतक एक भी अच्छी धार्मिक संस्था नहीं खुली है। हाय अफसोस! अफसोस!!

यह भूल किसकी है? हमारी; क्योंकि हम साधु लोग श्रावकोंको सन्मार्गमें धन व्यय करनेका उपदेश नहीं करते है जिनसे हमारे प्रायः मारवाडी श्रावक पापके कामोंमें " सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयान्ति " पैसे, जैसी चीजको फजूल उडाते है।

मूर्तिपूजक भाई पैसोंका पत्थर करते हैं, प्रतिवर्ष लाखो रुपये वडी वडी पूजा, प्रतिष्ठा, नये नये मन्दिर बनवाने आदि कार्योंमें बरबाद करते हैं, परन्तु हमारे कंजूस श्रावकोंसे तो वे सुधरे हुए हैं, क्यों कि, दिन दिन उपर्युक्त कामोंको घटाते हैं, लाखों रुपयों-

श्रावक धनी होकर जबतक लक्ष्मीको सत्कार्य, लोकोप योगी कार्य, जाति और धर्मोद्धार करनेमें व्यय कर जन्म सफ ल करने और सद्गति मिलन का मार्ग नहीं खोलेंगे तबतक वे नामधारी ही श्रावक हैं! धनमे गरीबोंके दुःख दूर किये जाते हैं, विद्यावृद्धिका साधन उत्पन्न किया जाता है, अन्य अन्य उपर्युक्त समाजोन्नतिक कार्य चलते हैं और पुण्यका शुभ बन्धन पड़ता है, तब ऐसे सत्कर्मोंमें धनका सदुपयोग करना क्या अच्छा नहीं है?

पाठकवर्ग! हमारे मारवाड़ी जैनी जितने फजूल कामोंमें धनकी धूल करते हैं वे कमी करके उसमेंसे यदि आधा हिस्सा भी समाजोन्नतिकी संस्थाओंमें मदद देना शुरू करें तो जैन प्रजाकी १५ वर्षके अन्दर अन्दर उन्नति हो सकती है।

वाचक महानुभाव! ऐसे ऐसे श्रावक देखनेमें आते हैं जो धनवान होकर भी कान्फरन्सका पावला फण्ड देनेमें इन्कार करते हैं। कोई धार्मिक कार्यमें मदद मांगता है तो मुहका रंग बदलकर गरीबी बताते हैं, हर दाम उपावने हाथमें तगी कहकर छूट जाते हैं।

लड़के लड़कियोंकी शादीमें शक्तिके बाहर भी कर्ज करके मंडप बनाना, हंडियां झुमर झुकाना, किटसनके दीपक लगाना गटियों नचाना, सेवक भाटजनोंको हजारों रुपये लुटाना, बड़ी बड़ी इमारतें बनवाना, मोटार साईकल लेना इत्यादि एम एस पापके कामोंमें तो हमारे मारवाड़ी श्रावकोंके हाथ पांव पथ हो जाते हैं। केवल पुण्यके मार्गमें पैसा देनेसे वि

जोरी खाली हो जाती है और हाथमें तंगी आ जाती है। हाय हाय कैसा अन्याय है !

विवाहमें पान सुपारीमे जितने पैसे व्यर्थ व्यय करते है उतने यदि धार्मिक फंडमें अलग निकालें तो प्रतिवर्ष हजारों रुपये इकठे होना कुछ बडी बात नहीं है।

हे धनाढ्य श्रावको! विचार करो!! विचार करो!!! अपने समाजकी उन्नति करनेमें जब तुमहीं मदद न दोगे तो दूसरा कौन देगा? समाज सुधारकी तरफ नजर भी नहीं करते हो, यह कितना अन्धेर है!

मारवाड [राजपूताना] में जोधपुर, बीकानेर, नागोर, नयाशहर, (ब्यावर) पाली वगैरह शहरोंमें हमारे स्थानकवासी श्रावकोंका बडा जोरशोर है, जिनमें अभीतक एक भी अच्छी धार्मिक संस्था नहीं खुली है। हाय अफसोस! अफसोस!!

यह भूल किसकी है? हमारी; क्योंकि हम साधु लोग श्रावकोंको सन्मार्गमें धन व्यय करनेका उपदेश नहीं करते है जिनसे हमारे प्रायः मारवाडी श्रावक पापके कामोंमें "सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयान्ति" पैसे, जैसी चीजको फजूल उडाते है।

मूर्तिपूजक भाई पैसोंका पत्थर करते हैं, प्रतिवर्ष लाखो रुपये बडी बडी पूजा, प्रतिष्ठा, नये नये मन्दिर बनवाने आदि कार्योंमें बरबाद करते हैं, परन्तु हमारे कंजूस श्रावकोंसे तो वे सुधरे हुए हैं, क्यों कि दिन दिन उपर्युक्त कामोंको घटाते हैं, लाखों रुपयों-

का खर्चा मन्दिरोंका निभाकर भी हर साल १५००००) रुपये अपने धर्मगुरुओंकी सभामें लगाते हैं। जैन स्थानकवासियो! जागो! जागो! सब धर्मवाले अपने अपने समाजकी उन्नति कर रहे हैं। ऐसे शान्तशील न्यायपरायण वृटिश गवर्नमेन्ट सर्कारके समयमें अगर आत्मोन्नति, धर्मोन्नति नहीं करोगे तो फिर कब करोगे?

वर्तमान समयमें जिन बातोंकी खामी है उनको दूर करो। अच्छे अच्छे शहरोंमें और गांवोंमें जातिके बालक, बालिकाओंको सुलभ रीतिसे धार्मिक और लौकिक शिक्षण मिले एसी संस्थाएं स्थापित करो। गरीब विधवाओंका पोषण करने के लिये जो जो फंड हैं उनमें द्रव्यकी सहायता दो। जो बिरादरीमें हानिकारक रिवाज चलते हैं उनको बन्द करो। हर रोज किसी भी धार्मिक खातेमें पाई, पैसा, आना रुपया जैसी पैदाइश और शक्ति हो तदनुसार अलग निकालनेका प्रण करो।

जैन भाइयो! आप इस बातको तो विचारो कि—जिस नगर या गांवमें स्वधर्मियोंके १०० घर हैं वे एका [सम्प] करके अपने अपने घरमें या दुकानमें एक धर्मदा पेटी लगाकर नित्य एक पैसा डालें तो वर्षमें ५॥=) पेटीमें जमा हो जाते हैं सो घरके ५६२॥) हुए, और इन ५६२॥ रुपयोंसे एक अच्छी जैन पाठशाला चल सकती है एक साथ ५॥=) देना बडा कठिन मालूम होता है इसलिये, धीरे धीरे यह पुण्यसंचय गरीबसे गरीब श्रावक भी कर सकता है।

मारवाड राजपूतानेमें एसे कई शहर और गांव हैं कि जहां

स्थानकवासी श्रावकोंके सौ सौ दो दो सौ तीन तीन सौके ऊपर घर है, वहां जैनपाठशाला स्थापित करनेमें क्या जोर पडता है? नहीं, नहीं. जैन पाठशाला खुलनेसे स्थानकवासियोंकी उन्नति हो जायगी।

'वाह ! वाह !! क्यों ठट्ठ करते हो ? ।' (श्रावक) 'ओ हो, आप सच्ची कहनी भूल गये' (मुनि) 'क्यों ?' (श्रावक) 'अजी महाराज ! जैन शालामें लडके लडकियां कच्चा पानी पियें. उनका पाप चिप जाय।' (मुनि) 'ओह ! वडे धर्मात्मा. !! पाप काहेका चिपता है, पैसे लगते है।'

भाइयो ! एक ही दिनमें हजारों रुपयोंकी राख करके मरे हुएके पीछे जातिभोजन देनेमें आप वडी नामवरी मानते हो' परन्तु जरा खयाल करो कि–जितने रुपये नुखतों [औसर] में खर्च करना विचारते हो उन रुपयोंको मां वापोंके नामसे अलग निकालकर सेठ साहूकारोंमें जमा कराके व्याजसे जो रुपये उत्पन्न हों उनको समाजसुधारमें लगानेसे कैसा लाभ मिले ? कैसा नाम हो ?–पाठक स्वयंविचार करें।

घरमेंसे फजूल खर्च घटाकर समाजकी हीनावस्था जिस रीतिसे दूर हो सके उसी काममें धनका सदुपयोग करो। मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक पत्रोंमेंसे समाजसुधारके लेख अच्छी तरहसे पढ़कर अपने घरवालोंको और मुहल्लेवालोंको सुनाकर अमलमें लानेकी कोशिश करो।जिनसे धनका सदुपयोग करनेका मार्ग मालूम होगा।

समाजहितैषी लेख पढ़ या सुनकर ऐसा मत कहो कि, बहुत बकते हैं, कौन सुनता है, क्या होता है ? कागज काले करते हैं,

ये बडे धर्मात्मा समाज सुधारक उठे हैं इत्यादि। --

जिनके मुँहसे ऐसे एसे उपर्युक्त शब्द निकलने लगे उनमें विद्याविवेक विचार और उदारताकी न्यूनता समझ लेना।

इस लेखका सारांश यह है कि धनका सदुपयोग करना सीखिये! सीखिये!!

अब एक छोटासा पद लिखकर इस लेखको पूर्ण करता हूँ:-

(गजल कव्वाली।)

अब तो हो जाओ हुशियार, धनका धूआँ उठाने वाले (टेक)

निज धर्म कर्मको छोड, कर छल कपट तन तोड,
महा मिहनतसे धन जोड, मानो मिट्टीमें मिलानेवाले॥ १॥अब०

जो हैं स्वाधिभाई नादार, नहीं करते उनकी सार,
जा भगवे कृष्ण द्वार उनका पैसा लुटानेवाले॥ २॥ अब०

फागी गाली ऊंची आवाज, तुम्हारी गाती नारी-समाज,
नहीं आती है तुमको लाज रंडियोंको नचानेवाले॥ ३॥

जर्मन अमेरिका जपान, कैसे देश हुए धनवान
जिनका धर्म कर्मी बयान, विदेशी बैण्ड बजानेवाले॥ ४॥

तुम किसके हो सन्तान, कर लो इतिहास बांचकर ज्ञान,
जैनी हो जाओ बलवान उत्तम [1] नाम धरानेवाले॥ ५॥

(मुनिसे)

---

१ गरीब स्थितिवाले

कम से कम चार चार इस लेख को पढिये।

एक नई योजना.

सुधारका राम-बाण-उपाय.

सैकडों वर्षों का कार्य एक वर्षमें समाप्त।

जरासी हिम्मत, मिहनत और समाज हित की भावना की जरूरत है।

यह बात-समाज के प्रत्येक व्यक्ति को भली भांति ज्ञात होगी कि-जैन समाज में 'सुधार' का आन्दोलन लग भग २५-३० वर्षों से चला आ रहा है। इस के लिये-आज तक कई संस्थाओं, कॉन्फरन्सों और कई समाचार-पत्रों का जन्म हो चुका। और कई जन्म ले ले कर मर भी गये। और कई विद्यमान भी हैं। सबों ने अपना २ बल दिखाया-महासभाओं-कॉन्फरन्सों-अधिवेशनों-महाधिवेशनों ने भर भर कर रंग उडाया, समाचारपत्रोंने जनता को नरम गरम बातें कह२ कर अपने कलेजे की आह ठण्डी की, उपदेशकों ने बक बक अपनी जबानको दुखाली, लेखकों के लेख लिखते २ हाथ थक गये-पर, समाज अभी तक ज्योंकी त्यों बनी हुई है। ध्यान से सिंहावलोकन किया जाता है तो स्पष्ट दिखाई देता है कि सिवाय 'सुधार' की पुकार के आज तक अणु-मात्र भी उद्देश्य सिद्धि न हुआ।

"इस का मूल कारण क्या है ?" इस पर मैं कई वार विचार कर चुका हूं । आजतक के मेरे विचार और सामाजिक अनुभव से अपने हृदय में मुझे यही उत्तर मिला कि-इस पाप के-इस समाज-अवनति के-इस समाज के अध पतन के भागी -हमारे साधु हैं-जो कि आज ले ढाई हजार की संख्या में मौजूद हैं आत्मोन्नति का ढोंग लिये संसार में फिर रहे हैं -जिन से न तो आत्मोन्नति ही बनती है और न परोपकार, इस लिए व समाज पर भार रूप हैं, लोगों को तो उपदेश करते हैं कि क्रोध मान, माया, लोभ, राग, द्वेष को त्यागो पर उन के हृदय में उक्त छहों ही विकार लबालब भरे हुए हैं* मैं जो यह लाइनें ऊपर लिख आया हूं-इसे पाठक अक्षरशः सत्य २ समझें क्यों कि-जो कुछ-मैं कहता हूं वह अनुभव सिद्ध ही कहता हूं न कि-किसी की कही, सुनी। अब असली विषय और कहने का सारांश यह है कि-जिन का समाज पर असर है समाज जिन को तरण तारण समझता है; जिनके झूठे -आत्मोन्नति के ढोंगोंपर-पर समाज तन, मन और धन न्यौछावर करता है समाज का जिनपर अन्ध विश्वास है वे तो इस के हितके लिये कुछ भी नहीं करते हैं । करते हैं-समाज को डुबाने का काम; बताते हैं, अपनी मान, प्रतिष्ठा, श्लाघा महिमा आदि बढाने के काम । कहिए, बधुओ ? अब समाज सुधार कैसे हो ?

अगर कोइ-मेरे जैसा-क्षुद्र व्यक्ति, उन महात्माओं-तरण

---

* उदाहरण के लिए देखना हो तो देखिये पूज्य पदवियों के झगडे जो कि लिखहाड में चल रहे हैं ।

तारण की जहाजों-दयाव्रतारों और आत्मोन्नति का पुच्छल्ला लटकाये हुए फिरनेवाले बहुरूपियों से कहे कि-आप इन आत्मोन्नति के ढोंगों को थोड़ी देर के लिए दूर रख 'समाज सुधार' के कार्य मे लागिए तो उत्तर देते है-"इस प्रपंच (समाज सुधार) मे हमें क्या काम? हम तो साधु हैं। आत्मोन्नति के-लिए (उनके आत्मोन्नति का अर्थ यह है कि समाज को ठगने के लिए और उसका सर्वस्व लूटनेके लिए) संसार छोड़ा है; यह तो पाप का कार्य है: जो साधु इस काम में पड़ते है, वह साधु, साधु नहीं है (मेरे ख्याल से जो इस काम को नहीं करते है वह, साधु साधु नहीं है.) आदि आदि कई प्रकार का ढोंगी उत्तर हमें मिलता है। परन्तु महान् खेद और घृणा का विषय है कि—क्या उन को अपने कार्यों की-अपने उन प्रपंचों की स्मृति नहीं है-जो बड़े उत्साह और बड़ेप्रेम से किये जाते है और उनको प्रपंच दिखाई नहीं देते है मैं उन से पूंछता हूं कि-क्या पूज्य पदवियों की लड़ाई प्रपंच नहीं है? क्या जिस क्षेत्रमें चौमासा किया जाता है वहां पत्रिका छपा २ कर भेज २ हजारों लोक बुलाए जाते है और आठ दिन पर्यूषण में-असंख्य जीवों का संहार किया जाता है, प्रपंच नहीं है! क्या छाछ और आछ के आगार से दो २ तीन २ चार २ महीना की तपस्या कर पत्रिका भेज २ जन समूह इकट्ठा किया जाता है प्रपंच नहीं है! क्या चेला और चेलियों के वास्ते जो सैकड़ों छल, कपट, दंभ किये जाते हैं प्रपंच नहीं है? क्या वह मेरा क्षेत्र और यह तेरा, कहना प्रपंच नहीं है? क्या आचार और विचार की भिन्नता

दिखलाना प्रपंच नहीं है ? क्या आ मारवाड़, मालवा आदि में देशी और परदेशी साधुओं का मानापमान किया जाता है— अर्थात् परदेशी साधुओं के श्रावक देशी साधुओं का और देशी साधुओं के श्रावक परदेशी साधुओं को परस्पर वंदना नमस्कार—आहार, वस्त्र पात्र स्थानक आदि नहीं देते हैं, प्रपंच नहीं है ? कहां तक लिखूं और कहूं ऐसी प्रापंचिक बातें अन्यतर सैकड़ों बातें हैं जिन का हमारे साधु बड़े हर्ष और आनन्द पूर्वक करते कराते हैं। और जहां समाज सुधार के लिए उन्हें कहा जाता है वहां यह प्रापंचिक कार्य है साधु के लिए [हम]" त्याज्य है " यह कह कर छुट जाते हैं चुप हो जाते हैं, मौन ग्रहण कर लेते हैं। देखा, पाठको ! आप के साधुओं का स्वार्थीपना ! मतलबीपना !! और समाजघातकपना !!! क्या आप ऐसों ही का साधु कहते हैं गुरु मानते हैं ? मैं तो यह कहूंगा कि ऐसे साधुओं से तो अगर समाज सदा के लिये निस्साधु हो तो अच्छा है।

खैर, अब मैं उसी विषय फिर आता हूं—जिसका हेडिंग आप आरम्भ में देख चुके हैं।

यहां तक तो कुछ बातें आज कल के साधुओं की वर्तमान परिस्थिति पर कहीं। पर अब सुधारका मार्ग क्या है?—कैसे शीघ्र सुधार हो सकता है—और यह कार्य किस ढंग से किया जाय ? आदि आदि बतलाना चाहता हूं सुनिये —

श्रावक समाज के दो, ढाई—हजार साधु हैं, यह मैं पहले ही कह आया हूं। वे सभी फिरने (घूमने) वाले हैं, प्रत्येक

देश प्रत्येक प्रान्त--प्रत्येक तालुका में-प्रति वर्ष-अलग २ चातुर्मास करते हैं। उनका यह कर्तव्य है कि-प्रत्येक साधु-जिस तालुके में चातुर्मास करें उस तालुका के धनिकों को पहिले एक जगह बुलावें। और उनको समाज सुधार का विषय समझाते हुए, उनकी सम्मति से उनके हस्ताक्षरों से-"तालुका सभा" की आमन्त्रण पत्रिका निकलवावें।" जब तालुका के सब लोग आचुके तब ये विषय उनके सामने रक्खें कि-

(१) प्रत्येक तालुका में पाठशाला की आवश्यकता.

(२) कन्या विक्रय से हानि,

(३) बाल्य विवाह से हानि,

(४) वृद्ध विवाह से हानि,

(५) जाति के-अनाथों विधवाओं के पालन पोषण की आवश्यकता,

इन पांच विषयोंपर उन्हें उपदेश करें। और धनिकों की मदद तथा अपने साधुत्वके प्रताप से इस प्रकार लेखी ठहराव (प्रबन्ध) करादे -

[१] एक तालुका पाठशाला खोल दी जाय,

[२] हम लोग कन्या विक्रय नहीं करेंगे अगर कोई बहुतही गरीब होने के कारण कन्या विक्रय करना चाहें तो-हजार-रुपये-तक कर सकेगा। जो यह काम लाचारीसे करेगा-उसके यहां-शक्कर न गल सकेगी और पंच जीमने न जायंगे। और जो हजार से ऊपर कन्या विक्रय करेगा-वह जाति बाहर होगा अथवा इतना रुपया दण्ड देना होगा।"

[३] तेरह वर्ष के पहले लड़की का और अठारह-वर्ष के पहले लड़के का कोई विवाह नहीं कर सकेगा।

[४] ३५-तथा ४० वर्ष के बाद कोई शादी नहीं कर सकेगा। अगर कोई किसी कारण से करना चाहे तो पंचों की अनुमति से कर सकेगा। अन्यथा नहीं।'

[५] तालुका के गरीबों अनाथों, भाई बहिनों के लिये एक फन्ड रक्खा जाय और उसके द्वारा उनके पालन पोषण की व्यवस्था की जाय।

-शेष, फिर जो जो उस तालुका के लिए उचित दिखें-व प्रबन्ध किये जाय।

इस प्रकार ठहराव एक कागजपर लिखकर उसपर उस तालुका के प्रत्येक व्यक्तियों की सही लेनेका-कार्य किया जाय तो-मैं दृढ़ प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूँ-' सैकड़ों वर्षों का कार्य एकही वर्ष में समाप्त हो जाय। -

जब एक तालुका में यह सुधार हो जाय तब वह साधु-दल तालुका का छोड़ कर दूसरे तालुका में प्रवेश करें (जाय) और वहां भी उपयुक्त आन्दोलन [हल चल] मचाना शुरू करें।

* * * * * *

बंधुओ!

यह कार्य [सुधार का कार्य] हमारे दो ढाई हजार साधुओं के द्वारा सहज ही में थोड़े समयमें थोड़ी मिहनत से और थोड़ेसा समाज हितकी भावना दिलमें रखने ही से पूरा हो

सकता है। और कई—वर्षोंकी समाज सुधार की पुकार कई सभाओं, संस्थाओं और समाचार पत्रों की मांग पूरी हो सकती है। इसमें आपको व आपके उन साधु महात्माओं का क्या नुकसान है, जो करने के लिये आनाकानी करेंगे? पर बात यह है कि—आपको अपने साधुओं को जगाना चाहिए। इस विषय के लिए उनको आग्रह पूर्वक कहना चाहिए, मैं जैन—पथ—प्रदर्शक, जैन जगत् और कान्फरन्स प्रकाश पत्र के सम्पादकों से भी—निवेदन करता हूं कि—प्यारो, समाज सुधारके ठेकेदारो? आप लोग भी—इस विषयपर अपनी २ लेखनी को जरा कष्ट दें। समय की आवश्यकता को पहचाने। जिस विषयकी पत्रों में आन्दोलन करनेकी जरूरत है जिसके जागृत होनेपर ही सुधार का आधार है, उस विषयको प्रथम हाथ में लें" इसके अतिरिक्त—आप लोग चाहें उतना महा भारत (उद्योग) मचावेंगे तो भी कुछ न होगा। इसे आप निश्चय समझिए। पर, यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि—इस के लिए एक, दो, साधुओं से कुछ न होगा। प्रायः सबको तैयार करना चाहिए।

अब मैं—अपने साधुओं को फिर कुछ कह कर इस लेख को समाप्त करूंगाः—

ओ जैन जाति के धर्म गुरुओं—साधुओ, उठो, आंखें खोलो और मेरी उपर्युक्त योजना पर ध्यान दो; कुछ कर दिखाओ अरे, सोचो, तुमने गुरुपद धारण किया है गुरुओं के क्या २ कार्य होते है उनकी जरा याद करो। क्या गुरुओं का यही कार्य है कि—समाजको अज्ञानता के कीचडमें पडे रहने देना?

क्या गुरुओंका यही कार्य है कि—समाज की दुर्दशा का अपने नेत्रों से देखते रहना? क्या गुरुओं का यही कार्य है कि—समाज की कुरीतियों का हटाना? क्या गुरुओं का यही कर्तव्य है कि—समाज सुधार के कामों में पाप बतलाना? क्या गुरुओं का यही कार्य है कि—अपनी २ पूजा प्रतिष्ठा श्लाघा कराने में ही लगे रहना? क्या गुरुओं का यही कार्य है कि—सम्प्रदायों के झगड़े में पड़े रहना? और गुरुओं का परस्पर लड़ते रहना? क्या गुरुओं का यही कार्य है कि—समाज को समता' तुल्य शिक्षा न देना? क्या गुरुओं का यही कार्य है कि—समाज पर अपवित्रता और मूर्खता का कलंक चढ़ाते रहना? क्या गुरुओं का यही कार्य है कि—समाज के अनाथ बच्चों का निराधार विधवाओं का निस्सहाय मातृयों का नष्ट भ्रष्ट होने देना? उनके लिये अनाथालय गुरुकुल, विधवाश्रम आदि स्थापित नहीं करवाना? यदि ये कार्य तुम्हारे नहीं हैं तो तुम इस के विपरीत प्रयत्न क्यों नहीं करते हो?

भो महात्माओ!

तुमही लोगों की लापरवाई से समाज का अधःपतन हुआ है। तुमही लोगों की अज्ञानता से समाज भी आज अज्ञान हुआ है तुमही लोगों के मलीन विचारोंसे समाज में भी मलीन विचार प्रगट हुए हैं, तुमही लोगों की फूटसे समाज में भी आज इसका प्रबल प्रभाव दिखाई देता है। आ कुछ समाज व धर्म की हानि हो रही है इन सब का मुख्य कारण आपही लोग हैं। समाज और धर्म तुम्हारे ही आश्रित रहा हुआ है। इस लिए तुम्हें अपने कर्तव्य पहचानने चाहिए। सभी काम सभी

नियम, सभी प्रथाएँ हर समय में एक से लाभदायक नहीं हो सकते। समय समयमें उनमें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता हुआ करती है। जिस समाज के मुखिया, संचालक, धर्मगुरु, ऐसा नहीं करते हैं वे अन्त में पछताते हैं, सब खो बैठते हैं।

आप लोग कहेंगे कि "हमें ये बातें मत कहिए, हमतो अपनी आत्मोन्नति कर रहे है, हमने इसी लिये चारित्र लिया है।" महात्माओ! ये कहना आपका बिन विचार का है जैसा आत्मोन्नति करना आप का कर्त्तव्य है वैसा समाजोन्नति समाज की भलाई बुराई की ओरभी ध्यान देना आप का कर्तव्य है। आत्मोन्नति और समाज का सुचारु रूपसे संचालन करते रहना इसी लिये आपका जन्म है। यदि ऐसा नहीं है तो धर्मोपदेश करनेकी क्या जरूरत है! चेला चेली मूंडने की क्या जरूरत है! एक ग्रामसे दूसरे ग्राम घूमते रहनेकी क्या जरूरत है? पुस्तक पन्ना आदि धर्मोपकरण रखने की क्या जरूरत है! आत्मोन्नतितो मौनव्रत धारण कर एकान्त में—वनों, पहाडों, जंगलों आदि में रहने से भी हो सकती है। सांप्रत समय में आप लोगों के पीछे कई प्रकार के—प्रापंचिक कार्य लगे हुए देखे जाते हैं फिर वे क्यों है? उन्हें भी छोडकर रहिए। मगर साधु ओ, यह सब तुम्हारी बहाने बाजी है—आत्मोन्नति का प्रायः ढोंग है। तुम से न तो पूरी आत्मोन्नति बन आती है और न समाजोन्नति धर्मोन्नति ही। मैं इस बातको नहीं मानता। आत्मोन्नति का असली मार्ग तो जुदा ही है। क्या चारित्र [साधु होकर] लेकर परस्पर लडना लडाना आत्मोन्नति है?

क्या गुरुओं का यही कार्य है कि–समाज की दुर्दशा को अपने नेत्रों से देखते रहना? क्या गुरुओं का यही कार्य है कि–समाज की कुरीतियों को हटाना? क्या गुरुओं का यही कर्तव्य है कि–समाज सुधार के कामों में पाप बतलाना? क्या गुरुओं का यही कार्य है कि–अपनी २ पूजा प्रतिष्ठा, अथवा कगन में ही लग रहना?–क्या गुरुओं का यही कार्य है कि–सम्प्रदायों के झगड़े में पड़े रहना? और गृहस्थों का परस्पर लड़ाते रहना? क्या गुरुओं का यही कार्य है कि–समाज को समया नुकूल शिक्षा न देना? क्या गुरुओं का यही कार्य है कि–समाज पर अपवित्रता और मूर्खता का कलंक चढ़ाते रहना? क्या गुरुओं का यही कार्य है कि–समाज के अनाथ बच्चों व निराधार विधवाओं का निस्सहाय भाइयों को नष्ट भ्रष्ट होने देना? उनके लिये अनाथालय, गुरुकुल, विधवाश्रम आदि स्थापित नहीं करवाना? यदि ये कार्य तुम्हारे नहीं हैं तो तुम इस के विपरीत प्रयत्न क्यों नहीं करते हो?

ओ महात्माओ!

तुमही लोगों की लापरवाई से समाज का अधःपतन हुआ है। तुमही लोगों की अज्ञानता से समाज भी आज अज्ञान हुआ है तुमही लोगों के मलीन विचारों से समाज में भी मलीन विचार प्रगट हुए हैं, तुमही लोगों की फूट से समाज में भी आज इतना प्रबल प्रकाश दिखाई देता है। आज कुछ समाज व धर्म की हानि हो रही है इन सब का मुख्य कारण आपही लोग हैं। समाज और धर्म तुम्हारे ही आश्रित रहा हुआ है। इस लिए तुम्हें अपने कर्तव्य पहचानने चाहिएं। सभी कार्य सभी

साधुओंको चेतावनी।

माननीय मुनिवरो ! चेत जाओ। आप किस नींद में सोये हो। जरा उठ कर तो देखो कि समय ने कैसा पलटा खाया है क्या क्या रंग बदला है—और वह आपको क्या कह रहा है।

उठो, अपनी ओर अपने धर्म की हालत देखो। समय पुकार पुकार कर कह रहा है कि—आप अपनी स्थिति को सुधारो अपना ज्ञान बल बढाओ—समाज की कुरीतियां दूर कराओ। मुनि सम्मेलनादि कर कर बहुमत द्वारा अपने प्राचीन और अर्वाचीन दोनों प्रकार के आचार और विचारों में शीघ्र परिवर्त्तन कर दो। समयकी आवश्यकताओं को पहचानों अपने २ नवदीक्षित शिष्यों को समयानुकूल भाषाएँ पढाओ। उन्हें इस प्रकार बली और कर्म वीर बना दो कि—वे गृहस्थों से ज्ञानादि गुण में कभी कम न रहे। वे विविध व्याकरण, न्याय, काव्य, कोष आदि साहित्य रचने लगे। सार्वजनिक पत्रों में खुल्लमखुल्ला अपने स्वतंत्र विचार और धार्मिक विचार प्रगट करने लगे। हजारों जैन, अजैन विद्वानों के सम्मान पात्र बनें, अपनी वक्तृत्वता के चमत्कारिक बल से अजैनों को जैन बनावे और एक बार फिर संपूर्ण आर्यावर्त्त में सर्वत्र जैन जय पताका फहरादें।

मेरे पूज्य गुरु देवो ! जागृत हो ओ, जागृत !!! आलस्य

क्या तुम उस, साधुको आहार मत दो, उसे वन्दना नमस्कार मत करो ये साधु-साधु नहीं है तू हमारा श्रावक है दूसरे साधुओंके पास मत जा, इस प्रकार कहते रहने का नाम आत्मोन्नति है? क्या एक ही परमात्मा के अनुयायी होकर भिन्न २ प्ररूपणा प्रवर्तना रखना आत्मोन्नति है? क्या राग द्वेष के कामों में रात दिन फँसे रहना आत्मोन्नति है? क्या क्रोध, मान, माया, लोभ के रखने का नाम आत्मोन्नति है? छोड़दो इन आत्मोन्नति के ढोंग को छोड़दो या सच्ची आत्मोन्नति कर दिखाओ या हमारी उक्त योजना पर ध्यान दो और समयानुकूल समाजोन्नति आत्मोन्नति दोनों करते रहो। इति।

समाज हितैषी,
मुनि-परमानन्द जैन

मोड बैठे हो? क्या बात है कि आपका मुर्दा दिल चैतन्य नहीं होता? और आपमें परमात्मा वीर की शक्तियां उत्पन्न नहीं होती? आप 'वीर' के अनुयायि होकर कायर कैसे बने हो! कुछ तो अपने पिता की टेक रक्खो। और उसके नाम पर उसके शासन पर तन मन न्योछावर कर दो। आज सभी समाजें तुम्हें मूर्ख कह रही हैं। आज सब नव शिक्षित तुम्हें घृणा की दृष्टि से देखते है! तुम्हारे अस्तित्व को हीं नहीं चाहते हैं। क्या इस अपमान से तुम में कुछ जोश नहीं आता। और अपनी स्थितियों को सुधारने को उठ खड़े नहीं होते। देखो तुम्हारा काम आज गृहस्थ वर्ग कर रहा है बिचारे कितने ही नव शिक्षित नवयुक्त समाजोन्नति के लिए, समाज में विद्या प्रचार करने के लिए समाज की कुरीतियों को मिटाने के लिए, परमात्मा वीर के धर्म को सार्व भौम-राष्ट्र धर्म-बनाने के लिए उनके उच्च तत्वों उच्च विचारों का सर्व साधारण में प्रचार करने के लिए, रात दिन तन तोड परिश्रम कर रहे हैं। मगर हाय, तुम तुम्हारा कर्तव्य नहीं सम्हालते? तुम अपनी फर्ज को नहीं बजाते और उल्टे उनके कामों पर-सहायता करना तो दूर रहा-पानी फेरने के लिए तैयार रहते हो। हा! मैं तुह्मारी इस अधर्मता' कृतघ्नता, विचार मलीनता की कहां तक प्रशंसा करूं।

देखो, यदि तुम सब उठ जाओ, समाजोन्नति के लिए कमर बांधलो, और प्रत्येक मुनि इस बात की दृढ़ प्रतिज्ञा करलो और बहुत नहीं तो थोडे समय के लिएही—मोह, ममता, सांप्रदायिक कलह, आपस की फूट, निंदा, ईर्षाबाजी आदि

आज कल आप किस कौन में विराजमान हो। बतलाओ कि-आपने आज तक समाज हित के लिए क्या २ कार्य किया है? कितने सज्जनों का जैन बनाया है? अपने अपने भक्तों के पास से कितना द्रव्य समाज हित कार्यों में खर्च करवाया है, आपके उपदेश से कहां २ पाठशाला अनाथालय अनाथ रक्षक फंड, पुस्तकालय, ग्रंथ प्रकाशन कार्यालय आदि २ स्थापित होकर चल रहे हैं? कौनसे २ ग्रंथ आपने निर्माण किये हैं? किस २ सार्वजनिक पत्रों में आपने सामाजिक, तात्त्विक आध्यात्मिक, जैनत्व प्रतिपादक लेखादि लिखे हैं? आपके साधुपद से समाजको कितना लाभ पहुंचा है? आपके उन सैकड़ों दिनों के व्याख्यानों से कितना देशोपकार-लोकोपकार सामाजोपकार धर्मोद्धार हुआ है? खैर, जाने दीजिए-परोपकार की बातें। अब आत्मोद्धार की तरफ आइए। बतलाइए-आपमें आत्म बल कितना है? आपकी आत्मशक्तियां कहां तक विकसित हुई हैं? आप अपने आत्म बलसे क्या २ कर दिखला सकते हैं? क्या कोई साधुता के प्रमाण पत्र आपके पासमें हैं? साफ २ बतला दीजिए, यहां अब संकोच रखने का कोई कारण नहीं। अगर आप उपर्युक्त दोनों बातों से-शून्य हैं तो मैं साफ २ कहूंगा कि आप समाज पर भार रूप हैं, आपके साधुपद से समाज को कोई लाभ नहीं। आपको जो समाज अन्न, वस्त्र देता है यह उस की भूल है।

मेरे आत्मवर आत्माओ! क्यों इस साधुपद
(लगा रहे) का रहे हो क्यों लोगापकार म

मोड बैठे हो? क्या बात है कि आपका मुर्दा दिल चैतन्य नहीं होता? और आपमें परमात्मा वीर की शक्तियां उत्पन्न नहीं होती? आप 'वीर' के अनुयायि होकर कायर कैसे बने हो? कुछ तो अपने पिता की टेक रक्खो। और उसके नाम पर उसके शासन पर तन मन न्यौछावर कर दो। आज सभी समाजें तुम्हे मूर्ख कह रही हैं। आज सब नव शिक्षित तुम्हें घृणा की दृष्टि से देखते है? तुम्हारे अस्तित्व को हीं नहीं चाहते हैं। क्या इस अपमान से तुम में कुछ जोश नहीं आता। और अपनी स्थितियों को सुधारने को उठ खड़े नहीं होते। देखो तुम्हारा काम आज गृहस्थ वर्ग कर रहा है विचारे कितने ही नव शिक्षित नवयुक्त समाजोन्नति के लिए, समाज में विद्या प्रचार करने के लिए समाज की कुरीतियों को मिटाने के लिए, परमात्मा वीर के धर्म को सार्व भौम–राष्ट्र धर्म–बनाने के लिए उनके उच्च तत्वों उच्च विचारों का सर्व साधारण में प्रचार करने के लिए, रात दिन तन तोड परिश्रम कर रहे हैं। मगर हाय, तुम तुम्हारा कर्तव्य नहीं सम्हालते? तुम अपनी फर्ज को नहीं बजाते और उलटे उनके कामों पर–सहायता करना तो दूर रहा–पानी फेरने के लिए तैयार रहते हो। हा! मैं तुह्मारी इस अधर्मता' कृतघ्नता, विचार मलीनता की कहां तक प्रशंसा करूं।

देखो, यदि तुम सब उठ जाओ, समाजोन्नति के लिए कमर बांधलो, और प्रत्येक मुनि इस बात की दृढ़ प्रतिज्ञा करलो और बहुत नहीं, तो थोडे समय के लिएही—मोह, ममता, सांप्रदायिक कलह, आपस की फूट, निंदा, ईर्षाबाजी आदि

को जलाञ्जलि देदो तो मैं, निःसंशय होकर परमात्मा वीर की साक्षी से कहता हूं कि कुछ ही काल के अन्दर सब समाज सुधर जाय, सब दुःख मिट जाय जहां तहां उन्नति देवी के दर्शन होने लगे। समाज की सब राक्षसी कुरीतियां दूर हो जाय—और सब समाजें आपका हर्ष पूर्वक अनुकरण करने लगे। तथा मेरे जैसे कई सतप्त हृदयोंका दुःख भी शीघ्र मिट जाय और रात दिन मुक्त कंठ से आपका यशोगान करने लगे। क्या, है आप में दया-अनुकम्पा का संचार? अगर-है तो उठिए, देर न कीजिए और शीघ्र हमारा दुःख दूर करने के लिए सामाजोद्धार के लिए, और अपने शिर से कायरता अकर्मण्यता, निर्बलताका कलंक मिटाने के लिए तैयार हूजिए। एक बार सबको यह दिखा दीजिए कि हम कैसा अच्छा काम कर रहे हैं क्या कोई हमारी बराबरी कर सकता है?"

महात्माओ, आप मेरे इन कटु, तीक्ष्ण शब्दों को सुन कर रुष्ट न हूजिए; बल्कि इन्हें हितावह समझते हुए अपनाइए। इस मेरी चेतावनी को आप अपने हृदय स्थायी बनाते हुए समाजोद्धार का बीड़ा शीघ्र उठा लीजिए। क्योंकि अब यही आपकी प्रतिष्ठा-शोभा स्थिर रख सकेगा। इति॥

लगत शिक्षा वचन, मनमें सोचहु आप।
कड़ह औषध बिन पिये मिटत न तन को ताप॥

—मुनि परमानन्द जैन

आनुपूर्वी पढनेकी रीति ।



१- जहांपर 'एक' का आंक हो वहां, णमो अरिहंताणं, कहना चाहिए ।

२- जहांपर 'दो' का आंक हो वहां "णमो सिद्धाणं" कहना चाहिए ।

३-जहांपर "तीन" का आंक हो वहां "णमो आय-रियाणं" कहना चाहिए ।

४-जहांपर "चार" का आंक हो वहां "णमो उव-ज्झायाणं" कहना चाहिए ।

५-जहांपर 'पांच' का आंक हो वहां "णमो लोए सव्व साहूणं" कहना चाहिए ।

आनुपूर्वी गिननेका फल ।

चंचल मनको स्थिर करण, ठाणाङ्गसूत्र अनुसार । अनु-पूर्वी रचना करी आचार्य-करण उपकार ॥ शुद्ध वस्त्र धरी विवेक, दिन २ प्रति गणवी एक ॥ एम अनुपूर्वी जो गिणे, ते पांचसौ सागरना पापने हणे ॥ २ ॥

अनुपूर्वी गिणे जो कोय ।
छै मासी तपनो फल होय ॥
सन्देह मत आणो लिगार ।
निर्मल मने जपो नवकार ॥

(आचार्य कृत-ग्रंथसे)

को बलाञ्जलि देदा सो मैं, नि संशय होकर परमात्मा वीर की साक्षी से कहता हूं कि कुछ ही काल के अन्दर सब समाज सुधर जाय, सब दुःख मिट जाय जहाँ तहाँ उन्नति देवी के दर्शन होने लगे। समाज की सब राक्षसी कुरीतियाँ दूर हो जाय—और सब समाजें आपका हर्ष पूर्वक अनुकरण करने लगें। तथा मर जैसे कई संतप्त हृदयोंका दुःख भी शीघ्र मिट जाय और रात दिन मुक्त कंठ से आपका यशोगान करने लगें। क्या, है आप में दया, अनुकम्पा का संचार? अगर है तो उठिए, देर न कीजिए और शीघ्र हमारा दुःख दूर करने के लिए सामाजोद्धार के लिए, और अपने शिर से कायरता अकर्मण्यता निर्बलताका कलंक मिटाने के लिए तैयार हूजिए। एक बार सबको यह दिखा दीजिए कि "हम कैसा अच्छा काम कर रहे हैं क्या कोई हमारी बराबरी कर सकता है?"

महात्माओ, आप मेरे इन कटु, तीक्ष्ण शब्दों को सुन कर क्रुद्ध न हूजिए; बल्कि इन्हें हितावह समझते हुए अपनाइए। इस मेरी चेतावनी को आप अपने हृदय स्थायी बनाते हुए समाजोद्धार का बीड़ा शीघ्र उठा लीजिए। क्योंकि अब यही आपकी प्रतिष्ठा शोभा स्थिर रख सकेगा। इति ॥

सुर लगत शिक्षा वचन, मनमें सोचहु आप।
कडुइ औषध बिन पिये मिटत न तन को ताप ॥

—मुनि परमानन्द जैन

आनुपूर्वी पढनेकी रीति।



१- जहांपर 'एक' का आंक हो वहां, णमो अरिहंताणं, कहना चाहिए।

२- जहांपर 'दो' का आंक हो वहां "णमो सिद्धाणं" कहना चाहिए।

३-जहांपर "तीन" का आंक हो वहां "णमो आय-रियाणं" कहना चाहिए।

४-जहांपर "चार" का आंक हो वहां "णमो उव-ज्झायाणं" कहना चाहिए।

५-जहांपर 'पांच' का आंक हो वहां "णमो लोए सव्व साहूणं" कहना चाहिए।

आनुपूर्वी गिननेका फल।

चंचल मनको स्थिर करण, ठाणाङ्गसूत्र अनुसार। अनु-पूर्वी रचना करी आचार्य-करण उपकार॥ शुद्ध वस्त्र धरी विवेक, दिन २ प्रति गणवी एक॥ एम अनुपूर्वी जो गिणे, ते पांचसो सागरना पापने हणे॥ २॥

अनुपूर्वी गिणे जो कोय।
छ मासी तपनो फल होय॥
सन्देह मत आणो लिगार।
निर्मल मने जपो नवकार॥

(आचार्य कव-प्रबंध)

को जलाञ्जलि देदो तो मैं, नि संशय होकर परमात्मा वीर की साक्षी से कहता हूं कि कुछ ही काल के अन्दर सब समाज सुधर जाय, सब दु ख मिट जाय जहां तहां उन्नति देवी के दर्शन होने लगे। समाज की सब राक्षसी कुरीतियां दूर हो जाय—और सब समाजें आपका हर्ष पूर्वक अनुकरण करने लगे। तथा मेरे जैसे कई सन्तप्त हृदयोंका दु ख भी शीघ्र मिट जाय और रात दिन मुक्त कंठ से आपका यशोगान करने लग। क्या, है आप में दया अनुकम्पा का संचार? अगर है तो उठिए, देर न कीजिए और शीघ्र हमारा दु ख दूर करने के लिए समाजोद्धार के लिए, और अपने शिर से कायरता अकर्मण्यता, निर्बलताका कलक मिटाने के लिए तैयार हूजिए। एक बार सबको यह दिखा दीजिए कि हम कैसा अच्छा काम कर रहे हैं क्या कोई हमारी बराबरी कर सकता है ? ”

महात्माओ, आप मेरे इन कटु, तीक्ष्ण शब्दों को सुन कर क्रुद्ध न हूजिए। बल्कि इन्हें हितावह समझते हुए अपनाइए। इस मेरी चेतावनी को आप अपने हृदय स्थायी बनाते हुए समाजोद्धार का बीड़ा शीघ्र उठा लीजिए। क्योंकि अब यही आपकी प्रतिष्ठा श्लाघा स्थिर रख सकेगा। इति ॥

बुरे लगत शिक्षा वचन, मनमें सोचहु आप।
कड़ुइ औषध बिन पिये मिटत न तन को ताप ॥

—मुनि परमानन्द जैन

आनुपूर्वी [५]

१	२	३	५	४
२	१	३	५	४
१	३	२	५	४
३	१	२	५	४
२	३	१	५	४
३	२	१	५	४

आनुपूर्वी [६]

१	२	५	३	४
२	१	५	३	४
१	५	२	३	४
५	१	२	३	४
२	५	१	३	४
५	२	१	३	४

आनुपूर्वी [७]

१	३	५	२	४
३	१	५	२	४
१	५	३	२	४
५	१	३	२	४
३	५	१	२	४
५	३	१	२	४

आनुपूर्वी [८]

२	३	५	१	४
३	२	५	१	४
२	५	३	१	४
५	२	३	१	४
३	५	२	१	४
५	३	२	१	४

आनुपूर्वी (१)

१	२	३	४	५
२	१	३	४	५
१	३	२	४	५
३	१	२	४	५
२	३	१	४	५
३	२	१	४	५

आनुपूर्वी (२)

१	२	४	३	५
२	१	४	३	५
१	४	२	३	५
४	१	२	३	५
२	४	१	३	५
४	२	१	३	५

आनुपूर्वी [३]

१	३	४	२	५
३	१	४	२	५
१	४	३	२	५
४	१	३	२	५
३	४	१	२	५
४	३	१	२	५

आनुपूर्वी [४]

२	३	४	१	५
३	२	४	१	५
२	४	३	१	५
४	२	३	१	५
३	४	२	१	५
४	३	२	१	५

आनुपूर्वी (१३)

१	३	४	५	२
३	१	४	५	२
१	४	३	५	२
४	१	३	५	२
३	४	१	५	२
४	३	१	५	२

आनुपूर्वी (१४)

१	३	५	४	२
३	१	५	४	२
१	५	३	४	२
५	१	३	४	२
३	५	१	४	२
५	३	१	४	२

आनुपूर्वी [१५]

१	४	५	३	२
४	१	५	३	२
१	५	४	३	२
५	१	४	३	२
४	५	१	३	२
५	४	१	३	२

आनुपूर्वी [१६]

३	४	५	१	२
४	३	५	१	२
३	५	४	१	२
५	३	४	१	२
४	५	३	१	२
५	४	३	१	२

आनुपूर्वी (९)

१	२	४	५	३
२	१	४	५	३
१	४	२	५	३
४	१	२	५	३
२	४	१	५	३
४	२	१	५	३

आनुपूर्वी (१०)

१	२	५	४	३
२	१	५	४	३
१	५	२	४	३
५	१	२	४	३
२	५	१	४	३
५	२	१	४	३

आनुपूर्वी [११]

१	४	५	२	३
४	१	५	२	३
१	५	४	२	३
५	१	४	२	३
४	५	१	२	३
५	४	१	२	३

आनुपूर्वी [१२]

२	४	५	१	३
४	२	५	१	३
२	५	४	१	३
५	२	४	१	३
४	५	२	१	३
५	४	२	१	३



आनुपूर्वी [१७]

२	३	४	५	१
३	२	४	५	१
२	४	३	५	१
४	२	३	५	१
३	४	२	५	१
४	३	२	५	१

आनुपूर्वी [१८]

२	३	५	४	१
३	२	५	४	१
२	५	३	४	१
५	२	३	४	१
३	५	२	४	१
५	३	२	४	१

आनुपूर्वी [१९]

२	४	५	३	१
४	२	५	३	१
२	५	४	३	१
५	२	४	३	१
४	५	२	३	१
५	४	२	३	१

आनुपूर्वी [२०]

३	४	५	२	१
४	३	५	२	१
३	५	४	२	१
५	३	४	२	१
४	५	३	२	१
५	४	३	२	१